Appendix-105
Resolution No. 38 {38-1 [38-1-13(4)]}

# Department of Distance and Continuing Education
# University of Delhi

# दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
# दिल्ली विश्वविद्यालय

## बी.ए.(प्रोग्राम) सेमेस्टर-I

**कोर्स क्रेडिट - 4**

## Generic Elective (GE), हिंदी-(ग)

# हिंदी : भाषा और साहित्य

## (हिंदी-विभाग)

As per the UGCF and National Education Policy 2020

*पाठ्य-सामग्री लेखक*

**स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी**

**डॉ. रमेश खनेजा**

*संपादक मंडल*

***प्रो. सुधीर कुमार शर्मा***

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

प्रथम संस्करण : 2022

ई–मेल : ddceprinting@col.du.ac.in

hindi@col.du.ac.in

**Published by:**

Department of Distance and Continuing Education under
the aegis of Campus of Open Learning/School of Open Learning,
University of Delhi, Delhi-110 007

**Printed by:**

School of Open Learning, University of Delhi

# अध्ययन सामग्री

## हिंदी - 'ग'

## हिंदी : भाषा और साहित्य

(इकाई - 1-4)



| | | | |
|---|---|---|---|
| इकाई-**1** | **(क) हिंदी : भाषा और साहित्य**<br>1. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास<br>2. हिंदी का भौगोलिक विस्तार<br>**(ख) हिंदी कविता का विकास**<br>1. आदिकाल : सामान्य विशेषताएँ<br>2. भक्तिकाल : सामान्य विशेषताएँ<br>3. रीतिकाल : सामान्य विशेषताएँ<br>4. आधुनिक काल : सामान्य विशेषताएँ | स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी<br><br><br><br>डॉ. रमेश खनेजा | 01-26<br><br><br><br>27-120 |
| इकाई-**2** | **भक्तिकालीन हिंदी कविता**<br>1. कबीर<br>2. सूरदास | <br>डॉ. राजेंद्र प्रसाद<br>प्रो. भवानी दास | 121-143 |
| इकाई-**3** | (क) बिहारी<br>(ख) घनानंद | डॉ. दिनेश गुप्ता<br>प्रो. सुधीर कुमार शर्मा | 144-160<br>161-167 |
| इकाई-4 | **आधुनिक हिंदी कविता**<br>1. सुमित्रानंदन पंत : आह ! धरती कितना देती है<br>2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : लीक पर वे चलें... | <br>डॉ. सीमा जैन<br>डॉ. मीनाक्षी व्यास | <br>168-178<br>179-185 |





*© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

इकाई-I

# हिंदी : भाषा और साहित्य

## 1. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास

**लेखक–स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी**
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 हिंदी भाषा का उद्भव और विकास
1.3 आदिकाल
  1.3.1 ध्वनि
  1.3.2 व्याकरण
  1.3.3 शब्द - भंडार
  1.3.4 साहित्य में प्रयोग
  1.3.5 बोध प्रश्न
1.4 मध्यकाल
  1.4.1 ध्वनि
  1.4.2 व्याकरण
  1.4.3 शब्द - भंडार
  1.4.4 साहित्य में प्रयोग
  1.4.5 बोध प्रश्न
1.5 आधुनिककाल
  1.5.1 ध्वनि
  1.5.2 व्याकरण
  1.5.3 शब्द - भंडार
  1.5.4 साहित्य में प्रयोग
  1.5.5 बोध प्रश्न

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.6 सारांश
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 संदर्भ-ग्रंथ

## 1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई में हिंदी भाषा की विकास यात्रा और विकास की विविध धाराओं का वर्णन है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी भाषा की पूर्वजीविका को समझ सकेंगे।
- खड़ी बोली हिंदी के विकास से अवगत हो सकेंगे।
- देश की भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट कर सकेंगे।

## 1.1 प्रस्तावना

हिंदी भाषा के उद्भव और विकास की यात्रा को विद्वानों ने संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार, ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदी भाषा के विकास की कहानी आरंभ होती है। ग्यारहवीं सदी से अपनी यात्रा आरंभ कर आज हिंदी हमारे सामने जिस रूप में है उससे हम सभी परिचित हैं। हिंदी की इस यात्रा में जो-जो परिवर्तन हुए हैं उन सबकी चर्चा विस्तार पूर्वक इस इकाई में की गई है। प्रारंभ में हिंदी का वह रूप जो अपभ्रंश से विकसित होकर सामने आया वह प्राकृत, अपभ्रंश की शब्दावली से ओत-प्रोत था। धीरे-धीरे हिंदी के इस रूप में विकास हुआ और आगे चलकर उसकी बोलियाँ विकसित हुई। हिंदी भाषा के विकास में हिंदी साहित्य का भी अभूतपूर्ण योगदान रहा है। इन सभी विकास के सोपानों का विस्तार से इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

## 1.2 हिंदी भाषा की पूर्वपीठिका तथा उसका उद्भव

वैदिक संस्कृत काल में आर्य भाषा प्रदेश में तीन स्थानीय बोलियाँ विकसित हो चुकी थी : पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पालि काल में एक और स्थानीय बोली दक्षिणी का विकास हो गया। इस प्रकार स्थानीय बोलियों की संख्या चार हो गई। प्राकृत काल में स्थानीय बोलियाँ धीरे-धीरे छः-सात हो गईं, जिनके नाम हैं– ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं से अपभ्रंश काल में छः-सात अपभ्रंश स्थानीय बोलियों का विकास हुआ, जिन्हें प्राकृतों के नाम के आधार पर इन्हीं नामों से पुकारा जा सकता है : ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं अपभ्रंशों से आधुनिक भाषाएँ उद्भूत हुई हैं : ब्राचड से–सिंधी, केकय से–लहंदा, टक्क से–पंजाबी, महाराष्ट्री से–मराठी,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शौरसेनी–गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पहाड़ी, अर्धमागधी से–पूर्वी हिंदी, मागधी से–बिहारी, बंगला, असमी, उड़िया।[1]

इस प्रकार हिंदी जो पाँच उपभाषाओं अथवा बोली-समूहों (पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंश से 1000 ई. के आस-पास उद्भूत हुईं। यहाँ एक बात संकेत करने की है कि यों तो हिंदी के कुछ रूप पालि में मिलने लगते हैं, प्राकृत में उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है तथा अप्रभंश से उनमें और भी वृद्धि हो गई है, किंतु सब मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि 1000 ई. के पूर्व हिंदी का उद्भव नहीं माना जा सकता है। इसीलिए राहुल सांस्कृत्यायन आदि विद्वानों ने हिंदी का जन्म जो 1000 ई. के पूर्व माना है, साधार नहीं है। ऐसे ही हिंदी साहित्य के कई इतिहासों में कुछ लोगों ने हिंदी का प्रारंभ और भी बाद में माना है, किंतु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग उसके जन्म के साथ नहीं हो जाता। जब किसी भाषा में जन्मने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है, उसका रूप कुछ निखर आता है तथा वह बहुस्वीकृत हो जाती है, तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस तरह यदि लगभग 1150 ई. के आस-पास से भी हिंदी साहित्य मिले तो उस भाषा आरंभ 1000 ई. के आस-पास ही मानना पड़ेगा।

## 1.3 विकास अथवा इतिहास

हिंदी भाषा 1000 ई. में जन्म कर विकसित होते-होते अब लगभग 1000 वर्षों की हो गई है। उसके इन 1000 वर्षों के इतिहास अथवा विकास को तीन भागों में बांटा जाता है : आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल। यहाँ इन तीनों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है–

## 1.4 आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई.)

हिंदी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी, क्योंकि उसी से हिंदी का उद्भव हुआ था। आदिकाल की हिंदी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं।

### 1.4.1 ध्वनि–

आदिकाल की हिंदी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों (स्वर-व्यंजनों) का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थी। मुख्य अंतर ये हैं :

(1) अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे – अ, आ, ई, ई, उ, ई, ए, ओ। ये आठों ही स्वर मूल थे। आदिकालीन हिंदी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए, जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमशः अऍ, अओ – जैसा था।

[1] उर्दू को भी हिंदी की एक शैली के रूप में इस विकास में समाहित कर लिया गया है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(2) च, छ, ज, झ, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किंतु आदिकालीन हिंदी में ये स्पर्श-संघर्षी हो गये और तब से अब तक स्पर्श-संघर्षी ही हैं।

(3) न, र, ल, स, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियां थीं। आदिकाल में ये वर्त्स्य हो गई।

(4) अपभ्रंश में ड़, ढ़, व्यंजन नहीं थे। आदिकाल की हिंदी में इनका विकास हुआ।

(5) न्ह, म्ह, ल्ह, पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल, के महाप्राण रूप हो गए, अर्थात् संयुक्त, न रहकर मूल व्यंजन हो गए।

(6) फारसी, पश्तो, तुर्की आदि से कुछ नए शब्दों के आ जाने के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन हिंदी में ऐसे आ गए जो अप्रभंश में नहीं थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप हो जाने के कारण कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजनों, स्वरानुक्रमों (vowel sequence) तथा व्यंजनानुक्रमों (consonant sequence आदि के लोप की भी संभावना है जो अपभ्रंश में रहे होंगे।

### 1.4.2 व्याकरण–

आदिकाल हिंदी का व्याकरण 1000 ई. के आस-पास अपभ्रंश के बहुत निकट था। भाषा में काफी रूप ऐसे थे जो अपभ्रंश के थे। किंतु धीरे-धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिंदी के अपने रूप विकसित हो गए, तथा धीरे-धीरे 1500 ई. तक आते-आते हिंदी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गए। आदिकालीन हिंदी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन बातों में भिन्न है :

(1) अपभ्रंश संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की तुलना में वियोगात्मक होते हुए भी एक सीमा तक संयोगात्मक भाषा थी। काफी क्रिया रूप तथा कारकीय रूप संयोगात्मक होते थे, किंतु आदिकालीन हिंदी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों का प्रयोग काफी होने लगा और धीरे-धीरे संयोगात्मक रूप कम होते गए ओर उनका स्थान वियोगात्मक रूप लेते गए।

(2) नपुंसकलिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में था यद्यपि संस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना में उसकी स्थिति अस्पष्ट-सी होती जा रही थी। आदिकालीन हिंदी में नपुंसकलिंग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखनाथ में कुछ प्रयोगों को कुछ लोगों ने नपुंसकलिंग का माना है, किंतु यह मान्यता पूर्णतः संदिग्ध नहीं कही जा सकती।

(3) हिंदी वाक्य रचना शब्द-क्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था। अपभ्रंश में शब्द-क्रम बहुत निश्चित नहीं था।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 1.4.3 शब्द-भंडार–

आदिकालीन हिंदी का शब्द-भंडार अपने प्रारंभिक चरण में अपभ्रंश का ही था किंतु धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आते गए, जिनमें उल्लेख दो-तीन हैं :

(1) भक्ति-आंदोलन का प्रारंभ हो गया था, अतः तत्सम शब्दावली, आदिकालीन हिंदी में अपभ्रंश की तुलना में कुछ बढ़ने लगी थी।

(2) मुसलमानों के आगमन से कुछ पश्तो, फारसी-अरबी, तुर्की शब्द हिंदी में आएं उदाहरणार्थ 'गोरखबानी' में अकलि, नूर, अलह, काजी, 'पृथ्वीराज रासो' में अब्बीर, नजर, सोर, गाजी, समसेर, 'चंदायन' में खून, तुरसी, मीर आदि।

(3) भक्ति आंदोलन तथा मुसलमानों शासन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा और जिसके परिणामस्वरूप इस बात की भी संभावना हो सकती है फिर कुछ ऐसे पुराने शब्द जो अपभ्रंश में प्रचलित थे, इस काल में अनावश्यक होने के कारण या तो हिंदी शब्द भंडार से निकल गए या फिर उनका प्रयोग बहुत कम हो गया।

### 1.4.4 साहित्य में प्रयोग

इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। इस काल के प्रमुख हिंदी साहित्याकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति, नाल्ह, चन्दबरदायी, कबीर तथा शाह मीराजी आदि हैं।

### 1.4.5 बोध प्रश्न

(1) इस काल में साहित्य में प्रमुखतः किस भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है?

(क) डिंगल (ख) मैथिली (ग) अपभ्रंश (घ) खड़ी बोली

(2) इनमें से कौन आदिकाल के कवि हैं ?

(क) सूरदास (ख) विद्यापति (ग) रामधारी सिंह 'दिनकर' (घ) मीरा

## 1.5 मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई. तक)

### 1.5.1 ध्वनि–

इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-भंडार के क्षेत्र में मुख्यतः आगे दिए गए परिवर्तन हुए। ध्वनि के क्षेत्र में दो-तीन बातें उल्लेखनीय है।

(1) फारसी की शिक्षा की कुछ व्यवसथा तथा दरबार में फारसी भाषा का प्रयोग होने से उच्च वर्ग में तथा नौकरी पेशा लोगों में फारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगों की हिंदी में



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

तुर्की-अरबी-फारसी के काफी बाद प्रचलित हो गए और क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ये पाँच नये व्यंजन हिंदी में आ गए।

(2) शब्दांत का 'अ' कम-से-कम मूल व्यंजन के बाद होने पर लुप्त हो गया अर्थात् 'राम्' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। मानस के अनेक छंद दोषपूर्ण हो जाएंगे यदि उनमें 'राम्' न पढ़कर 'राम' पढ़ा जाए : 'राम-राम' कहि रामकही राम राम कही राम'। किंतु 'भक्त' जैसे शब्दों में जहाँ अ के पूर्व संयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण के लिए आदिकालीन 'जपता' अब उच्चारण में 'जुप्ता' हो गया।

(3) ह के पहले का अ कुछ परिस्थितियों में 'ए' जैसा उच्चारित होने लगा था। पांडुलिपियों में ऐसे 'अ' के स्थान पर 'ए' के प्रयोग से इस बात का अनुमान लगता है।

### 1.5.2 व्याकरण–

व्याकरण के क्षेत्र में भी मुख्यतः तीन ही बातें उल्लेख्य हैं :

(1) इस काल में हिंदी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हो गई। अपभ्रंश के रूप हिंदी से प्रायः निकल गए। जो कुछ बचे थे, वे थे जिन्हें हिंदी ने आत्मसात् कर लिया था।

(2) भाषा, आदिकालीन भाषा की तुलना में और भी वियोगात्मक हो गई। संयोगात्मक रूप और भी कम हो गए। परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग बढ़ गया।

(3) उच्च वर्ग में फारसी का प्रचार होने के कारण हिंदी वाक्य-रचना फारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी। उदाहरण के लिए हिंदी की प्रारंभिक परंपरा के अनुकूल सूर में आता है। 'इन्द्र कह्यो मम करो सहाई'। यहाँ 'कि' का प्रयोग नहीं है, किंतु बाद में फारसी शब्द 'कि' के प्रयोग से युक्त वाक्य बनने लगे। राम प्रसाद निरंजनी के 'भाषा योगवासिष्ठ (1741) में आता है। 'वेद में एक ठौर कहा है कि जब लग जीवता रहे तब लग कर्म को करना'।

### 1.5.3 शब्द-भंडार–

शब्द-भंडार की दृष्टि से ये बातें मुख्य हैं :

(1) इस काल में आते-आते काफी शब्द फारसी (लगभग 3500), अरबी (लगभग 2500), तथा पश्तो (लगभग 125) से हिंदी में आ गए और इन आगत विदेशी शब्दों की संख्या लगभग 5000 से ऊपर हो गई। फारसी के कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आई।

(2) भक्ति आंदोलन के चरम बिंदु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया।

(3) यूरोप के संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी, तथा अंग्रेजी शब्द भी हिंदी में आ गए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

### 1.5.4 साहित्य में प्रयोग

इस काल में धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-स्थान की भाषा ब्रज में भी विशेष रूप से साहित्य रचा गया। यों दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ी बोली में भी साहित्य-रचना हुई। इस काल में प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केवल, बिहारी, भूषण, देव, बुरहानुद्दीन, नुसरती, कुलीकुतुबशाह, वजही तथा वली आदि हैं।

### 1.5.5 - बोध प्रश्न

(1) सूरदास की काव्य-भाषा क्या है?

(2) इनमें से कौन मध्यकालीन भक्त कवि हैं?

(क) तुलसीदास (ख) सूरदास (ग) मीरा (घ) महादेवी वर्मा

## 1.6 आधुनिकाल (1800 ई. से अब तक)

### 1.6.1 ध्वनि–

आधुनिककालीन हिंदी में ध्वनि के क्षेत्र में चार-पाँच बातें उल्लेख्य हैं :

(1) आधुनिक काल में शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण तथा प्रारंभ में हिंदी प्रदेश में अनेक क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़, जो मध्यकाल में केवल उच्च वर्ग के या फारसी पढ़े-लिखे लोगों तक प्रचलित थे, इस काल में प्रायः 1947 तक सुशिक्षित लोगों में खूब प्रचलित हो गए, किंतु स्वतंत्रता के बाद स्थिति बदली और अंग्रेजी में प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ तो एक सीमा तक अब भी प्रयोग में है किंतु क, ख, ग, के शुद्ध प्रयोग में कमी आई है। नई पीढ़ी, कुछ अपवादों को छोड़कर इनके स्थान पर प्रायः क़, ख़, ग़ बोलने लगी है। हां हिंदी की उर्दू शैली में इन पाँचों का ठीक उच्चारण होता है।

(2) अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में (कॉलिज, डॉक्टर, ऑफिस, कॉफी आदि में) 'ऑ' ध्वनि भी हिंदी में प्रयुक्त हो रही है। यों सामान्य लोग इसके स्थान पर आ का प्रयोग करते हैं।

(3) अंग्रेजी शब्दों के प्रचार के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन (जैसे ड्र) हिंदी में प्रयुक्त होने लगे।

(4) स्वरों में ऐ, ओ हिंदी में आदिकाल में आए थे। उस समय इनका उच्चारण अए, अओ, जैसा था, अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे। आधुनिक काल में मुख्यतः 1940 के बाद ऐ और औ की स्थिति कुछ भिन्न हो गई है। इस संबंध में तीन बातें उल्लेख हैं :

(क) पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में ये स्वर सामान्यतः मूल स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं।

(ख) पूर्वी हिंदी में अब भी ये अऍ अओ रूप में संयुक्त स्वर के रूप में ही प्रयुक्त हो रहे हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ग) नैया, वैयाकरण कौआ जैसे शब्दों में, पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों ही हिंदी क्षेत्र में ऐ, औ का उच्चारण क्रमशः संयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में अर्थात् संस्कृत उच्चारण के समान होता है।

(5) मध्यकाल में अ का लोप शब्दांत में तथा कुछ स्थितियों में अक्षरांत में होना आरंभ हुआ था। आधुनिक काल तक आते-आते यह प्रक्रिया पूरी हो गई है। अब हिंदी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है।

(6) व ध्वनि आदि तथा मध्यकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः द्वयोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती थी, अब वह कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी के काफी शब्दों में कम-से-कम पश्चिमी क्षेत्र में दंतोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती है। संभावना यह है कि द्वयोष्ठ्य व का प्रयोग धीरे-धीरे बहुत कम रह जाएगा या समाप्त हो जाएगा।

**1.6.2 व्याकरण–** व्याकरण की दृष्टि से अधोलिखित बातें कहीं जा सकती हैं :

(1) आदिकाल में हिंदी की विभिन्न बोलियों के व्याकरणिक अस्तित्व का प्रारंभ हो गया था, किंतु काफी व्याकरणिक रूप ऐसे थे, जो आस-पास के क्षेत्रों में समान थे। मध्यकाल में उनमें इस प्रकार के मिश्रण में काफी कमी हो गई थी। सूर, बिहारी, देव आदि की ब्रजभाषा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस बात का प्रमाण है। आधुनिक काल तक आते-आते ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि कई बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतंत्र हो गया है कि उन्हें बड़ी सरलता से भाषा की संज्ञा दी जा सकती है।

(2) हिंदी प्रायः पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गई है।

(3) प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिंदी व्याकरण के रूप में काफी स्थिर हो गये हैं तथा कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी का स्वरूप सुनिश्चित हो चुका है। भाषा के इस स्थिरीकरण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मुख्य हाथ रहा है।

(4) कहा जा चुका है कि मध्यकाल में हिंदी वाक्य रचना एक सीमा तक फारसी से प्रभावित हुई थीं आधुनिक काल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार, फारसी की तुलना में कहीं अधिक हुआ। साथ ही समाचार-पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में प्रयोग के कारण भी अंग्रेजी हमारे अधिक निकट आई। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी भाषा वाक्य-रचना, मुहावरे तथा लोकोक्तियों के क्षेत्र में अंग्रेजी से बहुत अधिक प्रभावित हुई है।

(5) इधर कुछ वर्षों से 'कीजिए' के 'करिये', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझ से' के लिए 'मेरे से', 'तुझ में' के लिए 'तेरे में', नहीं जाता है' के स्थान पर 'नहीं जाता', 'नहीं जा रहा है' के स्थान पर 'नहीं जा रहा', जैसे नए रूपों तथा नई वाक्य-रचना का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अर्थात् हिंदी भाषा रूप-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों ही क्षेत्रों में परिवर्तित हो रही है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 1.6.3 शब्द-भंडार

शब्द-भंडार की दृष्टि से 1800 से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप से छः सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। 1800 से 1850 तक का हिंदी शब्द-भंडार मोटे रूप से वही था जो मध्यकाल के अंतिम चरण में था। अंतर केवल यह था कि धीरे-धीरे अंग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिंदी भाषा में आते जा रहे थे। 1850 से 1900 तक अंग्रेजी के और शब्दों के आने के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिंदी से निकल गए। उदाहरण के लिए 'इंद्री' निकल गया और 'इंद्रिय' आ गया। यद्यपि 'इंद्री' का बहुवचन 'इंद्रियाँ' अब तक चल रहा है। 1900 के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना आरंभ हो गया। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिशील आंदोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः वृद्धि हुई तथा तत्सम शब्दों के प्रयोगों में कुछ कमी आई। 1947 तक लगभग यही स्थिति रही। 1947 के बाद के शब्द-भंडार में कई बातें उल्लेख हैं :

(क) अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित हो गए हैं। उदाहरण के लिए 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोकसभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

(ख) अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक नए शब्द (जैसे फ़िल्माना, घुसपैठिया) आ गए हैं।

(ग) साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा प्रायः बोलचाल के बहुत निकट आ गई है; उसमें अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी के जन-प्रचलित शब्दों का काफी प्रयोग हो रहा है, किंतु आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दों से काफी लदी हुई है।

(घ) इधर हिंदी को पारिभाषिक शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ी है, क्योंकि हिंदी अब विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भी भाषा है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक शब्द अंग्रेजी, संस्कृत आदि से लिए गए हैं तथा अनेक नए शब्द बनाए गए हैं। स्वतंत्रता के पूर्व हिंदी में मुश्किल से 5-6 हजार पारिभाषिक शब्द थे किंतु उनकी संख्या एक लाख से ऊपर है और दिनों-दिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। हिंदी शब्द-भंडार अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए नए शब्दों से समृद्ध होते हुए दिनों-दिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप हिंदी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

### 1.6.4 साहित्य में प्रयोग

आधुनिक काल राजनीति का है। अतः भारतीय राजनीति के केंद्र दिल्ली की भाषा खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि को पीछे छोड़ प्रायः हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम बन गई है। अन्य बोलियों मे यदि कुछ लिखा भी जा रहा है तो अपवादस्वरूप। यही खड़ी बोली हिंदी हमारी राजाभाषा भी बन गई है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDE, COL, SOL, University of Delhi

**1.6.5 - बोध प्रश्न**

(1) आधुनिककाल का समय क्या माना गया है ?

(2) भारत की राजभाषा क्या है?

## 1.7 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार हिंदी भाषा संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश से होती हुई विकसित होती है। हिंदी भाषा के विकास का इतिहास 1000 वर्षों का है जिसका अध्ययन हमने तीन चरणों - आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिककाल के अंतर्गत किया है। आदिकाल का समय 1000 ई. से 1500 ई. तक का माना जाता है और इसकी अवधि में हिंदी के अनेक रूप जैसे 'डिंगल', 'पिंगल' हिंदी भी विकसित होती है।

मध्यकाल जिसका समय 1500 ई. से 1800 ई. तक माना गया है। यह वह समय है जब हिंदी की प्राकृत बोलियाँ विशेषकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली विकसित होकर सामने आती हैं तथा खड़ी बोली गद्य के विकास का सूत्रपात हमें इसी युग में दिखाई देने लगता है।

आधुनिक काल जिसका समय 19वीं सदी से आरंभ होता है और वह समय है जब हमें हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग दिखाई देता है। गद्य की सभी विधाओं यथा - निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि का विकास होता है। हिंदी खड़ी बोली के विकास के आरंभिक चरण में चार महानुभावों - लल्लू जी लाल, सदासुख लाल, सदल मिश्र तथा इंशा अल्ला खां का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है और आगे चलकर हिंदी के दो मूर्धन्य साहित्यकारों भारतेंदु तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान से खड़ी बोली एक व्यवस्थित मानक रूप ग्रहण करती है।

आगे चलकर 1947 में देश आजाद होता है और हिंदी साहित्य में कई स्तर पर परिवर्तन दिखाई देते हैं। 1965 में हिंदी को हिंदी सेवियों के अथक प्रयासों से राजभाषा का दरजा प्राप्त होता है। आज हिंदी सारे देश में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। वह अनेक रूकावटों के बाद भी विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं को अपने साथ लेकर अंतरराष्ट्रीयता की ओर अग्रसित हो रही है।

## 1.8 अभ्यास प्रश्न

(1) आदिकालीन हिंदी की व्याकरणिक विशेषताओं को बताइए।

(2) हिंदी भाषा के योगदान में मध्यकाल की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

(3) आधुनिककाल में हिंदी के विकास के चरण को स्पष्ट कीजिए।

(4) हिंदी भाषा के विकास को संक्षेप में बताइए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 1.9 संदर्भ–ग्रंथ


1. '*हिंदी : उद्भव विकास और रूप*' - हरदेव बाहरी
2. '*हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ*' - कैलाश तिवारी
3. '*हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप*' - अंबा सुमन प्रसाद
4. '*हिंदी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ*' - भोलानाथ तिवारी
5. '*हिंदी भाषा का उद्गम और विकास*' - उदय नारायण तिवारी
6. '*हिंदी भाषा का इतिहास*' - धीरेंद्र वर्मा (भूमिका)
7. '*हिंदी भाषा का उद्गम और विकास*' - उदय नारायण तिवारी (भूमिका)
8. '*हिंदी भाषा*' - भोलानाथ तिवारी (भूमिका)


© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 2. हिंदी का भौगोलिक विस्तार

**लेखक**–स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार
  2.2.1 हिंदी क्षेत्र
  2.2.2 अन्य भाषा क्षेत्र
  2.2.3 भारतेतर क्षेत्र
  2.2.4 बोध प्रश्न
2.3 हिंदी भाषा की बोलियाँ
  2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 भारत की अन्य भाषाओं के क्षेत्र में हिंदी बोलियाँ
2.5 भारत के बाहर बोली जाने वाली बोलियाँ
2.6 ब्रज, खड़ी बोली तथा अवधी : विशेष परिचय
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न
2.9 संदर्भ-ग्रंथ

## 2.0 अधिगम का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम हिंदी तथा उसकी बोलियों के संबंध को बताते हुए हिंदी की बोलियों की सामान्य विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- हिंदी भाषा तथा उसकी बोलियों के अंतःसंबंध को समझ सकेंगे।
- हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार को जान सकेंगे।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- हिंदी भाषा क्षेत्र की बहुभाषिकता को समझ सकेंगे।
- हिंदी क्षेत्र की बोलियों के भाषिक समूहों को जान सकेंगे।
- विभिन्न बोलियों के क्षेत्रीय विस्तार से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी की बोलियों के विविध स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।

## 2.1 प्रस्तावना

संपूर्ण भारतीय भाषाओं का विकास क्रम आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के साथ जुड़ा हुआ है। कभी–कभी हिंदी का अर्थ बोलचाल की खड़ी बोली के अर्थ में लिया जाता है तो कभी–कभी साहित्यिक हिंदी के अर्थ में। उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान भारत के हिंदी भाषी राज्य माने जाते हैं और इन राज्यों में बोली जाने वाली बोलियां हिंदी की बोलियाँ कही जाती हैं। हिंदी की विभिन्न बोलियों को पाँच भाषिक वर्गों में बांटा गया है। इस इकाई में हम इन भाषिक वर्गों की बोलियों का अध्ययन करने के क्रम में इनकी संरचना के साथ–साथ इनके सामाजिक–साहित्यिक महत्त्व का भी अध्ययन करेंगे।

## 2.2 हिंदी और उसकी बोलियों का अंतः संबंध

हिंदी भाषा और उसकी सभी बोलियों का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। संस्कृत भाषी लोग, जिन्हें आर्य नाम से अभिहित किया जाता है, लगभग 1500 वर्ष ई. पू. में भारत आए तथा धीरे-धीरे प्रायः पूरे उत्तरी भारत में फैल गए। यहाँ बसने के बाद कुछ ही दिनों में उनकी भाषा में परिवर्तन आने लगे तथा उस भाषा (वैदिक संस्कृत) की कम-से-कम तीन बोलियाँ स्पष्ट रूप से विकसित हो गईं। इतनी जल्दी इन अलग-अलग बोलियों के विकास के मुख्यतः दो कारण थे। एक तो यह कि यह भाषा इतने लंबे-चौड़े क्षेत्र में फैल गई है कि इतने सुदूर प्रदेशों के लोगों का आपस में मिलना-जुलना संभव नहीं रहा, अतः अलग-अलग स्थानीय भाषा-रूपों का विकास अवश्यंभावी हो गया। दूसरे स्थान-स्थान पर आर्यों के पूर्व की जो मूल या पुरानी जातियाँ (जैसे द्रविड़ आदि) थीं, उनसे एक सीमा तक इनके रोटी-बेटी के संबंध हो गए और इस सामाजिक मिश्रण ने भाषा के स्थानीय रूपों के विकास में और भी तेजी ला दी, क्योंकि इससे न केवल उस भाषा का शब्द-भंडार प्रभावित हुआ, बल्कि व्याकरण भी अप्रभावित नहीं रह सका। बहुत से विद्वानों का विचार है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में परसर्गों, संयुक्त क्रियाओं तथा कृदंताधारित क्रिया रूपों की जो प्रवृत्ति है, उनके मूल में इन आर्य-पूर्व जातियों की भाषाओं का प्रभाव है।

इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि वैदिक साहित्य की भाषा के विश्लेषण से इस बात के काफी स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उस काल में बोल-चाल में कम-से-कम तीन बोलियाँ थीं – पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बाद में बोलचाल की संस्कृत का विकास जब पालि भाषा के रूप में हुआ– वह पालि भाषा जिसमें बौद्ध धर्म के बहुत से ग्रंथ लिखे गए– तो स्वभावतः स्थानीय बोलियों की संख्या और भी बढ़ गई। अशोक के शिलालेख (जो लोक-भाषा में है) के अध्ययन से इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उसमें कम-से-कम चार बोलियों थीं। अर्थात् वैदिककालीन तीन बोलियों की संख्या में एक (दक्षिणी) की वृद्धि हो गई थी।

पालि के बाद भाषा का जो जन प्रचलित रूप था, उसके स्थानीय रूप छः-सात विकसित हो गए, ब्राचड (आधुनिक सिंध), केकय (आधुनिक मुलतान तथा आस-पास), टक्क (आधुनिक पूर्वी पंजाब), शौरसेनी (आधुनिक गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, पश्चिमी तथा उत्तरी प्रदेश, मध्य प्रदेश के मध्य उत्तर तथा पश्चिम का काफी बड़ा भाग), महाराष्ट्री (आधुनिक महाराष्ट्र, गोवा तथा कर्नाटक और आंध्र के उत्तरी भाग), अर्धमागधी (आधुनिक उत्तर प्रदेश के लखनऊ, इलाहाबाद आदि के आस-पास का भाग, मध्य प्रदेश का रीवां तथा पूरा छत्तीसगढ़) तथा मागधी (आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूरा बिहार, असम, बंगाल, बंगला देश तथा उड़ीसा)। इनमें आपस में इतने स्पष्ट अंतर विकसित हो गए थे कि प्राकृत के व्याकरण ग्रंथों में इनकी अलग-अलग विशेषताओं के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। प्राकृत काल के बाद भी बोलचाल की भाषा के विकसित रूप को अपभ्रंश नाम दिया गया है। इस काल में प्राकृत काल के ये सात रूप कम-से-कम बारह-तेरह रूपों में विकसित हो गए, जिनके लिए नामों का निर्धारण नहीं हुआ। सुविधा के लिए आधुनिक नामों के आधार पर नाम देकर प्राकृत काल, अपभ्रंशकाल तथा आधुनिक काल की भाषाओं और बोली वर्गों की स्थिति को इस प्रकार दिखाया जा सकता है–

| **प्राकृत** | **अपभ्रंश** | **आधुनिक भाषाएँ या बोली वर्ग** |
|---|---|---|
| ब्राचड– | ब्राचड– | सिंधी |
| केकय– | केकय– | लहंदा (पश्चिमी पंजाब) |
| टक्क– | टक्क– | पंजाब (पूर्वी पंजाब) |
| शौरसेनी– | (क) गुजराती शौरसेनी– | गुजराती |
| | (ख) राजस्थानी शौरसेनी | राजस्थानी (बोली वर्ग) |
| | (ग) पश्चिमी हिंदी शौरसेनी | पश्चिमी हिंदी (बोली वर्ग) |
| | (घ) पहाड़ी शौरसेनी– | पहाड़ी (बोली वर्ग) |
| अर्धमागधी– | अर्धमागधी– | पूर्वी हिंदी (बोली वर्ग) |
| मागधी– | (क) बिहारी मागधी– | बिहारी (बोली वर्ग) |
| | (ख) बंगाली मागधी– | बंगला |
| | (ग) असमी मागधी– | असमी |
| | (घ) उड़िया मागधी– | उड़िया |
| महाराष्ट्री– | महाराष्ट्री– | मराठी |



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

यह ध्यान देने की बात है कि हिंदी क्षेत्र की भाषा हिंदी है तथा उसे क्षेत्र में पाँच उपभाषाएँ या बोली वर्ग बोले जाते हैं : राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, पहाड़ी, बिहारी। ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि हिंदी और उसकी बोलियों का विकास तीन प्राकृतों (शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी) से विकसित पाँच अपभ्रंश (राजस्थानी अपभ्रंश, पश्चिमी हिंदी अपभ्रंश, पहाड़ी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश तथा बिहारी अपभ्रंश) से हुआ है।

हिंदी भाषा की बोलियाँ तीन प्रकार की हैं :

(क) हिंदी प्रदेश में प्रयुक्त (जैसे ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि)।

(ख) हिंदीतर भारतीय प्रदेशों में प्रयुक्त (जैसे दक्खिनी हिंदी, बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी)।

(ग) विदेशों में प्रयुक्त (जैसे सूरीनामी हिंदी, फीजी हिंदी, मारीशस की हिंदी आदि)।

भारत के बाहर की प्रायः सभी हिंदी बोलियाँ मूलतः और मुख्यतः भोजपुरी पर आधारित हैं, अतः उनको भोजपुरी की विभिन्न उपबोलियाँ माना जा सकता है, जिन पर उन स्थानों की अपनी-अपनी मूल भाषाओं तथा यूरोपीय आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए मारीशसी पर फ्रांसीसी का तो सूरीनामी पर डच का। फीजी में अवधी का भी मिश्रण है। सोवियत संघ की ताजुज्बेकी मुझे प्राचीन मेवाती-ब्रज से संबद्ध लगती है जिस पर पंजाबी पश्तो, ताजिक-उज्बेक तथा रूसी का प्रभाव है।

भारत की हिंदीतर क्षेत्र की बोलियों में रूप तो खड़ी बोली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि कई बोलियों के हैं, किंतु संभवतः इनका आधार खड़ी बोली को मान सकते हैं।

इन बातों को दृष्टि में रखते हुए हिंदी की बोलियों के अंतरसंबंधों को इस रूप में दिखाया जा सकता है।

पश्चिमी हिंदी तथा पहाड़ी बोलियाँ आपस में संबद्ध हैं किंतु पूर्वी हिंदी तथा बिहारी अलग हैं। अर्थात् हिंदी बोलियों के मूलतः तीन वर्ग हैं : शौरसेनी वर्ग, अर्धमागधी वर्ग तथा मागधी वर्ग। फिर प्रत्येक वर्ग की बोलियाँ आपस में जुड़ी हैं। यही नहीं एक वर्ग की बोलियाँ भी आपस में समान रूप से जुड़ी हैं। यह बात भी उपर्युक्त आरेख में संकेतित है, उदाहरण के लिए पश्चिमी हिंदी बोलियों में हरियाणी तथा कौरवी का आपस में अपेक्षाकृत घनिष्ठ संबंध है तो ब्रजभाषा और कनौजी का आपस में। बुंदेली अपेक्षाकृत थोड़ी अलग है। यह बात भाषिक संरचना की दृष्टि से कही जा रही है।

बंबइया और कलकतिया हिंदी खड़ी बोली के बोली रूप की तुलना में हिंदी के मानक रूप (खड़ी बोली) से अधिक संबद्ध हैं।

इस तरह बोलियों को उनका पूर्व इतिहास परस्पर संबंधित करता है किंतु भूगोल का भी इसमें अपना हाथ होता है। या इसे यों कहा जा सकता है कि संबद्ध इतिहास बोलियों को भौगोलिक दृष्टि से भी प्रायः निकट या दूर कर देता है। उदाहरण के लिए राजस्थानी बोलियाँ पश्चिमी हिंदी के अपेक्षाकृत निकट है, बनिस्बत बिहारी बोलियों के।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अंत में एक प्रश्न और! हिंदी से इन बोलियों का क्या संबंध है? यह ध्यान देने की बात है कि हिंदी की बोलियाँ उस रूप से विकसित नहीं हैं जैसे संस्कृत से प्राकृतों, या प्राकृत से एकाधिक अपभ्रंशों का विकास हुआ था। दूसरे शब्दों में हिंदी का उसकी बोलियों से मां-बेटी का सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः हिंदी इन्हीं बोलियों में एक (खड़ी बोली) के दिल्ली में प्रयुक्त रूप पर आधारित है, इस तरह विकासात्मक दृष्टि से हिंदी, अपनी बोलियों की भगिनी है। उसके भाषा माने जाने का कारण समाज भाषा वैज्ञानिक है। सामाजिक स्वीकृति से उसे भाषा दर्जा दिया गया है जबकि अन्य बोलियाँ, बोलियाँ ही रह गई हैं। ऐसी उसकी केंद्रीय स्थिति तथा साधु-संतों और दरवेशों एवं मुसलमान शासकों आदि के माध्यम से उसके अंतःप्रांतीय प्रचार आदि के कारण हुआ है।

### 2.2.1 बोध प्रश्न

**पश्चिमी हिंदी का संबंध किससे है ?**

(क) शौरसेनी (ख) मागधी (ग) अर्ध मागधी (घ) ब्राचड

**2. अर्ध मागधी से किस हिंदी का विकास हुआ है ?**

(क) बिहारी (ख) राजस्थानी (ग) पहाड़ी (घ) पूर्वी हिंदी

## 2.3 हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार

हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है–

### 2.3.1 हिंदी क्षेत्र

हिंदी क्षेत्र में मुख्यतः हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार आते हैं। गौणतः पंजाब के कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के कुछ भाग भी इसमें आते हैं।

### 2.3.2 अन्य भाषा क्षेत्र

इसमें कर्नाटक तथा आंध्र के दक्खिनी हिंदी वाले भाग एवं कलकत्ता, बंबई तथा अहमदाबाद आदि भारत के अहिंदी भाषी क्षेत्र के बड़े नगरों में बिखरे हुए कुछ हिंदी भाषी छोटे-छोटे क्षेत्र आते हैं।

### 2.3.3 भारतेतर क्षेत्र

भारत के बाहर भी कई देशों में हिंदी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। जैसे मारीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड आदि में। ऐसे ही नेपाल के भी सीमावर्ती इलाकों में हिंदी भाषी हैं। इनके अतिरिक्त कई देशों में थोड़े बहुत हिंदी भाषी हैं। जैसे इंग्लैंड में, लंदन में, सोवियत संघ में ताजाकिस्तान-उज्बेकिस्तान की सीमा पर, अफ्रीका में गियाना तथा दक्षिणी अफ्रीका में, अमेरिका के भी कई बड़े नगरों जैसे न्यूयार्क में। इनके अतिरिक्त हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर आदि पूर्वी देशों में भी हिंदी भाषी हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 2.3.4 बोध प्रश्न

**(1) इनमें से कौन-से हिंदी क्षेत्र के नहीं है।**

(क) हरियाणा (ख) मध्य प्रदेश (ग) तमिलनाडु (घ) दिल्ली

**(2) हिंदी के भौगोलिक विस्तार में भारतेतर क्षेत्रों के नाम बताइए।**

## 2.4 हिंदी भाषा की बोलियाँ

हिंदी भाषा की बोलियाँ क्षेत्र की दृष्टि से तीन प्रकार की हैं–

### (क) हिंदी क्षेत्र की बोलियाँ

हिंदी क्षेत्र में हिंदी की मुख्यतः सोलह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में विभक्त करके इस प्रकार रखा जा सकता है–

| उपभाषाएँ अथवा बोली वर्ग | बोलियाँ |
|---|---|
| 1. पश्चिमी बोली | 1. खड़ी बोली या कौरवी |
| | 2. ब्रजभाषा |
| | 3. हरियाणवी |
| | 4. बुंदेली |
| | 5. कन्नौजी |
| 2. पूर्वी हिंदी | 1. अवधी |
| | 2. बघेली |
| | 3. छत्तीसगढ़ी |
| 3. राजस्थानी | 1. पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) |
| | 2. पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) |
| | 3. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) |
| | 4. दक्षिणी राजस्थानी (मालवी) |

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

| | | |
|---|---|---|
| 4. | पहाड़ी | 1. पश्चिमी पहाड़ी |
| | | 2. मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमांयूनी-गढ़वाली) |
| 5. | बिहारी | 1. भोजपुरी |
| | | 2. मगही |
| | | 3. मैथिली |

नीचे इन सबका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है–

## खड़ी बोली

'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक तो साहित्यिक हिंदी खड़ी बोली के अर्थ में और दूसरे, दिल्ली-मेरठ की आस-पास की लोक बोली के अर्थ में। यहाँ दूसरे अर्थ में ही शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। इसी अर्थ में कुछ लोग 'कौरवी' का भी प्रयोग करते हैं। कुरू जनपद की बोली होने के कारण राहुल सांकृत्यायन ने इसे यह नाम दिया था। 'खड़ी बोली' में 'खड़ी' शब्द का अर्थ विवादास्पद है। कुछ लोगों ने 'खड़ी' का अर्थ 'खरी' (pure) अर्थात् 'शुद्ध' माना है, तो दूसरों ने खड़ी (standing) कुछ अन्य लोगों ने इसका सम्बन्ध खड़ी बोली में अधिकता से प्रयुक्त खड़ी पाई (गया, बड़ा, का) तथा उसके ध्वन्यात्मक प्रभाव-कर्कशता से जोड़ा है। यों अभी तक यह प्रश्न अनिश्चित है। खड़ी बोली या कौरवी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मेरठ, गाजियाबाद, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली बहुत संपन्न है और इसमें पवाड़ा नाटक, लोक कथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इनका काफी अंश प्रकाशित भी हो चुका है। हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खड़ी बोली पर आधारित है। दीर्घ-स्वर के बाद मूल व्यंजन के स्थान पर द्‌वित्व व्यंजन (बेट्‌टा, बाप्पू, रोट्‌टी), महाप्राण के पूर्व इसी स्थिति में अल्पप्राण का आगम (देक्खा, भूक्खा), न का ण (अपणा, राणी, जाणा), न का ळ (काळा, नीळा), अवधी (घोड़ा) व्यंजनांत, ब्रज ओकारांत (घोरो) के स्थान पर आकारांत (घोड़ा) आदि इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं।

## ब्रजभाषा

'ब्रज' का पुराना अर्थ 'पशुओं या गौओं का समूह या 'चारागाह' आदि है। पशु-पालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र कदाचित् ब्रज कहलाया, और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा अथवा ब्रजी कही जाती है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप में हुआ है। ब्रजभाषा, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, बदायूं, बरेली तथा आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ भरतपुरी, डांगी, माथुरी आदि हैं। साहित्य और लोक साहित्य दोनों की दृष्टियों से ब्रजभाषा बहुत संपन्न है। हिंदी प्रदेश के बाहर भी भारत के अनेक क्षेत्रों में ब्रजभाषा में साहित्य रचना होती रही। सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकर आदि इसके प्रमुख कवि हैं। खड़ी



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बोली की आकारांतता के स्थान पर ओकारांतता (घोरो, भलो, छोरो, करेगो, बड़ो), व्यंजनांत के स्थान पर उकारांत (सबु भालु), के स्थान पर ने को का कूं, से का सो, पर का पै आदि इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं।

## हरियाणवी

'हरियाणी' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। 'हरि-यान' (कृष्ण का यान द्वारका इधर से ही गया था), 'हरि+अरण्य' (हरा वन) तथा 'अहीर+आना' (राजपूताना, तिलंगाना की तरह) आदि कई मत दिये गये हैं, किंतु कोई भी सर्वमान्य नहीं है। हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ। खड़ी बोली, अहीरवाटी, मारवाड़ी, पंजाबी से घिरी इस बोली को कुछ लोग खड़ी बोली का पंजाबी से प्रभावित रूप मानते हैं। उसका क्षेत्र मोटे-मोटे रूप से हरियाणा का कुछ भाग तथा दिल्ली पंजाब का पश्चिमी देहाती भाग है। इसकी मुख्य बोलियाँ जादू तथा बांगरू हैं। हरियाणी में केवल लोक साहित्य है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है। अनेक स्थानों पर ल का ळ (काळ, सोळ, माळा), एवं व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (बाब्बू, भित्तर, गाड्डी), का ण (होणा), सहायक क्रिया हूं, हैं, है, हो के स्थान पर सं, सै, सैं, सो, ड़ का ड (बड़ा, पेड) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

## बुंदेली

'बुंदेले' राजपूतों के कारण मध्य प्रदेश तथा उत्तर की सीमा-रेखा के झांसी, छतरपुर, सागर आदि तथा आस-पास के भागों को बुन्देलखंड कहते हैं। वहीं की बोली बुंदेली या बुंदेलखंडी है। इसका क्षेत्र झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवानी, होशंगाबाद तथा आस-पास का क्षेत्र है। बुंदेली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। बुंदेली में लोक साहित्य काफी है, जिसमें इसुरी के फाग बड़े प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हिंदी प्रदेश की प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' जिसे हिंदी साहित्य में भी स्थान मिला है, मूलतः बुंदेली की एक उपबोली बनाफरी में लिखा गया है। इसकी अन्य उपबोलियाँ राठोरी, लोधाती आदि हैं। ब्रज के ऐ, औ का ए, ओ (ओर, जेसो), अन्त्य अल्पप्राणीकरण (भूक, हात्, दूद, जीब), स का छ (सीढ़ी-छीड़ी), च का स (सांचे-साँसे) कर्म-संप्रदान में 'को' के स्थान पर खों, खां, खँ का प्रयोग इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

## कन्नौजी

कन्नौज (संस्कृत कान्यकुब्ज) इस बोली का केंद्र है, अतः इसका नाम कन्नौजी पड़ा है। यह इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानुपर, हरदोई, पीलीभीत आदि में बोली जाती है। कन्नौजी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। यह ब्रजभाषा के इतनी अधिक समान है कि कुछ लोग इसे ब्रजभाषा की ही उपबोली मानते हैं। कन्नौजी में केवल लोक-साहित्य मिलता है, जिसमें कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है। उकारांतता (खातु, घरु, सबु), ओकारांतता (हमारो या हमाओ), इया (जिभिया, छोकरिया) तथा वा (बेटवा, बचवा), औ का उ (कउन), बहुवचन के लिए 'ह्वार' (हम ह्वार=हम लोग) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

## अवधी

इस बोली का केंद्र अयोध्या है। 'अयोध्या' का ही विकसित रूप 'अवध' है, जिससे 'अवधी' शब्द बना है। इसके उद्‌भव के संबंध में विवाद है। अधिकांश विद्‌वान इसका संबंध अर्धमागधी अपभ्रंश से मानते हैं' किन्तु कुछ लोग इसकी पालि से समानता के लिए आधार पर इस मत को नहीं मानते। अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर (अंशतः), उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ बाराबंकी आदि है। अवधी में साहित्य तथा लोकसाहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं। इसके प्रसिद्‌ध कवि मुल्लादाऊद, कुतुबन, जायसी, उस्मान तथा सबलसिंह आदि हैं। ऐ, औ का अइ, अउ या अएं, अओं उच्चारण; संज्ञा के तीन रूप (घोर, घोरवा, घरौना), स्वार्थ का व्यापक प्रयोग (मोलवा, मोरवा), 'ह' (सईस-सहीस, इच्छा-हिंच्छा) या र का आगम (पसंद-परसंद, वियोग-विरोग), कुछ में महाप्राणीकरण पुनः फुनः, (पेड़-फेड़), व का ब (बिद्यार्थी, बिद्यालय), 'मौसा' के लिए 'मौसिया', व्यंजनांतता (घोड़ा-घोर, होत, होब, करत, बड़, खोट, नीक) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ बैसवाड़ी, मिर्जापुरी तथा बनोधी हैं।

## बघेली

बघेले राजपूतों के आधार पर रीवां तथा आस-पास का क्षेत्र बघेलखंड कहलाता है और वहाँ की बोली को बघेलखंडी या बेघली कहते हैं। बघेली का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्‌यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किंतु भाषावैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है, और इसे दक्षिणी अवधी कह सकते हैं। इसका क्षेत्र रीवां, नागोद, शहडोल, सतना, मेहर तथा आस-पास का क्षेत्र है। कुछ अपवादों को छोड़कर बघेली में केवल लोक साहित्य है। सर्वनामों में मुझे के स्थान पर म्वां, मोही, तुहो के स्थान पर त्वां, तोही, विशेषण में हा प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का ध्वाड़, मोर का म्वार, पेट का प्याट, देत का द्यात आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

## छत्तीसगढ़ी

मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ होने के कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ी पड़ा है। अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिण रूप से इसका विकास हुआ है। इसका क्षेत्र सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, नंदगांव, कांकेर आदि हैं। छत्तीसगढ़ी में भी केवल लोक साहित्य हैं छत्तीसगढ़ी की मुख्य उपबोलियाँ सुरगुजिया, सदरी, बगानी, बिझवाली आदि हैं। उड़िया तथा मराठी की सीमा पर की छत्तीसगढ़ी में ऋ का उच्चारण रु किया जाता है। कुछ शब्दों में महाप्राणीकरण (इलाका-इलाखा), अघोषीकरण (बंदगी-बंदकी, शराब-शराप, खराब-खराप), स का छ तथा छ का स (सीता-छीता, केना-सेना) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

## पश्चिमी राजस्थानी

राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान अर्थात् जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, सिरोही, जैसलमेर आदि में बोली जाता है। इसे मारवाड़ी भी कहते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से इसका विकास हुआ है। मारवाड़ी में साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं। मीराबाई के पद इसी में लिखे



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गए हैं। मारवाड़ी ढुंढारी, मेवाड़ी, सिरोही आदि इसकी उपबोलियाँ हैं। पश्चिमी राजस्थानी में ध और स को ब्लिक ध्वनियाँ हैं। से का सूँ या ऊं मैं का मांय, का, की, के का नो, नी ने आदि इसकी कुछ-कुछ विशेषताएँ हैं।

### उत्तरी राजस्थानी

उत्तरी राजस्थान में इसका क्षेत्र अलवर, गुड़गांव, भरतपुर तथा आस-पास है। इसे मेवाती कहते हैं। मेवाती का नाम 'मेव' जाति के इलाके मेवात के नाम पर पड़ा है। इसकी एक मिश्रित बोली अहीरवाटी है जो गुड़गांव, दिल्ली तथा करनाल के पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती है। अन्य बोलियाँ राठी, नहेर, कठर, गूजरी आदि हैं। इस पर हरियाणी का बहुत प्रभाव है। कर्त्ता कर्म में नै, कर्म-संप्र. मों, के करम, अपादान सें, तें, इसको, उनको, आदि के अतिरिक्त, बैंकों, कैहको, आदि विशेषताएँ हैं। मेवाती में केवल लोकसाहित्य है। उत्तरी राजस्थानी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है।

### पूर्वी राजस्थानी

राजस्थान में पूर्वी भाग में जयपुर, अजमेर, किशनगढ़ आदि में यह बोली जाती है। इसकी प्रतिनिधि बोली जयपुरी है जिसका केन्द्र जयपुर है। जयपुरी को ढुंढाणी कहते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र का पुराना नाम ढुंढाण है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली में केवल लोक-साहित्य है। तोरावटी, काठेड़ा, चौरासी आदि मुख्य उपबोलियाँ हैं। इसकी कुछ विशेषताएँ अधिकरण में मालै, मैने के लिए मैंने, और मूने, पूर्णकृदन्त दीनू, लीनू आदि हैं।

### दक्षिणी राजस्थानी

इंदौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद में तथा आस-पास इनका क्षेत्र है। इसकी प्रतिनिधि बोली मालवी, है, जिसका मुख्य क्षेत्र मालवा है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली में कुछ साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य है। सोंडवाडी, रांगड़ी, पाटवी, रतलामी आदि इसकी कुछ मुख्य बोलियाँ हैं। कर्म परसर्ग खे, रे, करण-अपा. ती, तारे संप्रत्र दे. सारू संबंध थाके, थाका, थाकी, इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

### पश्चिमी पहाड़ी

जौनसार, सिरमौर, शिमला, मंडी, चंबा तथा आस-पास इसका क्षेत्र है। इसे प्रायः खस नामक एक कल्पित अपभ्रंश से विकसित माना जाता है, किंतु मेरे विचार में यह शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से विकसित है। पश्चिमी पहाड़ी में केवल लोक-साहित्य मिलता है। यह जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, चमेआलो, क्योंठली आदि का सामूहिक नाम है।

### मध्यवर्ती पहाड़ी

शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित इस बोली का क्षेत्र गढ़वाल, कुमायूं तथा आस-पास का कुछ क्षेत्र है। वस्तुतः यह गढ़वाली और कुमायूंनी दो बोलियों का सामूहिक नाम है। इन बोलियों में लोक-साहित्य तो



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पर्याप्त मात्रा में है। साथ ही कुछ साहित्य भी है। कुमायूंनी मुख्य की उपबोलियाँ खसपर जिया, कुमैयां, गंगोया तथा गढ़वाली की राठी, बघानी, सलानी, टेहरी आदि हैं।

### भोजपुरी

बिहार के शाहबाद जिले के भोजपुर गाँव के नाम के आधार पर इस बोली का नाम भोजपुरी पड़ा है, मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से विकसित इस बोली का क्षेत्र बनारस (अंशतः), जौनपुर (अंशतः), मिर्जापुर (अंशतः), गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरियां, आजमगढ़ बस्ती, शाहाबाद, आरा, छपरा, चंपारन, सारन तथा आस-पास का कुछ क्षेत्र है। हिंदी प्रवेश की बोलियों में भौजपुरी के बोलने वाले सबसे अधिक हैं। इसमें केवल लोक-साहित्य मिलता है। इधर कुछ वर्षों से साहित्य की रचना भी हुई है। ये दोनों ही पर्याप्त मात्रा में प्रकाशित हैं भोजपुरी की मुख्य उपबोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा नागपुरिया हैं। स्वर मध्यम र का लोप (धरि, धइ, लरिका-लड़का, करि-कइ), ढ़ का र्ह (कार्हा), न्द का न्न, सुन्नर-सुंदर, म्भ का म्ह (खंभा-खम्हा), न का ल (लोट, लम्बर, लोटिस) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

### मगही

संस्कृत 'मगध' के विकसित शब्द 'मगह' के आधार पर इसका नाम पड़ा है। मागधी अपभ्रंश से विकसित यह बोली पटना, गया, पलामू, हजारीबाग, मुंगेर, भागलपुर में तथा आस-पास बोली जाती है। इसमें लोक-साहित्य काफी है। पूर्वी, टलहा, जंगली आदि कुछ उपबोलियाँ हैं।

### मैथिली

मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से विकसित यह बोली हिंदी क्षेत्र और बंगाली क्षेत्र की संधि पर मिथिला में बोली जाती है। 'मिथिला' से ही इस बोली के नाम का संबंध है। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया तथा मुंगेर आदि में इसका क्षेत्र है। लोक-साहित्य की दृष्टि से मैथिली बहुत संपन्न है, साथ ही इसमें साहित्य-रचना अत्यन्त प्राचीन काल से होती चली आई है। हिंदी साहित्य को विद्यापति जैसे रससिद्ध कवि देने का श्रेय मैथिली को ही है। इनके अतिरिक्त गोविंददास, रणजीतलाल, हरिमोहन झा आदि भी इसके अच्छे साहित्यकार हैं। इसकी मुख्य उपबोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी छिकाछिकी आदि हैं। अवधी की तरह तीन रूप (घोरा, घोरवा, घोरडवा) ड़ के स्थान पर र (घोरा, सरक), स, श, ष, का संयुक्त होने पर ह (मास्टर-महटर, पुष्प-पुहुप) हो जाना, ज़ का चं (मेज़ मेच, कमीज-कमेच) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

ऊपर जिन पाँच को उपभाषाएँ कहा गया है, उन्हें बोली-वर्ग भी माना जा सकता है। अर्थात् बोलियों का पश्चिमी हिंदी वर्ग, पूर्वी हिंदी वर्ग, राजस्थानी वर्ग, पहाड़ी वर्ग तथा बिहारी वर्ग।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 2.4.1 बोध प्रश्न

**(1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।**

(क) ब्रजभाषा .....की बोली है। (पूर्वी हिंदी/ पहाड़ी/ पश्चिमी हिंदी)

(ख) मेरठ .....का क्षेत्र है। (ब्रजभाषा/खड़ी बोली/ अवधी)

(ग) हरियाणवी .....में बोली जाती है। (छत्तीसगढ़/ करनाल/ जबलपुर)

## 2.5 भारत में अन्य भाषाओं के क्षेत्र में हिंदी बोलियाँ

इनमें तीन बोलियाँ मुख्य हैं–

### दक्खिनी

दक्षिण भारत में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी नाम से अभिहित किया गया है। इनका मूल आधार दिल्ली के आस-पास की 14-15वीं सदी की खड़ी बोली है। मुसलमानों (फ़ौज, फकीर, दरवेश) के साथ यह भाषा वहाँ पहुँची तथा उत्तर भारत से जाने वाले मुसलमानों और हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त होने लगी। इसमें कुछ तत्त्व पंजाबी, हरियाणी, ब्रज तथा अवधी के भी हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों से भी लोग दक्षिण में गए, जिनके माध्यम से यह भाषा काफी कुछ मिश्रित हो गई है। इसका क्षेत्र मुख्यतः बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर तथा गौणतः बरार, बंबई तथा मध्य प्रदेश है। इस पर बाद में उर्दू का भी प्रभाव पड़ा, साथ ही तमिल, तेलगू तथा कन्नड़ का भी प्रभाव पड़ा, मुख्यतः शब्दसमूह के क्षेत्र में। इसमें काफी प्राचीन काल से साहित्य रचना हुई है। इसकी उपबोलियाँ गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि हैं।

### बंबइया हिंदी

यह बंबई नगर में बोली जाती है। इसका मूल आधार खड़ी बोली हिंदी है, किंतु इस पर मराठी, गुजराती आदि का प्रभाव पड़ा है। बंबइया हिंदी तकनीकी दृष्टि से पिजिन है, अर्थात् यह बोली तो है किंतु किसी की मातृबोली नहीं है, न उच्च वर्ग के लोग औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। हां, इस बोली का प्रयोग फिल्मों में तथा उसी अंचल से संबद्ध तथा साहित्य में अवश्य होता है। जगदंबाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुर्दाघर' बंबइया हिंदी में ही लिखा गया है।

### कलकतिया हिंदी

इसका प्रयोग कलकत्ता में होता है। यह भी पिजिन है। हिंदी की इस बोली पर बंगाल तथा भोजपुरी का काफी प्रभाव है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.6 भारत के बाहर बोली जाने वाली बोलियाँ

इनमें कुछ मुख्य ताजुज्बेबी (सोवियत संघ में ताजाकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की सीमा के पास बोली जाती हैं), मारीशसी (मारीशस में), फीजी (फीजी में), सूरनामी (सूरीनाम में) तथा ट्रिनिडाड (ट्रिनिडाडी में) मुख्य हैं। इनमें ताज्जुबेकी का मूल आधार मेवाती लगता है जिस पर पंजाबी, ताजिक, उज्बैक तथा रूसी का प्रभाव पड़ा है। शेष का मुख्य आधार भोजपुरी है, तथा कुछ में कुछ अवधी तत्त्व भी हैं। साथ ही स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। कुछ यूरोपीय प्रभाव भी है। जैसे मारीशसी पर फ्रांसीसी प्रभाव है तो सूरनामी पर डच। ताजुज्बेकी को छोड़कर सभी पर आज की मानक हिंदी का प्रभाव पड़ा रहा है।

## 2.7 ब्रज, खड़ी बोली तथा अवधी : विशेष परिचय

ऊपर इनके बारे में कुछ बातें बताई गई हैं। यहाँ इनके संबंध में कुछ और बातें दी जा रही हैं :–

**ब्रजभाषा –** ब्रजभाषा का संबंध, जैसा कि पीछे कहा गया, शौरसेनी अपभ्रंश में मध्यवर्ती रूप से है। इनका जन्म 1000 ई. के आस-पास माना जा सकता है। ब्रजभाषा का इतिहास या विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है– आदिकाल (प्रारम्भ में 1525), मध्यकाल (1525-1800), आधुनिक काल (1800–अब तक) आदिकालीन ब्रजभाषा, जैसा कि स्वाभाविक है, अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है तथा उसके सभी रूपों का समुचित विकास नहीं हुआ है। हेमचंद्र के व्याकरण में जो उदाहरण हैं, उनकी भाषा में ब्रजभाषा का पूर्वरूप सुरक्षित है। ब्रजभाषा की–हि (कर्म करण, सम्प्रदान, अधिकरण) विभक्ति, उसमें –हि (अंगहि-करण कारक) रूप में मिलती है। संबंध परसर्ग उसमें 'केरउ' रूप में हैं, तथा अधिकरण परसर्ग मंझे, मन्झ के रूप में। इन्हीं से ब्रज को, के, की एवं मांझ, मांहि का विकास हुआ है। ब्रज पै, पर हेमचंद्र में 'उप्परि' रूप में है। सर्वनाम में भी यही स्थिति है। 'हों' 'हउ' रूप में 'मैं', 'मई' रूप में, 'वो', 'ओई' रूप में तथा 'तू' रूप में है। 'अइसो' आदि सार्वजनिक विशेषण भी हैं। जाणिउं (ब्रजं जान्यो), दिण्णी (ब्रज दीन्ही), गोवइ (ब्रज गोवै) आदि क्रियारूप हैं। संदेशरासक, प्राकृतपैंगलम् आदि संधिकालीन रचनाओं में भी ब्रज के रूप हैं। लगभग 1350 ई. से ब्रज का अधिक स्पष्ट रूप मिलने लगता है। इस दृष्टि से अग्रवाल कवि का पद्युम्नचरित (1354 ई.), विष्णुदास (15वीं सदी पूर्वार्द्ध) की महाभारत कथा, रूक्मिणमंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला, मानिक की बैतालपचीसी (1489 ई.), छिताईवार्ता; थेघनाथ की गीता भाषा (1500 ई.) आदि प्रमुख हैं। इस काल के प्राप्त ब्रजरूप निम्नांकित हैं : परसर्ग–नैं, कहुं, कौ, को, कूं, सौं, तैं, ते; कौं, को, के की, कउ, मांझि मांहि, में, मंहि, मन्झि। सर्वनाम– हउं, हों, मई, मो, मोहि, मोरो, मोरी, मेरे; तुम, तुम्हरे, सो, ताको, बहइ, वै, उन, जो, को, कौण, आपणे, आपनी, अपनी। क्रिया–हौ, भये, भई, हो, आदि। **अव्यय–** अब, तब, जब, तिहाँ कहं, आगे, भीतर आदि। मध्यकालीन ब्रजभाषा सूर, नंद, नरोत्तमदास, नाभादास, केशवदास, रसखान, सेनापति, बिहारी, भूषण, देव, घनानंद आदि में सुरक्षित है। इस काल की ब्रज का रूप परिनिष्ठित हो गया है। शब्द समूह की दृष्टि से, इस काल की ब्रजभाषा में अरबी-फारसी-तुर्की के काफी शब्द आ गए हैं। अंतिम काल में लल्लूलाल, भारतेंदु, रत्नाकार, कविरत्न



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

आदि प्रमुख हैं। इस काल की साहित्यिक ब्रज पर खड़ी बोली का कुछ प्रभाव है। शब्द समूह में आधुनिक ब्रज में अंग्रेजी के अनेक शब्द आ गए हैं।

इसके परसर्ग हैं–

परसर्ग : कर्त्ता–ने, नें, नै, नैं न

कर्म–संप्रदान–कु कुं, कूं, कू कों, को, कौं, ऐ, ए, इ, कैं, कें

करण–अपादान–ते, ते, तैं, सू, सूं, सौं, सों, सै, तें, तै

संबंध–को, कौ (पुल्लिंग एकवचन अविकारी), कि, की (स्त्रीलिंग) के (पुल्लिंग विकारी बहु.)

अधिकरण–में, मैं, महं, मांहि, माहीं, महि, म, प, पै, पे

इसके **कारक** रूप हैं।

| **कारक रूप** | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| पुल्लिंग : | अविकारी रूप–आम, आमु | आम; आंमु |
| | विकारी रूप–आम, आमु | आमन, आमनु, आमौं, अमानि |
| | अविकारी रूप–कांटा कांटो | कांटे, कांटन, कांटान, |
| | कांटों | कांटे |
| विकारी रूप– | कांटे, कांटा, | कांटन, कांटनि, कांटों, |
| | कांटै | कांटे, कांटो |
| स्त्रीलिंग : | अविकारी रूप–किताब | किताबें, किताबन, किताबैं |
| | विकारी रूप–किताब | किताबन, किताबन, किताबों |
| | अविकारी रूप–रोटी | रोटिन, रोटीन, रोटियनि, |
| | विकारी रूप–रोटी | " " रोटियन, रोटियों, रोटियां |

**कुछ सर्वनामरूप हैं**

| **सर्वनाम : उत्तम पुरुष** | **एकवचन** | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| | अविकारी रूप–मैं, में, हौं, हों, हूं | हम |
| | विकारी रूपी–मों, मो, मोहि, मुहि, | हम, हमन, हमनि, हमौं |
| | मुज् मोय् | |

## 2.8 सारांश

भाषा और बोली का घनिष्ठ संबंध है। राजनीतिक साहित्यिक कारणों से एक बोली, भाषा का रूप ले लेती है तो कभी भाषा, बोली में परिवर्तित हो जाती है। हिंदी के कई रूप समाज में प्रचलित हैं। बोलचाल की हिंदी, कार्यालयी हिंदी, साहित्यिक हिंदी। खड़ी बोली और हिंदी भाषा की व्यंजना के अंतर



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

की समझ भी आवश्यक है। खड़ी बोली कुछ जनपदों की बोली है, जबकि हिंदी भाषा अठारह बोलियों का समुच्चय है। हिंदी भाषा लोचदार एवं गतिशील भाषा रही है। हिंदी भाषा ने न केवल दूसरी भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया है, अपितु संवेदना का विस्तार भी किया है। प्रत्येक बोली के प्रयोग का एक निश्चित क्षेत्र है और इन क्षेत्रों के नाम पर ही बोलियों का नामकरण किया गया है। कुछ बोलियों का महत्त्वपूर्ण साहित्यिक इतिहास है, तो कुछ में साहित्यिक सृजन का प्रयास अभी हो रहा है। कुछ बोलियाँ अपने बोलने वालों की संख्या अथवा साहित्यिक अवदान को आधार बनाकर स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिए जाने का माँग उठा रही है तो 'मैथिली' ऐसी बोली है जिसे अब हिंदी से स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिल भी चुका है।

## 2.9 अभ्यास प्रश्न

(1) हिंदी तथा उसकी बोलियों के अंतःसंबंध को स्पष्ट कीजिए ?
(2) पश्चिमी हिंदी की बोलियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(3) हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार को बताइए।
(4) हिंदी भाषा क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? बताइए।
(5) हिंदी क्षेत्र की बोलियों को कितने वर्गों में विभाजित किया गया है? स्पष्ट कीजिए।
(6) अवधी बोली का सामान्य परिचय दीजिए।
(7) पहाड़ी हिंदी की बोलियों का परिचय दीजिए।

## 1.10 संदर्भ-ग्रंथ


- *'हिंदी : उद्भव विकास और रूप'* - हरदेव बाहरी
- *'हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ'* - कैलाश तिवारी
- *'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप'* - अंबा सुमन प्रसाद
- *'हिंदी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ'* - भोलानाथ तिवारी
- *'हिंदी भाषा का उद्गम और विकास'* - उदय नारायण तिवारी
- *'हिंदी भाषा का इतिहास'* - धीरेंद्र वर्मा (भूमिका)
- *'ग्रामीण हिंदी बोलियाँ' - हरदेव बाहरी*
- *'हिंदी भाषा'* - भोलानाथ तिवारी (भूमिका)




© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# हिंदी कविता का विकास

## 1. आदिकाल : सामान्य परिचय

**लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा**
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आदिकाल : काल विभाजन
1.2.1 बोध प्रश्न
1.3 आदिकाल का नामकरण
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 आदिकाल की परिस्थितियाँ
1.4.1 राजनीतिक
1.4.2 धार्मिक
1.4.3 सामाजिक
1.4.4 साहित्यिक
1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ-ग्रंथ

### 1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को समझ सकेंगे–

- आदिकाल के समय-सीमा से अवगत हो सकेंगे।
- आदिकाल की परिस्थितियों को जान सकेंगे।
- आदिकाल के विभिन्न नामों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

## 1.1 प्रस्तावना

साहित्य मानव-समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है। किसी काल विशेष के साहित्य की जानकारी से तद्युगीन मानव-समाज को समग्रतः जाना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी काल विशेष के साहित्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के सापेक्ष होती हैं। यह सिद्धांत इस बात की आवश्यकता पर बल देता है कि साहित्य के प्रेरक तत्व के रूप में हम युगीन परिवेश को अवश्य जान लें। आदिकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। इस इकाई में आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काल-विभाजन, नामकरण तथा आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिंदु तथा आदिकालीन साहित्य की सामग्री के स्वरूप आदि का विवेचन किया गया है।

## 1.2 आदिकाल : काल विभाजन

हिंदी साहित्य के प्रारंभ से लेकर अब तक के विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों, रचनाओं, कृतिकारों और उनकी विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है। आपके पाठ्यक्रम में हिंदी कविता प्रत्येक काल की प्रमुख धाराएँ और हिंदी-गद्य विधाओं का विकास (नाटक, उपन्यास, कहानी और निबंध) निर्धारित किए गए हैं। इसी उद्देश्य से इस पाठ के द्वारा आपको हिंदी साहित्य के इतिहास के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देने के लिए अलग-अलग शीर्षकों के अधीन आदिकालीन काव्य धाराएँ, भक्ति कालीन काव्यधाराएँ (ज्ञानाश्रयी काव्य धारा, प्रेमाश्रयी काव्यधारा, राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा), रीतिकालीन काव्यधाराएँ एवं आधुनिककालीन काव्यधाराओं पर अध्ययन सामग्री भेजी जा रही है। आशा है, आप इसे ध्यान से पढ़ेंगे और हिंदी साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

आप जानना चाहेंगे कि साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन या भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न नामों की सार्थकता क्या है? किसी विशेष युग में खास ढंग की ही रचनाएँ प्रायः मिलती हैं, खास प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रमुखता होती है–अंतः इन्हीं के आधार पर उस युग का नाम रख दिया जाता है।

साहित्य में सदा एक जैसी प्रवृत्तियाँ नहीं रहतीं। परिस्थितियों के अनुसार साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। अतः साहित्य के इतिहास का अध्ययन प्रत्येक समय की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करके किया जाता है। इसी को 'काल-विभाजन' कहा जाता है।

हिंदी-साहित्य का सर्वप्रथम प्रामाणिक और व्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। उन्होंने हिंदी-साहित्य के इतिहास को चार कालों में इस प्रकार विभाजित किया है–

(1) वीर-गाथा काल[1] (संवत् 1050 से 1375 वि.) या (993 ई. से 1318 ई.)[1]

[1] आजकल वीरगाथा–काल का नाम अधिकतर 'आदिकाल' ही चलता है। यह नाम डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिया हुआ है। आगे वीरगाथा–काल का विवेचन 'आदिकाल' नाम से ही होगा।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(2) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375 से 1700 वि.) या (1318 ई. से 1643 ई.)

(3) उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल संवत् 1700 से 1900 वि.) या (1643 से 1843 ई.)

(4) आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 से अब तक) या (1843 से अब तक)

आधुनिक काल को उन्होंने 'गद्यकाल' भी कहा है, वह इसलिए कि विधा की दृष्टि से उसमें गद्य की प्रमुखता है। इस प्रकार का विभाजन इन कालों की रचनाओं की विशेष बहु-प्रचलित प्रवृत्ति के अनुसार ही किया गया है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी काल में अन्य प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं। उदाहरण के लिए भक्तिकाल अथवा रीतिकाल में भक्ति तथा रीति-संबंधी रचनाओं के अतिरिक्त वीर-रस के भी अनेक काव्य प्राप्त होते हैं, जिनमें वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल की रचनाओं की ही भाँति वीरों का गायन किया गया है। अतएव इस प्रकार के काल-विभाजन में किसी एक प्रवृत्ति के प्राधान्य को ही आधर माना गया है तथा अन्य प्रकार की रचनाओं को गौण स्थान दिया गया है।

### 1.2.1 बोध प्रश्न

1. **हिंदी साहित्य का सर्वप्रथम प्रमाणिक और व्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत करने का श्रेय किसे जाता है?**
2. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल का समय क्या बताया है?**

## 1.3 आदिकाल का नामकरण

हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण के संबंध में विविध नाम दृष्टिगोचर होते हैं। किसी साहित्यिक युग का नामकरण उनकी मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। इस संबंध में विचार करने वालों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, राहुल सांकृत्यायन तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान प्रमुख हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग का नामकरण 'वीरगाथा काल' किया है। शुक्ल जी ने निम्नलिखित बारह रचनाओं को आधार मानकर इस काल का नाम वीरगाथा काल रखना उचित समझा–

(1) विजय पाल रासो, (2) हम्मीर रासो, (3) कीर्तिलता, (4) कीर्तिपताका, (5) खुमान रासो, (6) बीसलदेव रासो, (7) पृथ्वीराज रासो, (8) जयचंद्र प्रकाश, (9) जयमयंक जस चंद्रिका, (10) परमाल रासो, (11) खुसरो की पहेलियाँ और (12) विद्यापति की पदावली।

इस संबंध में उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है– **"इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से आदिकाल का लक्षण-निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से तीन विद्यापति-पदावली, खुसरो की**

[1] शुक्ल जी ने अपने इतिहास में विक्रमी संवत् का प्रयोग किया है। विक्रमी संवत् में से सत्तावन (57) वर्ष घटा देने से ईसवी सन् निकल आता है या ईसवी सन् में सत्तावन वर्ष जोड़ देने से विक्रमी संवत् मालूम हो जाता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

**पहेलियाँ और बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक है। अतः आदिकाल का नाम वीरगाथाकाल ही रखा जा सकता है।"**

शुक्ल जी द्वारा गिनाई गई इन रचनाओं में से अधिकांश अप्रमाणिक एवं नोटिस मात्र हैं। इस प्रकार शुक्ल जी द्वारा जिन ग्रंथों के आधार पर आदिकाल का नामकरण वीरगाथा काल किया गया, वह आधार विलुप्त प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने तत्कालीन धार्मिक साहित्य को उपदेश प्रधान मानकर उसे साहित्य की कोटि में ही नहीं रखा। इन नई खोजों से जो ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, उनकी भी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार, 'वीरगाथा काल' नाम अब मान्य नहीं रहा।

**डॉ. रामकुमार वर्मा** ने हिंदी साहित्य के आदिकाल की कालावधि सं. 750 से 1375 तक मानकर इसे दो भागों में बांटा है। संधिकाल (750 से 1000 वि.) तथा चारणकाल (1000 से 1375)। उन्होंने 'संधिकाल' में जैन, सिद्ध तथा नाथ साहित्य को तथा 'चारणकाल' में वीरगाथात्मक रचनाओं को समाविष्ट किया है। संधिकाल दो भाषाओं एवं दो धर्मों का संधियुग है, जो वस्तुतः अपभ्रंश साहित्य ही है। 'चारणकाल' नाम 'वीरगाथा काल' की भाँति ही सदोष है, क्योंकि इस रूप में भीतर गिनाई गई चारणों की रचनाएँ अप्रामाणिक एवं परवर्ती हैं। कुछ आलोचकों का यह कहना है कि वीरगाथा काव्यों में रचयिता चारण न होकर भाट थे। इसके साथ ही 'चारण काल' नाम से उस युग के काव्य की भावनाओं या शैली संबंधी विशेषताओं का भी संकेत नहीं मिलता। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा 'आदिकाल' को दिए गए नाम को साहित्य-जगत में अधिक स्वीकृति नहीं मिली। वर्मा जी को इस बात का श्रेय अवश्य है कि उन्होंने इस युग की बहुत-सी अज्ञात या अल्पज्ञात सामग्री का भी ऐतिहासिक विवेचन किया है।

**श्री राहुल सांकृत्यायन** ने अपभ्रंश तथा हिंदी के इस युग की 'सिद्ध-सामंत युग' कहा है। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। इस काल में सिद्धों के साहित्य की प्रधानता है तथा सामंत शब्द चारण कवियों की एक स्तुतिकरण रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत की ओर संकेत करता है। यह नाम भी अधिक प्रचलित नहीं हो सका। साथ ही इस नाम से जैन साहित्य तथा लौकिक साहित्य का बोध नहीं होता है। राहुल भी अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी को एक ही मानते हैं और साथ ही युग की रचनाओं को मराठी, उड़िया, बंगला आदि की नीति भी स्वीकारते हैं। इस प्रकार 'सिद्ध सामंत युग' नाम भी तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने में स्पष्ट समर्थ नहीं है।

**आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने हिंदी-साहित्य के इस प्रारंभिक काल को 'आदिकाल' कहना उपयुक्त समझा है। उनका यह नामकरण भी सर्वथा दोष-रहित नहीं है। वस्तुतः आदिकाल नाम भी भ्रामक धारणा उत्पन्न करता है। इस नाम से यह लगता है कि यह काल स्वतंत्र रूप से विकसित होने वाले, पूर्ववर्ती-परम्पराओं और काव्य-रूढ़ियों से मुक्त एक सर्वथा नवीन साहित्य काल है। किंतु पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित होने के कारण हम हिंदी के प्रारंभिक साहित्य को पूर्णतया स्वतंत्र तथा नूतन साहित्य नहीं कह सकते। साहित्य की दृष्टि से यह अपभ्रंश-काल का ही विकसित रूप है। साहित्य के किसी काल का नामकरण इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों तथा प्रतिपाद्य विषय के आधार पर अधिक



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वैज्ञानिक और प्रामाणिक माना जाता है। आचार्य द्विवेदी जी का 'आदिकाल' नामकरण तत्कालीन साहित्य प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट करने में असमर्थ प्रतीत होता है, परंतु हिंदी साहित्य का प्रारंभिक युग होने का सूचक यह नाम आदिकाल पर्याप्त प्रचलित हो चुका है इसीलिए अब प्रायः इस युग को आदिकाल नाम से ही संबोधित किया जाता है।

### 1.3.1 बोध प्रश्न

1. आदिकाल को संधिकाल किसने कहा है?
2. आदिकाल को विद्वानों नें किस-किस नाम से अलंकृत किया है?

## 1.4 आदिकाल की परिस्थितियाँ

### 1.4.1 राजनीतिक

उत्तर भारत में हर्षवर्धन का विशाल साम्राज्य उनकी मृत्यु (647-48 ई.) के बाद विघटित हो गया है। राजपूतों का अभ्युदय हुआ और अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए, जो निरंतर युद्ध या संघर्ष में अपनी शक्ति क्षीण करते रहे। 1200 ई. तक राजनीति का केंद्र कान्यकुब्ज प्रदेश रहा। 1175 ई. में मुहम्मद गोरी ने मुलतान पर अधिकार कर लिया। 1193 ई. में पृथ्वीराज की पराजय के बाद आक्रांताओं के लिए भारत का द्वार खुल गया। 1194 ई. में कन्नौज का केंद्र टूट गया। 1206 ई. तक बंगाल सहित उत्तर भारत में एक नये विदेशी शासन की स्थापना हो गई। पृथ्वीराज की पराजय के बाद गुजरात के स्वाधीन जैन-कनौज राजाओं ने तब तक साहित्य और संस्कृति को संरक्षण दिया जब 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारण स्वयं गुजरात पराधीन नहीं हो गया। गुजरात का यह संरक्षण केंद्र कुमारपाल (1145-1171 ई.) के समय से ही प्रारंभ हो गया था। जैनाचार्य हेमचंद का प्रभाव और उनकी कृतियाँ इस तथ्य की साक्षी हैं। दास, खिलजी और तुगलक वंश के पठानों का समस्त शासन काल (1206 ई.-1414 ई.) मंदिरों, पुस्तकालयों और संस्कृति के केंद्रों के नष्ट किए जाने का काल है। उत्तर भारत में संघर्ष और सुरक्षा के इस काल की साहित्यिक कृतियों की अनुपलब्धि अधिक आश्चर्य की बात नहीं है।

### 1.4.2 धार्मिक

धार्मिक परिस्थिति की दृष्टि से विचार किया जाय, तो मुसलमानों के प्रवेश से पूर्व हिंदी-प्रदेश में बौद्ध और हिंदी विचारधारा में संघर्ष चल रहा था। काशी हिंदुओं का और नालंदा बौद्धों का मुख्य केंद्र था। हिंदी प्रदेश के पूर्वी भाग से सिद्ध साहित्य मिलता है। शंकराचार्य के समय से ही बौद्ध प्रभाव समाप्त होने लगा था। दसवीं शती के बाद बौद्ध धर्म की हीनयानी विचारधारा वज्रयान की गुह्य-साधना की ओर हो चुकी थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं नालंदा की समाप्ति एवं ध्वंस (1197 ई.) के बाद यह नामपंथी विचारधारा में लुप्त हो गई। महायानी विचारधारा वैष्णवों के भक्ति एवं अवतारवाद में समाहित हो गयी। जैन विचारधारा हिंदू परंपरा से संघर्ष देखने को नहीं मिलता, जैसा हिंदू और बौद्ध-



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विचारधाराओं का हुआ, फिर भी गुजरात में राजनीतिक प्रभाव-विस्तार के लिए इनमें संघर्ष तब तक होता रहा, जब तक मुसलमानों ने दोनों को पराजित नहीं कर दिया।

हिंदुओं में भी शैव, शाक्त और वैष्णवों में संघर्ष होते रहते थे। राजपूतों द्वारा शैव और शाक्त मतों को अधिक प्रश्रय मिला। वैष्णवाचार्यों का प्रभाव दक्षिण से उत्तर की ओर उन्मुख हो रहा था। निंबार्क (12वीं शती), मध्य (जन्म 1237 ई.) तथा रामानंद (1299-1411) का प्रभाव वैष्णव भक्ति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पौराणिक धर्म और अवतारवाद की धारणाओं ने इस समय हिंदू विचारधारा को पर्याप्त प्रभावित किया।

मुस्लिम आक्रांताओं के साथ सूफी साधक और फकीर भी आये। कश्मीर और अवध के प्रदेशों में इसके केंद्र स्थापित होने का काल भी यही है।

### 1.4.3 सामाजिक

राजनीतिक और धार्मिक विशृंखलता एवं उथल-पुथल के युग में सुसंगठित एवं व्यवस्थित समाज की आशा नहीं की जा सकती। सातवीं से दसवीं शती तक बाहर से आई हुई अनेक जातियों को हिंदू-समाज आत्मसात करता रहा। वर्ण व्यवस्था नाममात्र की रह गई। नई-नई जातियों का उद्भव हुआ और हिंदू-समाज के पुराने संगठन का ढाँचा बदल गया है। ब्राह्मण और क्षत्रियों के ही नहीं, वैश्यों और शूद्रों के भी भेदोपभेद बन गये। ब्राह्मणों की अनेक जातियों के समान क्षत्रियों की भी अनेक जातियाँ हो गई। इस जाति-भेद ने खान-पान और वैवाहिक संबंधों में नई-नई मान्यताओं का समावेश कर दिया। छुआछूत को प्रश्रय मिला। राजपूत जाति पहली पंक्ति में गई। तांत्रिक, योगी, महायानी, बौद्ध और हिंदू-समाज की निम्न जातियाँ सामूहिक रूप से मुसलमान बन गईं। शासकीय धर्म की श्रेष्ठता, सामाजिक भ्रातृभाव की भावना और बलात् धर्म परिवर्तन के कारण इस्लाम धर्म ने इन्हें अधिक आकर्षित किया। मुसलमानों के प्रति सामाजिक बहिष्कार की भावना का श्रीगणेश इसी समय हुआ। इसी सामाजिक परिस्थिति ने एक ओर नाथपंथियों और दूसरी ओर सूफियों को यह अवसर दिया कि वे इस्लाम और हिंदू धर्म के कुछ समन्वयात्मक तथ्यों को प्रभावशाली बनाकर अपने दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार कर सके।

जनसामान्य से व्यवहार के लिए शासक-वर्ग प्रचलित जनभाषा का ही व्यवहार कर सकता था। सिद्ध, जैन, नाथपंथी, सूफी और विविध वैष्णव संप्रदायों के लिए भी यह आवश्यक था कि वे जन-सामान्य पर अपनी विचारधारा का प्रभाव डालने के लिए जनभाषा अपनाते। आदिकाल के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में उपलब्ध कृतियों पर अपभ्रंश का प्रभाव तीव्र गति से क्षीण हुआ।

### 1.4.4 साहित्यिक

साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से उत्तर भारत की समकालिक कृतियों की भाषा कोई भी हो, उनकी प्रवृत्तियों में पर्याप्त समानताएँ मिलती हैं। थोड़े कालांतर से उत्तर और दक्षिण का साहित्य भी एक-दूसरे को प्रभावित करता रहा है। आदिकाल में संस्कृत-साहित्य प्रचुर मात्रा में निर्मित हुआ। प्राचीन ग्रंथों पर टीकाएँ भी खूब लिखी गईं। संस्कृत साहित्य में चरित-काव्य निर्माताओं में पद्मगुप्त



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(1005 ई.), विल्हण (1076-1126 ई.), कल्हण (1140-51 ई.), जयानक (1200 ई.), नाटकों के विविध प्रयोग कर्त्ताओं में कृष्ण मिश्र (1100 ई.), जयदेव (1200 ई.), वत्सराज (1163-1203 ई.), जयसिंह सूरि (1230 ई.), महाकवि श्री हर्ष (1169-1195 ई.) तथा दूत या संदेश काव्य-निर्माता धोयी (1116 ई.), गीतगोविंदकार जयदेव (1116 ई.), उच्च कोटि के विद्वान, कवि और आचार्य भोज (1018-1063 ई.) आदि ने इसी युग में अपना साहित्य प्रस्तुत किया। शिलालेखों से हटकर गद्य-पद्य-मिश्रित चंपू काव्यों का आरंभ त्रिविक्रम (915 ई.) तथा सोमदेव सूरि (959 ई.) किया। जैन कवि सोमदेव सूरि का चंपू काव्य यशस्तिलक चंपू या यशोधर चरित्र चंपू संस्कृत में हैं। इन्हीं के समकालिक पुष्यदंत ने उसी कथानक पर अपभ्रंश में 'जसहर चरित्र' लिखा। जैन चंपू काव्यों में वीर, शृंगार और शांत रस की प्रमुखता रही। जैन शिलालेखों में भी गद्य-पद्य-मिश्रित शैली के साथ-साथ रूप-चित्रण की प्रमुखता रही है। रोड़ा कवि के शिलालेख 'राउल बेलि' की रूप-चित्रण-प्रवृत्ति को होय्सल नरेश बल्लाल के एक शिलालेख (1180 ई.) में अंकित आचल देवी के रूप-चित्रण के सामने रखकर समझा जा सकता है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका की अलंकृत गद्य-पद्य शैली चंपू काव्यों की प्रवृत्तियों से ही प्रभावित है। संस्कृत की गद्य और पद्य की शैली में इस युग की कृतियाँ अलंकरण की ओर अधिक उन्मुख रही हैं।

अपभ्रंश से आदिकालीन हिंदी-साहित्य का सीधा संबंध रहा है। किंतु संस्कृत-अपभ्रंश और पुरानी हिंदी की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ परस्पर होती हैं। डॉ. शिव प्रसाद सिंह का विचार है कि जयदेव ने अपना गीत गोविंद पहले अपभ्रंश में लिखा, बाद में उसे संस्कृत में अनूदित किया है। (तूलनीय-प्राकृत पैंगलम् 570/270 और गीत अष्टपदी 1 श्लोक 12) ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने संस्कृत नाटकों में मैथिली गीतों का समोवश किया है। विद्यापति की संस्कृत, अवहट्ट तथा मैथिली तीनों में रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रंश साहित्य में तीन प्रकार के बंधों का उल्लेख किया है– 'दोहा बंध, पद्धड़िया बंध और गेय-पद बंध। दोहाबंद के अन्तर्गत-निर्गुणप्रधान धार्मिक और उपदेशमूलक, शृंगार-प्रधान, नीतिविषयक और वीररस प्रधान साहित्य मिलता है। पद्धड़िया बंध में अनेक चरित्र काव्य लिखे गये। गये-पद-बंध में कई प्रकार के पद होते थे। जिसमें रासक छंद अधिक लोकप्रिय था। बाद में रासक, गेयपदों का पर्याय बन गया। अपभ्रंश के महाकवि स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें से अनेक छंद मध्यकाल में लोकप्रिय बने हैं। बरवे और अतिबरवे का प्रयोग भी (पउमचरिउ : 19वीं 45वीं संधि) उन्होंने ही पहले किया था। प्रवृत्ति और शैली दोनों ही दृष्टियों से हिंदी ने अपभ्रंश से पर्याप्त उपहार प्राप्त किया है।

## 1.5 सारांश

**इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि इतिहास के कालविभाजन और नामकरण की आवश्यकता अध्ययन की सुविधा के लिए तो है ही; इतिहास को सही ढंग से समझने के लिए भी यह बेहद जरूरी है। कालविभाजन और नामकरण करते समय प्रायः साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जाता है। आदिकालीन परिस्थितियों के अध्ययन के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि युग के साहित्य को**



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

नियमित नियंत्रित करने वाली स्थितियों के कारण आदिकालीन साहित्य परस्पर विरोधी चिंतनधाराओं की वैविध्यमयी अभिव्यक्ति का साहित्य है। आदिकालीन परिवेश, रुचि, स्थितियों और चित्तवृत्तियों ने भाषा एवं साहित्य को जनता तथा शासक की अपेक्षाओं के अनुकूल बनाने के लिए नियमित एवं नियंत्रित किया।

## 1.6 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी साहित्य का आरंभ कब से माना जाता है?
2. हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों के बारे में लिखिए।
3. हिंदी साहित्येतिहास के कालविभाजन का प्रयास सर्वप्रथम किसने किया? उसके बारे में लिखिए।
4. आदिकाल के नामकरण पर विचार कीजिए।
5. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थीं? विस्तार से विवेचन कीजिए।
6. आदिकालीन साहित्यिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
7. आदिकालीन साहित्य को युगीन परिस्थितियों ने कैसे प्रभावित किया? तर्कपूर्ण उत्तर लिखिए।

## 1.7 संदर्भ-ग्रंथ


1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेन्द्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी
6. '*हिंदी साहित्य का आदिकाल*' - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. '*हिंदी साहित्य की भूमिका*' - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी


© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 2. मध्यकाल भक्तिकाल : सामान्य परिचय

**लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा**
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भक्ति काल (भक्ति आंदोलन) की परिस्थितियाँ
  2.2.1 धार्मिक परिस्थिति
  2.2.2 राजनीतिक परिस्थिति
  2.2.3 सामाजिक परिस्थिति
  2.2.4 बोध प्रश्न
2.3 भक्ति आंदोलन का उद्भव और विकास
  2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्न
2.6 संदर्भ-ग्रंथ

## 2.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को जान सकेंगे—

- भक्तिकाल की परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि संपूर्ण भक्ति काव्य में विशेष बातें कौन-कौन सी हैं ?
- संपूर्ण भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।
- भक्तिकालीन प्रमुख भक्त कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

## 2.1 प्रस्तावना

भक्ति काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। भक्ति आंदोलन को एकांगी दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण है इस आंदोलन का बहुमुखी प्रभाव। भक्ति को आधार बनाकर



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जनमानस की आस्था और भक्ति के भीतर से एक व्यापक आंदोलन खड़ा हुआ, जिसे भारतीय इतिहास एवं सांस्कृतिक जीवन में भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जता है। इस आंदोलन के फलस्वरूप अखिल भारत में सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। विचार और कर्म दोनों स्तरों पर समाज का उन्नयन इस आंदोलन की विलक्षण उपलब्धियाँ थीं। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन का विकास जिस उर्वर भूमि में हुआ, उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ अनेक विषमताओं से ग्रसित थीं।

## 2.3 मध्यकाल भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

आदिकाल के बाद हिंदी में भक्ति–साहित्य उदय हुआ। राजनैतिक और सामाजिक कारणों से भक्ति की प्रवृत्ति बढ़ी, जो भक्ति साहित्य में हुई। यह भक्ति काव्य उसके वर्ण्य विषय के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया गया है–निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्तिकाव्य/भक्ति की निर्गुण धारा की भी दो शाखाएं हैं–ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। इसी प्रकार सगुण भक्तिधारा की भी दो शाखाएं हैं–रामभक्ति शाखा और कृष्णाभक्ति शाखा। संपूर्ण विभाजन को निम्नलिखित वृक्ष की सहायता से भलीभांति समझा जा सकता है–

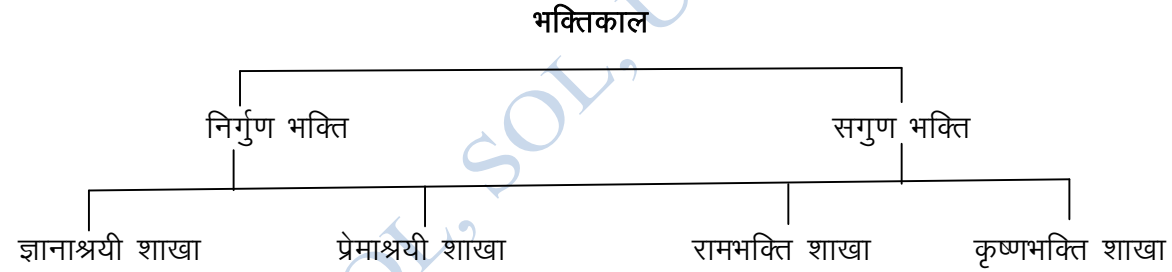


### 1.2.1 धार्मिक परिस्थिति

प्राचीन भारत में वैदिक धर्म का बोलबाला था। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् 'भगवान एक ही है परंतु लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं," के अनुसार लोग एक ही ईश्वर का मन में, एकान्त स्थान में, ध्यान किया करते थे। वे यज्ञादि द्वारा वायुमंडल शुद्ध किया करते थे और सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। परंतु समय सदा एक-सा नहीं रहता। देश में अज्ञान का अंधकार छा गया और निराकार की उपासना लोगों को कठिन प्रतीत होने लगी। तब अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बना ली गयीं और ईश्वर के अवतारों की कल्पना की गयी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि की मूर्तियों की पूजा होने लगी। व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव की अपेक्षा उसके वंश और जाति को प्रधान माना जाने लगा। धर्म के इस पतन को देखकर महात्मा बुद्ध के हृदय पर चोट लगी। उन्होंने धार्मिक अवस्था में सुधार करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने धर्म में ईश्वर तथा जन्ममूलक वर्णों को कोई स्थान नहीं दिया। परंतु जब मनुष्य किसी को अपने से अधिक शक्तिशाली नहीं पाता, तब वह निडर हो मनमानी करने



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

लगता है। इसलिए बौद्ध-धर्म में भी कुछ काल बाद विकार आरंभ हो गया। स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध विद्वानों से स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ करके भारत से बौद्ध धर्म को बहुत कुछ उखाड़ फेंका, परंतु वह क्षीण रूप में चलता रहा और उसमें मद्य, मांस, मैथुन आदि का भी प्रचार होने लगा। यह अनाचार तथा दुराचार देखकर यहाँ नाथ-पंथ प्रवर्तित हुआ, जिसमें सदाचार के नियम बहुत बड़े थे और स्त्री-स्पर्श तक का निषेध कर दिया गया था। भगवान महावीर के पंथ 'जैन धर्म' ने अहिंसा का इतना अधिक प्रचार किया कि देश नपुंसकता की सीमा लाँघ गया। भाग्यवाद, पाखंड, निकम्मापन, स्वार्थ और निर्धनता ने यहाँ की जनता को घेर लिया। यह तो थी हिंदुओं की अवस्था।

मुसलमानों को भारत में आये हुए अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी थीं। वे विजेयता के रूप में आए थे और अपने धर्म को हिंदू धर्म से ऊँचा समझते थे। वे एक ईश्वर के पूजक थे और मूर्तियों तथा मूर्तिपूजा का खंडन करते थे। परंतु दोनों में कुछ समानताएँ भी थीं। हिंदू अनेक व्रत रखते थे, वैसे ही वे रोजा रखते थे; जैसे हिंदू माला फेरते थे, वैसे ही वे तस्बीह (माला) फेरते थे, हिंदू तीर्थ-यात्रा करते थे, वैसे ही वे हज-यात्रा को पावन कर्त्तव्य समझते थे, हिंदू घंटे-घड़ियाल बजाते थे, वैसे ही वे मस्जिद में अजान देते थे, हिंदू वेद-शास्त्रों को पवित्र मानते थे, वैसे ही मुसलमान कुरान-हदीस का आदर करते थे। सारांश यह है कि दोनों ही धर्मों में बाहरी आडंबरों पर बहुत बल था, परंतु धर्म का वास्तविक तत्त्व, एक प्रभु से सच्चा विश्वास और मनुष्य मात्र से प्रेम लुप्त हो रहा था। यह थी धार्मिक अवस्था, जिसे देखकर कबीर जैसे संतों का हृदय काँप उठा और उन्होंने प्राणों की चिंता छोड़कर लोगों को सत्पथ पर लाने के लिए कमर कस ली।

### 1.2.2 राजनीतिक परिस्थिति

भारत की राजनीतिक दशा सम्राट हर्षवर्धन (7वीं सदी ई.) के बाद से ठीक न थी। उनके बाद केंद्रीय शासन निर्बल हो गया और भारत के विभिन्न भागों पर विभिन्न राजपूतों और विदेशी जातियों का अधिकार हो गया। प्रत्येक राज्य का शासक पड़ोसी राज्य को हड़प कर अपना राज्यक्षेत्र बढ़ाने की धुन में मग्न था। इस समय मुसलमानों ने भी भारत पर आक्रमण आरंभ कर दिए। महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी तो अपने आक्रमणों में लूट-मार करके चले गये परंतु उनके पश्चात् गुलाम, खिलजी और तुगलक वंशों ने भारत पर शासन किया। इन वंशों के शासनकाल में भारी अव्यवस्था रही। मुहम्मद बिन तुगलक से लेकर इब्राहीम लोदी तक (सन् 1325-1526 ई.) दो सौ वर्षों में सोलह शासक सिंहासन पर बैठे। इनमें से अधिकतर शासकों में सहनशीलता नहीं थी। जनता की शासकों के प्रति सहानुभूति नहीं थी, इसी प्रकार दोनों धर्मों के अनुयायियों में भी प्रेम-भाव न रह गया था। मुसलमान अपने धर्म को ऊँचा समझते थे और वही शासक भी थे। हिंदू राजनीतिक दृष्टि से मिट चुके थे परंतु प्राचीन धर्म, संस्कृति और इतिहास को दृष्टि में रखकर अपने को छोटा समझने को तैयार न थे। इसके अलावा हिंदू सामंत और धर्माचार्य भी उन्हें मुस्लिमों के विरुद्ध भड़काते रहते थे। ऐसी परिस्थिति में दोनों के दर्प को दलित करने के लिए कबीर ने एक नये पंथ का आरंभ किया, जिसमें सब मानव एक भगवान की संतान थे, भाई-भाई थे, ऊँच-नीच का प्रश्न न था।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 1.2.3 सामाजिक परिस्थिति

आरम्भ में आर्य लोग चार वर्णों में बंटे हुए थे। जो पठन-पाठन, यज्ञ-याग आदि क्रिया करते थे, उन्हें ब्राह्मण कहते थे, जो युद्धों और राजकार्यों में सम्मिलित होते थे, उन्हें क्षत्रिय जो व्यापार, कृषि, गो-पालन आदि करते थे उन्हें वैश्य और जो लोग छोटे-मोटे काम करते थे, उन्हें शूद्र कहा जाता था। कालांतर में यह क्रम बिगड़ गया और ब्राह्मण का अनपढ़ पुत्र भी ब्राह्मण तथा शूद्र का अध्यापक बेटा भी शूद्र कहलाने लगा। इस न्याय-विरोधी व्यवस्था का बौद्ध धर्म ने कड़ा खंडन किया। परंतु जब बौद्ध धर्म क्षीण हो गया और ब्राह्मण धर्म ने पुनः जोर पकड़ा तब फिर कर्म की अपेक्षा जन्म को महत्त्व दिया जाने लगा। ब्राह्मण संन्यासी आदि अपने को बहुत ऊँचा और दूसरे वर्गों तथा जातियों के लोगों को नीचा समझने लगे। कबीर, रैदास, दादू आदि अनेक ज्ञानाश्रयी संत कवि एक तो स्वयं ऊँचे न माने जाने वाले कुलों में पैदा हुए थे और दूसरे, कर्म की अपेक्षा जन्म को ऊँचा मानना है भी अन्याय, इसलिए इन संतों-कवियों ने अपने पूर्वज जैन कवियों की परंपरा का निर्वाह करते हुए इस सामाजिक बुराई को जड़ से उखाड़ फेंकने में कोई कसर न छोड़ी, यथा–

गरभ वास महि कुल नहीं जाती। ब्रह्म हिंदू से सभ उतपाती।।
जो तूं ब्राह्मण ब्राह्मणी जाइआ। तउ आन बाट काहे नहीं आइआ।।
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध।।
कहु कबीर जो ब्रह्म बीचारे। सो ब्राह्मण कहीअतु है– हमारे।। **–कबीर**

इसी प्रकार साधु-संन्यासियों में भी भेद-भाव चल रहा था। प्रत्येक वर्ग अपने को ही तीसमारखाँ समझता था। वे लोग अपने सिर मुंडवा कर, वस्त्र रंगवा कर लोगों को बुद्धू बनाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। ऐसे दंभ और पाखंड को देखकर ही संत कवि यह कहने को विवश हुए–

पंडित जन माते पढ़ि पुराण। जोगी माते जोग पियान।।
सनिआसी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।। **–कबीर**

सामान्य लोगों का ध्यान भगवान् की ओर न था। वे कंचन और कामिनी के जाल में ऐसी बुरी तरह फंसे हुए थे कि उन्हें ही जीवन का लक्ष्य बना लिया था। परिणाम यह हुआ कि सदाचार के नियमों की तनिक भी परवाह न की जाती थी और प्रत्येक उचित-अनुचित उपाय से धन-संग्रह किया जाता था और अमूल्य मनुष्य जीवन रूपी रत्न कौड़ी के बदले में नष्ट किया जा रहा था। यह अवस्था देखकर उन संतों की आत्माएँ चीख उठीं। इतना ही नहीं संतान बेचकर धनोपार्जन करने में भी उन्हें संकोच न था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञानश्रयी शाखा की उत्पत्ति में उस समय की परिस्थितियों का पर्याप्त हाथ था।

## 2.4 ज्ञानमार्गी शाखा (संत काव्य)

ज्ञानाश्रयी शाखा का संबंध निर्गुण भक्ति से है। आइए, पहले निर्गुण भक्ति को समझ लें, तब ज्ञानाश्रयी शाखा पर विचार करेंगे। 'निर्गुण' शब्द में गुण का अर्थ विशेषण या लक्षण है। जिस ब्रह्म का निरूपण



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

किसी विशेषण या लक्षण के द्वारा न किया जा सके वह निर्गुण है। उपनिषदों में ऐसे ब्रह्म को 'नेति-नेति' अर्थात् 'वह ऐसा नहीं' 'वह ऐसा नहीं' कहा है। वह गुणातीत है। प्रकृति में सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। किंतु निर्गुण ब्रह्म इन तीनों प्राकृतिक गुणों से रहित है। इसलिए उसकी यह परिभाषा सबसे उपुयक्त लगती है–

"निर्गुणसत्वरजस्तमांसि गुणाः तैः वर्जितः" अर्थात् सत्त्व, रज और तम जो गुण हैं, उनसे वर्जित निर्गुण हैं।

निर्गुण ब्रह्म निराकार है। वह अव्यक्त है। उसे अपनी भक्ति का आलंबन बनाना बहुत कठिन है। हिंदी में निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति सबसे पहले महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव (संवत् 1328-1408) की रचनाओं में मिलती है पर उसके साथ ही उन्होंने सगुणोपासना को भी अपनाया है। हिंदी काव्य में निर्गुण-भक्ति की पूरी प्रतिष्ठा और प्रवर्तन करने का श्रेय कबीरदास को है। उनके अलावा दादू, नानक, रैदास, सुंदरदास, मलूकदास आदि अनेक संत हुए हैं जिन्होंने निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति की है। ये कवि धर्म की तीन बातों– कर्म, ज्ञान और मुक्ति में से ज्ञान का आश्रय लेकर भक्ति-पथ की ओर अग्रसर हुए थे। अतएव इस शाखा को 'ज्ञानाश्रयी शाखा' भी कहा गया है। इसे ही 'संत काव्य' अथवा 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा' आदि नामों से पुकारा जाता है।

### 2.3.1 प्रमुख संत कवि

### कबीर (1399-1518 ई.)

कबीरदास संत काव्य या निर्गुण भक्ति-शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे एक साथ समाज सुधारक, भक्त और कवि थे। वे स्पष्टवक्ता और निर्भीक पुरुष थे और समाज की रूढ़ियों पर बड़ी निर्ममता से आक्रमण करते थे। कबीर का काव्य, साखी, सबद और रमैनी में विभक्त है। इनके द्वारा रचित पदों तथा साखियों आदि का संग्रह इनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' में कर दिया था। अब 'कबीर-ग्रंथावली' में ये प्राप्य हैं। उनके काव्य में निर्गुण ईश्वर की उपासना, पाखंड-खंडन, जाति-विरोध, सदाचार आदि का प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है।

उनके संदेश में से कुछ मुख्य बातें आपको जाननी चाहिए। उनके संदेश को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं– 1. ईश्वर; 2. गुरु; 3. धर्मग्रंथ; 4. हिंदू-मुस्लिम एकता; 5. जाति-पाँति का खंडन; 6. पाखंड-खंडन; 7. सदाचार या पवित्र जीवन।

7. **ईश्वर–** कबीर ने एक सर्वशक्तिमान, निराकार ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। इस्लाम की आँधी का सामना करने के लिए समाज में इस तरह की भक्ति पद्धति का प्रचार आवश्यक था। मूर्ति पूजा की बाहरी साधना के त्याग का प्रचार करने के कारण उन्होंने कहा कि अवतार, मूर्ति पूजा आदि में उनका तनिक भी विश्वास न था, जैसा कि निम्नलिखि उद्धरणों से स्पष्ट है–

   (क) निर्गुण राम, निर्गुण राम जपहु रे भाई।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ख) पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजों पहार।
तातै यह चाकी भली पीस खाय संसार।।
(ग) दशरथ–सुत तिहुं लोक बखाना
राम राम नाम का मरम है आना।।

सांसारिक काम काज-काज करते हुए, मनुष्य को भगवान् के ध्यान में मग्न रहना चाहिए–

ज्यौं तिरिया पीहर बसै सुरति रहे पिय माँहि।
ऐसे जन जग में रहें, हरि को भूले नाहिं।।

7. **गुरु–** हमारे देश में गुरु को ज्ञानदाता होने के कारण बहुत महत्त्व दिया गया है। बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता, तो ज्ञानमार्गी संत 'कबीर' गुरु को ईश्वर के समकक्ष बैठाते हैं, तो क्या आश्चर्य–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविंद दिया मिलाय।।

7. **धर्मग्रंथ–** प्रत्येक पंथ के अपने-अपने धर्मग्रंथ थे। लोग उन्हें आधार मानकर मनमाने अर्थ-अनर्थ करते थे और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। कबीर ने लोगों का ध्यान उनसे हटाकर सच्चाई की खोज करने की ओर लगाया। शास्त्रों का अनुकरण करने की बजाय निजी अनुभव से स्वहित और अनहित का मार्ग खोजना वे श्रेयस्कर समझते थे–

(क) मैं कहता हूँ आंखिन देखी, तू कहता है कागद लेखी।।

उनका विचार था कि वेदादि धर्मग्रंथ तो झूठे नहीं हैं, परंतु लोग उनके तत्त्व को नहीं समझते।

(ख) वेद कितेब कहौ मत झूठे, झूठा जो न विचारे।

उन्होंने अपनी 'साखियों', 'सबदों' में अनेक पौराणिक कथाओं को श्रद्धा के साथ उद्धृत किया है।

**4. हिंदू-मुस्लिम एकता–** हिंदू और मुसलमान को परस्पर लड़ते-झगड़ते देखकर कबीर का कोमल हृदय विदीर्ण हो जाता था। उनकी दृष्टि में दोनों ही समान थे, एक ही भगवान की अलग-अलग संतान थे। इस पर भी अज्ञान के कारण एक-दूसरे के प्राण लेने पर उतारू रहते थे। अपनी वाणी द्वारा कबीर ने द्वेष को दूर कर उन्हें एक-दूसरे के समीप लाने का महान् कार्य किया। जैसे–

(क) कह हिंदू मोहिं राम पियारा, तुरुक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मूये, मरम न काहू जाना।
(ख) कोई हिंदू कोई तुरक कहावै, एक जमीं पर रहिये।
(ग) वेद पुरान पढ़े वे खुतबा वे मौलानां वे पांडे।
विगत विगत के नाम धराये यक माटी के भांडे।।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**5. जाति-पाँति–** दोनों प्रधान धर्मों के लोग अनेक जातियों में बंटे हुए थे। प्रत्येक जाति अपने को ऊँचा समझकर अभिमान में डूबी रहती थी। कबीर ने गुणों को प्रधान माना और जाति को तुच्छ। जैसे–

(क) जात न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।

काशी जैसे ब्राह्मणों के गढ़ में रहकर यह कहना– "जो तुम बामन बामनि जाये और राह तुम काहे न आये।" कबीर की निर्भयता का सूचक है। केवल जाति के आधार पर किसी की पूजा और किसी का अपमान संतजनों को कभी नहीं भाया। कबीर मानवतावादी थे, इसलिए उन्होंने मानवीयता के नाते सभी गुणी जनों का सम्मान, बिना उसकी जाति विचारे, करने का उपदेश दिया।

**6. पाखंड-खंडन–** भारतीय समाज में व्याप्त अनेक पाखंडों का विरोध आदिकालिन जैन कवियों ने खुलकर किया था, तो भक्ति काल में कबीर ने उसी परंपरा को सशक्त ढंग से जीवित रखा। मन को तो पवित्र न करना और तरह-तरह के वेश बनाकर भक्त कहाने का दंभ भरना कबीर को बहुत बुरा लगता था। इसलिए वे ऐसे पाखंडों के खंडन में कभी नहीं झिझकते थे, जैसे–

(क) माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो चहुं दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं।।

(ख) केसन कहा बिगारिया, जो मूंडौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंड़िये, जा में विषय विकार।।

जप, माला, छापा, तिलक, मूर्ति पूजा, मस्जिद की अजान आदि सब उनकी दृष्टि में पाखंड ही थे।

**7. सदाचार–** कबीर सत्य, अहिंसा, शील, संतोष, दया, क्षमा आदि के पालन पर और काम, क्रोध, लोभ आदि के दमन पर विशेष बल देते थे–

(क) सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच हैं ताके हिरदै आप।।
(ख) जहाँ दया तहं धर्म है, जहाँ लोभ तहं पाप।
जहाँ क्रोध तहं काल है, जहाँ क्षमा तहं आप।।

उनकी दृष्टि में सदाचार ही प्रभु-प्राप्ति का प्रमुख द्वार था।

कबीर के अतिरिक्त इस शाखा के कुछ संत कवि निम्नलिखित हैं– गुरुनानक, मलूकदास, दादूदयाल, धर्मदास, धरणीदास, सुंदरदास, दरिया साहब, यारी साहब, बुल्ला साहब, चरनदास, गरीबदास, जगजीवनदास, दयाबाई, सहजोबाई, तुलसी साहब (हाथरस वाले)।

उपर्युक्त कवियों के वर्ण्य-विषय लगभग वही थे, जिनका वर्णन कबीर ने किया था। इनमें से कुछ प्रमुख कवियों का परिचय इस प्रकार है–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**नानक (1469-1538 ई.)**– सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे। लाहौर के समीप ननकाना साहब में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम कालू खत्री और माता का तृप्ता था। पिता द्वारा व्यापार के लिए दिया गया धन इन्होंने साधु-संतों को खिला दिया। पहले राजकीय सेवक थे, पीछे उसे त्यागकर धर्म-प्रचारार्थ देश-विदेश की यात्राएँ की। इनके दोहे, पद आदि सिखों के 'आदि ग्रंथ' में संगृहीत हैं।

काहे रे मन खोजन आई।
सर्वनिवासी सदा अलेपा ताही संग समाई।
पुहुप मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर मांहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।।

**दादूदयाल (1544-1603 ई.)**– अहमदाबाद (गुजरात) में इनका जन्म किसी धुनिए या मोची गृहस्थ के घर हुआ और दयालू होने से दादूदयाल कहाते थे। उन्होंने राजस्थान में घूम-घूमकर हिंदू-मुस्लिम एकता तथा संत मत का खूब प्रचार किया। इनके 52 शिष्य थे जिन्होंने 52 दादू द्वारों (धर्मस्थानों) की स्थापना की। वहाँ इनकी वाणी की पूजा वैसे ही होती थी जैसे सिखों के गुरुद्वारों में गुरुग्रंथ साहब की होती है। इनकी कविता का उदाहरण–

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ै ते और।।

**सुंदरदास (1596-1689 ई.)**– इनका जन्म द्योसा (जयपुर) में एक खंडेलवाल वैश्य के घर में हुआ। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों में यही एक ऐसे थे, जिन्होंने विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने कई वर्ष काशी में रहकर विद्याभ्यास किया था और घूम-घूमकर अनुभव भी खूब प्राप्त किया था। ये दादूदयाल के शिष्य थे और इनका हिंदी, संस्कृत, फारसी, गुजराती, मारवाड़ी तथा पंजाबी भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। ये सुशिक्षित थे और रस, छंद, अलंकार आदि काव्यांगों पर इनका यथेष्ट अधिकार था। इनके ग्रंथों में 'सुंदर-विलास' और 'ज्ञान समुद्र' तथा अनेक पद बहुत प्रसिद्ध हैं। भक्ति के संबंध में इनके विचार कितने भावपूर्ण हैं–

है यह अति गंभीर, उठति लहर आनन्द की।
मिष्ट सु याको नीर सकल पदार्थ मध्य है।।

### 2.3.2 ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रमुख विशेषताएँ

**(1) निर्गुण उपासना**– इस शाखा के कवियों ने ईश्वर को निर्गुण माना है। निराकार ब्रह्म की भक्ति को आलंबन बनाना कठिन होता है। इसके संबंध में ज्ञान की चर्चा सुलभ होती है। कबीर ने सिद्धों और नाथों की विचारधारा को और आगे बढ़ाया और निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और घट-घटवासी ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। 'निर्गुण राम जपहु रे भाई' आदि पंक्तियों से उनके ये विचार भली प्रकार समझे जा सकते हैं। इनका ब्रह्म एक है। बहुदेववाद में इन्हें विश्वास नहीं। इनका ब्रह्म अवतार नहीं लेता। यह जन्म-मरण के बंधन से परे है, तथापि इन्होंने उस राम के अनेक पौराणिक नामों का प्रयोग किया है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(2) **निरक्षर कवि–** ये कवि प्रायः निरक्षर थे। कबीरदास ने तो स्वयं कहा है कि उन्होंने "मसि कागद छूओ नहीं कलम गही नहिं हाथ"। संत कवियों में शायद केवल सुंदरदास की ही शिक्षा व्यवस्थित ढंग से हुई थी। लेकिन शिक्षा के अभाव में भी, ज्ञान और अनुभव के आधार पर अपनी बात स्पष्ट रूप से कहने के कारण, संत काव्य में सच्चाई और गहराई है। इन लोगों का जीवन भी वैसा ही था, जैसा वे कहते थे। कथनी और करनी में अंतर नहीं था। कवि-रूप की प्रधानता न होते हुए भी इनकी वाणी प्रभावपूर्ण रही, क्योंकि उसमें हृदय की सत्यता मिलती है। सत्संग ही इनके ज्ञान का आधार रहा।

(3) **जाति-व्यवस्था का विरोध–** जाति-पाँति का सभी संतों ने विरोध किया। **"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई"** कहकर उन्होंने जाति-भेद का विरोध किया है। ये सभी कवि प्रायः निम्न जाति के थे। कबीर जुलाहा थे। रैदास चमार थे। दादूदयाल मोची या धुनिया थे। अपनी जाति को इन्होंने कभी छिपाया नहीं, वरन् खुलकर कहते थे–'तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, सच कहु ठौर ठिकाना' या 'कह रैदास खलास चमारा'। ऊँची जातियों के कवियों में नानक और सुंदरदास के नाम प्रमुख हैं। परंतु उन्होंने भी जाति की महत्ता को स्वीकार नहीं किया।

(4) **पाखंड विरोध–** इन कवियों ने मिथ्या आडंबरों का विरोध करके पाखंडियों की निंदा की है। उस समय के समाज में हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मावलंबियों में व्रत, पूजा, तीर्थ अथवा रोजा, नमाज, हज आदि की प्रवृत्ति थी। इस प्रकार के आडंबरों में इन कवियों की आस्था नहीं थी, अतः इन्होंने मुल्लाओं और पंडितों की खूब खिल्ली उड़ाने की चेष्टा की है–

काँकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँ दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

तथा

पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजू पहार। (कबीर)

(5) **हिंदू-मुस्लिम एकता–** हिंदू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने बहुत प्रयत्न किया। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखकर उन्हें संमार्ग पर चलने का उपदेश दिया। कबीर की एक बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति इस संबंध में उल्लेखनीय है– 'अरे इन दोऊन राह न पाई।' कभी-कभी उन्होंने अपने को हिंदू-मुस्लिम कुछ भी न मानकर पाँच तत्त्व का पुतला कहा है–

'हिंदू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।

दोनों धर्मों की अच्छी बातों पर बल देकर और दुर्बलताओं पर प्रहार करके उन्होंने हिंदू और मुसलमानों को समीप लाने का प्रयत्न किया।

(6) **माया से बचने का उपदेश–** संत कवियों ने माया से सावधान रहने का बराबर उपदेश दिया है। माया के प्रभाव से बचना बड़ा कठिन है। मेरे-तेरे का विचार रखना, कंचन और कामिनी में आसक्त रहना और संसार के विभिन्न आकर्षणों से युक्त रहकर इंद्रिय-सुख की कामना करना आदि सब माया है। इस



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सबकी निंदा की गई है। नारी के प्रति संत कवियों की दृष्टि बड़ी आलोचनापूर्ण रही है– 'नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग' जैसी उक्तियों द्वारा नारी से दूर रहने का उपदेश दिया गया है। यह तत्कालीन समाज की नारी विषयकर सामान्य धारणा का परिणाम है।

(7) **गुरु की महत्ता–** गुरु को सभी संतों ने बहुत ऊँचा माना है। पढ़े-लिखे न होने से गुरु के उपदेश का इनके यहाँ बहुत महत्त्व था। गुरु की कृपा बड़ी आवश्यक थी। कहीं-कहीं तो गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा मान लिया गया–

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय।। –कबीर

(8) **रहस्यात्मकता–** ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों की एक प्रमुख विशेषता उनकी ईश्वर से संबंधित रहस्यात्मक उक्तियाँ हैं। आत्मा-परमात्मा के संबंध का कथन करके जब आत्मा का परमात्मा के प्रति काव्य में अनुराग व्यक्त किया जाता है तो उसे रहस्यवाद कहा जाता है। कबीर ने आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष मानकर विरह की मार्मिक व्यंजना की है। उनके ऐसे कथन रहस्यवाद की कोटि में आते हैं। कबीर का रहस्यवाद कहीं तो नाथपंथियों के हठयोग से प्रभावित है, कहीं सूफियों के प्रेम से और कहीं उपनिषदों के अद्वैत सिद्धांत से। कबीर की तरह धर्मदास, सुंदरदास और मलूकदास आदि कवियों ने भी रहस्यात्मक भाव व्यक्त किये हैं। ईश्वर की सर्वव्यापकता बोधक इन पंक्तियों में आत्मा-परमात्मा के विरह और मिलन दशा का वर्णन हुआ है–

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल। –कबीर

(9) **काव्य-रचना तथा भाषा–** इन कवियों की रचनाएँ मुक्तक रूप में मिलती हैं। गीति काव्य की दृष्टि से इनका अपना महत्त्व है। इसमें संगीतात्मकता और आत्मभिव्यक्ति की प्रधानता है। दोहा अथवा पदों में ही अधिकतर रचनाएँ मिलती हैं। कहीं-कहीं कवित्त, सवैया, रमैनी (चौपाई तथा सार आदि छंद भी मिलते हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी कहलाती है। उसमें ब्रज, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं का मिश्रण है। ये रमते राम थे। इसलिए क्षेत्रीय शब्दावली का प्रभाव ग्रहण करते रहे और जनभाषा में कविता करते रहे।

(10) **रस और अलंकार–** रस और अलंकार की दृष्टि से संत-काव्य पर विचार करना समीचीन नहीं है। इन्होंने काव्य-रचना के उद्देश्य से अपनी अभिव्यक्ति नहीं की। सामान्यतः इनकी रचनाओं में शांत रस की प्रधानता है। कहीं-कहीं अद्भुत रस भी मिल जाता है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। कहीं-कहीं रूपक और विरोधाभास का अच्छा प्रयोग मिल जाता है।

### 2.3.3 बोध प्रश्न

1. ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवियों के नाम बताइए।
2. ज्ञानमार्गी शाखा की कोई एक मुख्य विशेषता बताइए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

## 2.4 प्रेमाश्रयी शाखा : सूफी काव्य

### 'सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

'सूफी' शब्द कैसे चल पड़ा? कुछ लोगों की धारणा है कि सऊदी अरब के एक पवित्र नगर मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उस पर जो फकीर बैठते थे, वे सूफी कहलाये। प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी (जन्मकाल 1971 ई.) ने 'साफी' (पवित्र) शब्द से 'सूफ' शब्द की व्युत्पत्ति बताई है। परंतु आधुनिक काल के विद्वानों ने, जिनमें ब्राउन आरबेरी तथा मीर वलीउद्दीन प्रमुख हैं, 'सूफी' की व्युत्पत्ति 'सूफ' से मानी है। फारसी में 'सूफ' का अर्थ 'ऊन' है। प्रारंभिक काल के सूफी साधक ऊनी कपड़े पहनते थे, इसीलिए उनको सूफी कहा जाने लगा।

### सूफी मत का इतिहास

'सूफी' मत का इतिहास तब से आरंभ होता है जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे। यह घटना 633 ई. की है। इस्लाम में भक्ति का समावेश सूफियों ने ही किया। प्रारंभिक सूफी साधकों में अल हसन, इब्राहिम बिन अदम, अयाज, राबिया और मंसूर आदि का नाम उल्लेखनीय है। वे साधक 643 से 922 ई. के बीच हुए।

सूफी मत पर ईसाइयत, नव-प्लेटोवाद, भारतीय वेदांत और बौद्ध दर्शन का भी प्रभाव पड़ा। मंसूर के विषय में तो यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने भारत में आकर वेदांत का अध्ययन किया था। उनका 'अनलहक' (मैं ही सत्य हूँ) का संदेश वेदांत का 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) ही है। यह विचार स्पष्टतः इस्लाम के एकेश्वरवाद से भिन्न था। मुस्लिमों में कट्टरपंथियों को यह सहन न हुआ और मंसूर को प्राणदंड दे दिया गया। बाद में इस्लाम और सूफी मत में समन्वय हो गया और सूफी मत को इस्लाम में मान्यता मिल गयी।

**सूफी मत–** सूफी मत की संपूर्ण साधना प्रेम पर आधारित है। सूफी वह है जो अपने प्रिय के प्रेम में सदैव मस्त रहता है। प्रेम ज्ञान की भाँति ईश्वरीय देन है। ईश्वर का प्रेमी वही हो सकता है, जिसे खुद ईश्वर प्रेम करता है। ईश्वर ने प्रेम के कारण ही सृष्टि की। ईश्वर स्वयं प्रेमस्वरूप है। प्रेम के सहारे हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुँच जाती है। सूफी मत में प्रेम के साथ-साथ सौंदर्य को भी महत्ता प्रदान की गयी है। ईश्वर को ही प्रेम और सौंदर्य का स्रोत माना गया है– उससे बढ़कर सुंदर और कोई नहीं। संसार के समस्त सौंदर्य उसी की प्रतिरूप प्रतिच्छवि हैं। लौकिक सौंदर्य आकर्षक है अवश्य, पर साधक की दृष्टि केवल उसी पर टिकी नहीं रहती। बल्कि इस सौंदर्य से गुजरते हुए अलौकिक सौंदर्य अर्थात् ईश्वरी सौंदर्य तक पहुँचती है। यही बात प्रेम के लिए भी है। सांसारिक प्रेम (इश्क मजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) तक पहुँचने का साधन है। सांसारिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में बदल जाता है। इसलिए संपूर्ण सूफी साहित्य में सांसारिक प्रेम के आलंबन, अनुभव, विभाग तथा संचारियों का चित्रण किया गया है। सूफी साहित्य में नारी-प्रेम और नारी-सौंदर्य ईश्वरीय प्रेम और सौंदर्य का पर्याय बन गये। ईश्वर से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वियुक्त होकर आत्मा विकल है, वह उसे पुनः प्राप्त करना चाहती है, पर ईश्वर मिलन के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें साधक को पार करना पड़ता है। सांसारिक प्रपंच एवं अहंकार ही बाधक तत्त्व हैं, यही शैतान है। आध्यात्मिक गुरु शिष्य को सहायता देकर इन कठिनाइयों से उबारता है। अतः संत कवियों की तरह सूफी साधना में भी गुरु का महत्त्व है।

## सूफी मत का भारत में प्रवेश

सूफी मत का भारत में कब और कैसे प्रवेश हुआ, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। 711 ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया था। उसके साथ ही इस्लाम धर्म का भारत में आगमन हुआ। परंतु सूफी मत का यहाँ पहुँचना 1000 ई. के बाद ही हुआ। सूफी मत-प्रचारकों में पहला नाम शेख इस्लाम का लिया जाता है, जो 1005 ई. में लाहौर में आये थे। लेकिन सूफी मत का प्रचार 1036 ई. के बाद ही जोर पकड़ सका, गजनी निवासी अल् हुज्विरी नामक एक विद्वान तथा धर्माचार्य भारत पहुँचे। इन्होंने 1050 ई. में फारसी भाषा में 'कश्फुल महबूब' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा, जिनमें सूफी मत की रूपरेखा स्पष्ट की गई है। अल् हुज्विरी के बाद भारत में सूफी मत की लोकप्रियता बढ़ी और उसके कई संप्रदाय–चिश्तिया, सुहरवर्दिया, कादरिया तथा नक्शबंदिया यहाँ बन गये। उनके द्वारा सूफी मत के प्रचार को विशेष बल मिला। इस्लामी शासकों का समर्थन भी सूफियों को प्राप्त हुआ, क्योंकि इनका मत उनको इस्लाम के प्रचार-प्रसार में सहायक प्रतीत हुआ और इनके माध्यम से भारतीय जनता के साथ उनका संपर्क बढ़ा।

### 2.4.1 सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना : फारस और भारत में

हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों पर एक ओर जहाँ फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों का प्रभाव है, वहाँ दूसरी ओर उनमें भारतीय प्रेमाख्यानों की प्रवृत्तियों का भी समावेश है। अतः हिंदी प्रेमाख्यानों का अध्ययन फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन के बिना अपूर्ण ही माना जायेगा।

फारसी में 'लैला-मजनूं', 'शीरी-खुसरो', 'यूसुफ-जुलेखा' तथा 'वामिक-आजरा' की प्रेम कथाओं को लेकर अनेक मसनवियाँ लिखी गयी हैं। अल् हुज्विरी ने जब सूफी मत का शास्त्र 'कश्फुल महबूब' लिखा, उसके सौ से भी अधिक वर्षों बाद फारस के निजामी ने खुसरो-शीरीं और लैला-मजनूं की प्रेम कथाओं पर आधारित, इन्हीं शीर्षकों से मसनवियाँ (प्रेमाख्यान) लिखीं। फारसी के दूसरे कवि जामी ने भी पाँच मसनवियां लिखीं जिसमें 'यूसुफ जुलेखा' मसनवी प्रसिद्ध हैं। निजामी से प्रभावित होकर भारतीय कवि अमीर खुसरो ने फारसी में 'शीरी-खुसरो' मसनवी लिखी, जो भारतीय वातावरण एवं काव्य रूढ़ियों से प्रभावित है। बाद में बादशाह अकबर के दरबारी कवि फैजी ने फारसी में ही महाभारत की नल-दयमंती कथा पर आधारित अपना 'नल-दमन' काव्य लिखा। ईरान तथा भारत में लिखित फारसी मसनवियों में कई प्रकार की असमानताएँ थीं। अमीर खुसरों की मृत्यु के लगभग 50 वर्ष बाद हिंदी में सूफी प्रेमाख्यान लिखे जाने लगे।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भारत के सूफी प्रेमाख्यानों में एक नवीन परंपरा तब पड़ी, जब सूफी मत-निरूपण के लिए सूफी कवियों ने भारत में लोक-प्रचलित प्रेमकथाओं को ग्रहण किया और सूफी सिद्धांत को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए लोकभाषाओं अर्थात् अवधी, ब्रज, पंजाबी, बंगला आदि को अपनी काव्य भाषा बनाया। उत्तरी भारत के साथ-साथ दक्षिणी भारत में भी सूफी प्रेमाख्यान लिखे गए। दक्खिनी हिंदी (हिंदवी) में, जिसका केंद्र हैदराबाद के आस-पास था, 'कुतुबमुश्तरी', 'चंदर बदन व महियार' आदि अनेक प्रेमाख्यान लिखे गये।

इस संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उत्तर भारत की भाषाओं में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में भारतीय परंपरा को अधिक प्रश्रय मिला है और दक्खिनी हिंदी (हिंदवी) में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में फारसी परंपरा को।

परंतु जहाँ तक काव्य-रूप का संबंध है, उत्तरी और दक्खिनी भारत के सभी सूफी प्रेमाख्यान काव्य मसनवी पद्धति के अनुकरण पर लिखे गए हैं।

**मसनवी पद्धति–** आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि मसनवी पद्धति क्या है, जिसका सूफी काव्यों के प्रसंग में बार-बार उल्लेख मिलता है।

असल में 'मसनवी' फारसी का एक छंद है, जिसमें फारस के कवियों ने प्रेमाख्यान लिखे। यों उस छंद में अन्य प्रकार के काव्य भी लिखे गये। मसनवी की दो अर्द्धलियाँ परस्पर तुकांत होती हैं, लंबाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती। बाद में यह छंद प्रेमाख्यानों के लिए रूढ़ हो गया और प्रेमाख्यानक काव्य को मसनवी कहा जाने लगा। अमीर खुसरो तथा फैजी ने भी इस छंद को अपनाया, लेकिन अवधी में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में दोहा-चौपाई छंदों को अपनाया गया। फारसी मसनवियों में कुछ अन्य बातें भी रूढ़ हो गयीं। जैसे कि मसनवी (प्रेमाख्यानक काव्य) के आरंभ में क्रमशः ईश्वर-वंदना, पैगंबर मुहम्मद साहब की स्तुति, मुहम्मद साहब के चार मित्रों या प्रारंभिक खलीफाओं (अबूबकर, आदिल उमर, उसमान और अली) की प्रशंसा, तत्कालीन शासक (शाहेवक्त) की तारीफ, कवि द्वारा अपने गुरु या पीर का और स्वयं अपना परिचय देना। हिंदी सूफी कवियों ने भी इस क्रम को अंगीकार कर लिया। मसनवी काव्यों में अलग-अलग सर्ग या अध्याय नहीं होते, बल्कि घटनाएँ ही कथा-साहित्य का काम देती हैं और उन्हीं को उपशीर्षक के रूप में दे दिया जाता है।

हिंदी सूफी कवियों ने अपने काव्य में बारहमासा, षडऋतु का वर्णन भी किया है और उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है। अधिकतर कथानक और सौंदर्य के उपमान भारतीय परंपरा से ग्रहण किये हैं।

**सूफी काव्यों का कथा-रूप–** हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों का कथा-रूप भी प्रायः रूढ़ हो गया है। अधिकांश प्रेमाख्यानों में कथा का ढाँचा मिलता है : नायक अपने माता-पिता की इकलौती संतान– माता-पिता के दानपुण्य, तपस्या या सिद्ध पीर के आशीर्वाद के फलस्वरूप उसका जन्म-नायक प्रायः विवाहित-नायिका के सौंदर्य की चर्चा सुनकर (चित्र, स्वप्न, प्रत्यक्ष दर्शन से भी) उसका विरहाकुल हो



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जाना– माता-पिता और पत्नी को त्यागकर, कुछ साथियों को लेकर, योगी के वेश में, नायिका की खोज में निकल जाना– मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ आना– गुरु के द्वारा मार्ग दर्शन-नायिका की प्राप्ति– कुछ काल नायिका के देश में रहने के बाद अपने देश को वापसी। अधिकांश प्रेमाख्यान सुखांत हैं पर कुछ दुखांत भी हैं।

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रतीकात्मकता होती है। उनमें लौकिक कथानक के माध्यम से अलौकिक बात कही जाती है। उनमें वर्णित नायक आत्मा का और नायिका ईश्वर का तथा मार्ग की रुकावटें साधना मार्ग की बाधाओं (शैतान) का प्रतीक होती हैं। नायिका के अंग-प्रत्यंग, काम-क्रीड़ा तथा सप्तखंडी धौराहर भी सूफी-साधना के प्रतीक माने जाते हैं।

**हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान–** सूफी मत के इतिहास, सिद्धांत तथा काव्य एवं कथा-रूपों की इस सामान्य चर्चा के बाद आइए, अब हम हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों से परिचय प्राप्त करें। हिंदी में सूफी काव्य-रचना का इतिहास चौदहवीं से उन्नीसवीं सदी ईसवी तक– लगभग छः सौ वर्षों में फैला। मुल्ला दाउद के 'चंदायन' काव्य से इस काव्य परंपरा का प्रारंभ होता है। और शेख नसीर के 'प्रेम-दर्पण' पर इसकी समाप्ति होती है। इनमें से अधिकांश प्रेमाख्यान मध्य और पूर्वी उत्तर प्रदेश के कवियों द्वारा लिखित हैं। अतः उस क्षेत्र के लोक-जीवन का चित्र इन काव्यों में उभरा है। यद्यपि इन काव्यों का उद्देश्य सूफी मत का प्रचार करना था और इसके अधिकांश कवि मुसलमान थे, तो भी इनमें हिंदू-संस्कारों, रीति-रिवाजों तथा भावनाओं के प्रति समादर मिलता है। यही कारण है कि सूफी कवियों के काव्य हिंदुओं के बीच भी लोकप्रिय बन पाये और जो काम कबीर की झाड़-फटकार ने नहीं किया था, वह काम सूफियों की प्रेमगाथाओं ने कर दिया। हिंदुओं और मुसलमानों के हृदयों पर इन काव्यों ने प्रेम का मरहम लगाया तथा दोनों धर्मावलंबियों को निकट लाने में काफी हद तक सफलता पायी।

सूफी कवि और काव्य-परंपरा में मलिक मुहम्मद जायसी तथा उनका महाकाव्य 'पद्मावत' सिरमौर है। अतः यहाँ उसकी चर्चा कुछ विस्तार से की जाएगी। पर, साथ ही उनके पूर्ववर्ती सूफी कवियों एवं काव्यों का सामान्य परिचय भी दिया जाएगा।

### 2.4.2 जायसी के पूर्ववर्ती सूफी कवि और प्रेमाख्यानक काव्य

**चंदायन–** हिंदी में सूफी-परंपरा का आरंभ इसी ग्रंथ से होता है। मुल्ला दाऊद ने इसकी रचना सन् 1380 में की। काल-क्रम की दृष्टि से इसका समावेश हिंदी के आदिकाल की रचनाओं में होना चाहिए। इसमें अहीर युवक लोरिक और अहीरिन चंदा की प्रेम कथा वर्णित है। लोरिक विवाहित है और चंदा को लेकर भाग जाता है। रास्ते में चंदा को सांप डस लेता है। लोरिक विलाप करता है, पर एक गारुड़ी की सहायता से उसे पुनः जीवित करता है। मार्ग में उनका एक राजा से युद्ध भी होता है। अपनी पत्नी मैना का विरह-संदेश पाकर वह अपने नगर गौबर लौट आता है। लोरिक से मैना का मिलन होता है। चंदा और लोरिक का विवाह हो जाता है। इस काव्य की भाषा अवधी है और दोहा, चौपाई, छंदों का प्रयोग हुआ है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**मृगावती–** यह काव्य शेख बुरहान के शिष्य कुतुबन की रचना है। इसका निर्माण-काल 1504 ई. में है। इसमें चंद्रगिरी के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी मृगावती के प्रेम का वर्णन है। राजकुमार राजकुमारी के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसकी प्राप्ति के लिए योगी होकर निकल जाता है। मार्ग में अनेक कष्ट झेलता है। अंत में वह उसे प्राप्त कर लेता है। इस लौकिक कहानी से अलौकिक प्रेम की ओर संकेत किया गया है। इस काव्य की भाषा भी अवधी है तथा यह भी दोहा, चौपाई छंदों में लिखा हुआ है।

### 2.4.3 जायसी और उनकी कृतियाँ

मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी में सूफी कवियों में प्रतिनिधि कवि हैं। ये अवध में जायस नामक स्थान के निवासी थे, अतः जायसी कहलाये। ये सूफी संत थे। पहले ये शेरशाह के आश्रय में रहे। फिर गाजीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव के यहाँ रहे। अंत में अमेठी के महाराज रामसिंह के आश्रय में चले गये। अमेठी नरेश इन्हें बड़ा सम्मान देते थे, और इन्हें गुरु मानते थे। कहते हैं, जायसी शरीर से कुरूप थे। इनके शरीर और मुख पर चेचक के दाग थे तथा बीमारी में एक आँख भी मारी गई थी। रंग भी आकर्षक नहीं था। इनकी मृत्यु 1542 ई. के लगभग हुई। अमेठी में आज भी इनकी कब्र मौजूद है।

ये सूफी-सिद्धांतों के अतिरिक्त अद्वैतवाद, नाथ पंथ और योग-साधना आदि से परिचित थे, साथ ही हिंदू कथाओं, देवताओं तथा रीति-रिवाजों को भी इन्हें अच्छी जानकारी थी। ये भारतीय इतिहास और भूगोल से भी परिचित थे, परंतु इनके ग्रंथों से प्रतीत होता है कि इन्हें इन विषयों का अधूरा ज्ञान था। इन विषयों को या तो उन्होंने किसी से जाना था या कहीं गलत पढ़ा था। परंतु ये सूफी मत के मर्मज्ञ और अच्छे प्रचारक थे।

**जायसी के ग्रंथ–** इतिहास, लेख और किवदंतियों के अनुसार जायसी के लगभग बीस ग्रंथ कहे जाते हैं, परंतु इनमें से केवल तीन ही प्रामाणिक माने जाते हैं– आखिरी कलाम, अखरावट और पद्मावत। कुछ वर्ष पहले उनके द्वारा रचित 'चित्ररेखा' लघु काव्य भी प्रकाश में आया है।

**आखिरी कलाम–** यह एक छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें पहले प्रलय का वर्णन है फिर सभी प्राणियों की मृत्यु दिखलायी गयी है। तदंतर निर्णय के दिन का वर्णन है। मृत व्यक्तियों को पैगंबर साहब अल्लाह के समक्ष ले जाते हैं और उनके भले-बुरे कर्मों के अनुसार दंड व्यवस्था कराते हैं।

**अखरावट–** यह ग्रंथ सूफी सिद्धांतों की दृष्टि से अमूल्य है। इसमें अकारादि वर्णों को लेकर दोहा-चौपाइयों में सूफी सिद्धान्तों का निदर्शन है। इसमें ईश्वर, जीव, जगत्-प्रपंच तथा ईश्वर-प्राप्ति आदि विषयों का तात्त्विक विवेचन है।

अनेक स्थलों पर अद्वैत, जीव-ब्रह्म-संबंध तथा प्रेम विवाह आदि विषयों पर इतनी गंभीरता से प्रकाश डाला गया है कि उससे जायसी के गंभीर ज्ञान का पूर्ण रूप से परिचय मिल जाता है।

इसकी शैली भी अनूठी है। जायसी देवनागरी (हिंदी) के एक अक्षर के नाम के किसी तत्त्व का वर्णन प्रारंभ करते हैं और पुनः दूसरे अक्षर से उसी विषय या अन्य तत्त्व के निरूपण पर पहुँच जाते हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

यह ग्रंथ सिद्धांत की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, परंतु जायसी को अमर बना देने वाला ग्रंथ 'पद्मावत' है।

**पद्मावत–** यह जायसी की अमर कृति है। इसकी रचना का आरंभ 1520 ई. के आस-पास हुआ तथा समाप्ति 16-20 वर्ष पश्चात् 1540 ई. में शेरशाह के शासन-काल में हुई थी। यह अवधी भाषा में दोहा-चौपाई के क्रम से लिखा हुआ एक महाकाव्य है। इसमें लौकिक कथा के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की गयी है।

**'पद्मावत' की कथा–** चित्तौड़ में राजा रतनसेन राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नागमती था। चित्तौड़ का एक ब्राह्मण एक बार कुछ व्यापारियों के साथ सिंहल गया। वहाँ से एक तोता खरीदकर ले आया। तोते का नाम हीरामन था। वह बड़ा ही विद्वान और बोलने में चतुर था। ब्राह्मण ने उसे चित्तौड़ के राजा को बेच दिया। राजा तोते की विद्वता देखकर बड़ा चकित हुआ और उसे बड़े प्रेम से रखने लगा।

एक दिन नागमती ने तोते से पूछा कि क्या उसने कहीं उस जैसी सुंदर स्त्री देखी हैं? तोते ने कहा कि सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के सामने वह कुछ भी नहीं। नागमती ने सोचा कि यह तोता यदि इस बात को राजा से कह देगा तो वह अवश्य ही उसे छोड़कर पद्मावती से मिलने के लिए चल पड़ेगा। इसलिए उसने एक दासी को आज्ञा दे दी कि तोते को मार डाले। परंतु दासी ने, यह सोचकर कि भेद खुल गया तो वह मारी जायेगी, उसने तोते को मारा नहीं, बल्कि छिपा दिया। राजा के पूछने पर उसे तोता दे दिया गया। तोते ने सारी घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर राजा को क्षोभ हुआ, परंतु पद्मवती के सौंदर्य पर मुग्ध होकर वह सब भूल गया और उसकी प्राप्ति के लिए योगी कर सोलह हजार राजकुमारों के साथ सिंहल द्वीप की ओर चल पड़ा।

मार्ग में अनेक कष्टों को झेलता हुआ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। वहाँ उसने हीरामन तोते और महादेव जी की सहायता से पद्मावती से भेंट की। राजा ने पद्मावती का विवाह रतनसेन के साथ कर दिया। वहाँ वह कई दिनों तक रहा परंतु इधर नागमती का विरह इतना बढ़ गया कि जंगल तक जलने लगे। उसके दुःख से द्रवित होकर एक पक्षी सिंहलद्वीप गया और उसने रतनसेन से सारा वृत्तांत कह सुनाया। राजा को नागमती का स्मरण हो आया। वह पद्मावती को लेकर मार्ग में अनेक कष्टों को झेलता हुआ चित्तौड़ आ गया और सुख से रहने लगा।

एक दिन राजा ने दरबारी पंडितों से तिथि पूछी, तो और पंडितों ने प्रतिपदा कही, परंतु राघव चेतन नामक पंडित ने भूल से द्वितीया बतायी और सिद्ध यक्षिणी की सहायता से उस दिन संध्या समय दूज का चंद्रमा दिखला भी दिया। परंतु दूसरे दिन जब दूज का चंद्रमा निकला तो अन्य पंडितों ने राजा से राघव चेतन की शिकायत की। राजा ने रुष्ट होकर उसे दरबार से निकाल दिया। रानी ने उसे दानादि से प्रसन्न करने का प्रयत्न भी किया परंतु वह बदले की भावना से दिल्ली पहुँचा और बादशाह अलाउद्दीन से पद्मावती के सौंदर्य वर्णन कर उसे चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अलाउद्दीन कामुक था। उसने पद्मावती के रूप सौंदर्य की बात सुनकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया, परंतु जब वह किले को न तोड़ सका, तब राजा को छल से पकड़कर दिल्ली ले गया। गोरा-बादल आदि राजपूत वीर दिल्ली जाकर राजा को छुड़ा लाये। इधर राजा को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाने पर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती के पास एक दूती भेजी जिसने उसे चित्तौड़ छोड़कर देवपाल के रनिवास में जाने को कहा। जब राजा रतनसेन दिल्ली से लौट आया तब पद्मावती ने सारी घटना कह सुनाई। राजा शीघ्र ही एक सेना लेकर कुम्भलनेर पहुँचा, परंतु वहाँ युद्ध में रतनसेन और देवपाल दोनों मारे गए। इसके बाद पद्मावती और नागमती दोनों ही रानियाँ राजा के शव के साथ सती हो गयीं।

अब अलाउद्दीन पुनः चित्तौड़ पर चढ़ आया, पर पद्मावती की चिता की राख के अलावा उसके हाथ कुछ न लगा।

**कथानक की ऐतिहासिकता–** यह कथानक जायसी ने इतिहास और लौकिक कथा के आधार पर गठित किया है। इतिहास में राजा का नाम भीमसिंह है और रानी का नाम पद्मिनी है जबकि 'पद्मावत' में रतनसेन और पद्मावती। इतिहास के अनुसार पद्मिनी सिंहल के राजा गंधर्वसेन की पुत्री नहीं, बल्कि हम्मीर शंक की पुत्री है। इतिहास में नागमती चरित्र भी नहीं है। इसके अतिरिक्त राजा का योगी होकर सोलह हजार राजकुमारों के साथ जाना, दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में गुजरते हुए समुद्र के मार्ग से सिंहलद्वीप पहुँचना तथा पद्मावती से विवाह करना– ये सब घटनाएँ भी इतिहास में नहीं हैं, राघव चेतन का प्रसंग भी इतिहास से प्रमाणित नहीं होता।

अलाउद्दीन के आक्रमण की घटना इतिहास के आधार पर है, परंतु कुम्भलनेर के राजा देवपाल द्वारा दूती भेजना, राजा के लौटने पर दोनों का युद्ध होना तथा मारा जाना काल्पनिक घटनाएँ हैं।

इससे ज्ञात होता है कि इस कथा में जायसी ने इतिहास के साथ काल्पनिक बातों का मिश्रण कर पर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया है। इसका कारण यह है जायसी कोई ऐतिहासिक काव्य नहीं लिख रहे थे वरन् वे इस कथा के माध्यम से प्रेम की अलौकिक व्यंजना चाहते थे और इसमें वे पर्याप्त सफल भी हुए।

**कथा में आध्यात्मिकता–** पद्मावत की कथा में अध्यात्म-तत्त्व व्याप्त है। फारसी और अरबी मसनवियों में कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना होने से कथा के बीच-बीच में नायिका के प्रति बातें कही जाती थीं जिससे उनका ईश्वरीय स्वरूप झलकता था। यही बात हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में भी दिखाई देती है। पद्मावत भी हिंदी का प्रमुख प्रेमाख्यान काव्य होने के कारण इस नियम का अपवाद नहीं है। जायसी ने स्वयं ग्रंथ के अंत में लिखा है–

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा।
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही।।
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मनि चीन्हा।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गुरु सुआ जुहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया–धन्धा। बांचा कोई न एहि चित बन्धा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलादीन सुलतानू।।
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जु तो बूझे पराहु।

अर्थात् पृथ्वी के नीचे ऊपर चौदह भुवन माने गये हैं, वे सब मनुष्य के शरीर में ही विद्यमान हैं, क्योंकि पिंड (शरीर) में ही ब्रह्मांड है। पद्मावत के कथा के प्रतीकों को समझाते हुए वे कहते हैं कि चित्तौड़ को शरीर समझो और राजा रतनसेन को मन। सिंहलद्वीप हृदय का प्रतीक है और पद्मावती बुद्धि अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की। हीरामन तोता गुरु है जिसने मार्ग-प्रदर्शक का काम किया है तथा नागमती इस दुनिया का प्रपंच है। राघव चेतन शैतान का और सुल्तान अलाउद्दीन माया का प्रतीक है।

इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि चित्तौड़ रूपी शरीर में रहने-वाला रतनसेन-रूपी साधक मन हीरामन तोता रूपी गुरु के मार्ग दिखाये जाने पर पद्मावती-रूपी ईश्वरीय शक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। वह उसकी प्राप्ति के लिए बैरागी हो जाता है और साधना करता है। उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कभी नागमती रूप दुनिया का प्रपंच उसे लुभाता है और कभी राघव रूपी शैतान तथा अलाउद्दीन रूपी माया बाधा डालते हैं। रतनसेन की यात्रा में मार्ग की जो बाधाएँ आयी हैं, वे सब साधना के समय काम-क्रोधादि मानसिक विकारों की प्रतीक हैं, परंतु साधक इन सब बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है और अंत में पद्मावती रूपी ईश्वरीय शक्ति को प्राप्त कर लेता है।

मन की इस यात्रा को हम इस प्रकार भी रख सकते हैं कि हठयोग के अनुसार हम पिंड (शरीर) में ही ब्रह्मांड है। ध्यान के समय मन की समस्त शक्तियों को केंद्रित कर ब्रह्मरंध्र में ले जाया जाता है। योगी लोग इस प्राणवायु को प्राणायाम द्वारा ब्रह्मरंध्र में ले जाया करते हैं। उस समय साधक को वहाँ एक अलौकिक प्रकाश दिखलाई देता है। सूफियों के अनुसार वह उनकी प्रियतमा, ईश्वरीय शक्ति की ही सौंदर्य झलक है। सूफी साधना में ईश्वर को प्रियतमा और साधक को प्रियतमा मानते हैं। इसके विपरीत कबीर आदि संत साधक को प्रियतमा और ईश्वर को प्रियतम मानते हैं।

जायसी अन्य सूफियों की भाँति इस रहस्यात्मक भाव को बनाये रखने के लिए कथा में प्रारंभ से अंत तक सावधान रहे हैं। इसलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर संकेत भी किये हैं। पद्मावती ईश्वरीय शक्ति है, इसे वे प्रायः प्रत्येक सर्ग में पाठकों को किसी न किसी प्रकार याद दिलाते रहते हैं। रतनसेन में प्रिय से मिलने की व्याकुलता भी सूफियों जैसी ही है। सूफी मानते हैं कि साधक की तड़प से प्रियतमारूपी ईश्वर भी उससे मिलने को तड़पता है। पद्मावती भी हमें रतनसेन से मिलने के लिए अत्यंत इच्छुक दृष्टिगोचर होती है।

**'पद्मावत' की काव्य-कला**

पद्मावत एक महाकाव्य है, परंतु इसकी रचना मनसवी शैली पर हुई है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, मसनवियों के आरंभ में क्रमशः अल्लाह, पैगंबर, खलीफाओं, गुरु और तत्कालीन बादशाह



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

की स्तुति तथा कवि-परिचय होते हैं। सर्गों के नाम उसमें वर्णित विषय के आधार पर होते हैं तथा स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक संकेत दिये होते हैं और संपूर्ण काव्य में अलौकिक प्रेम की व्यंजना होती है, पद्मावत में भी ये सभी लक्षण हैं। परंतु साथ ही यह काव्य भारतीय महाकाव्य के लक्षणों पर भी ठीक उतरता है।

पद्मावत में काव्य-कला का सुंदर रूप दिखाई देता है। इसकी कथा का आधार रतनसेन का पद्मावती के प्रति प्रेम है। प्रेम-काव्य होने के कारण इसमें प्रधान रस शृंगार के दोनों ही पक्षों-संयोग और वियोग का बड़ा ही सुंदर चित्रण हुआ है। मसनवियों में प्रायः नायक ही तड़पता है, परंतु इस काव्य में नायक और नायिका दोनों व्याकुल हैं। नागमती का वियोग-वर्णन तो हिंदी साहित्य में अद्वितीय है ही, इस काव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से, अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। यह काव्य न तो पूर्णतः अन्योक्ति है, न पूर्णतः समासोक्ति। इसमें आध्यात्मिक रूपक का आद्यंत निर्वाह नहीं हुआ है। कहीं-कहीं तो अलौकिक अर्थ और अध्यात्मिक अर्थ साथ-साथ चलते हैं, पर कहीं-कहीं तो अलौकिक अर्थ पाया जाता है। प्रकृति-वर्णन भी अनेक स्थलों पर हुआ है, परंतु प्रायः उद्दीपन के लिए।

प्रबंध की दृष्टि से भी यह काव्य अच्छा बन पड़ा है। यद्यपि इसमें मुख्य कथा राजा रतनसेन और पद्मावती की है, परंतु उसे पुष्ट करने के लिए इसमें अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी आती हैं, जिन्होंने मुख्य कथा को लक्ष्य तक पहुँचाने में बड़ा योग दिया है। इसमें यात्रा वर्णन तथा युद्ध-वर्णन को इस प्रकार संबद्ध किया गया है कि वे वर्णन कथा में घुलमिल गए हैं। साथ ही, यद्यपि कथानक में एक रूपक है, तो भी उससे उसकी प्रबंधात्मकता में कोई बाधा नहीं पड़ी है। पद्मावती को ईश्वरीय रूप मानकर कथा चलती है और अनेक स्थलों पर इस ओर संकेत भी है। उदाहरण के लिए, जब पद्मावती मानसरोवर में स्थान के लिए गयी, तब मानसरोवर में कमल उसके मुखचंद्र को देखकर खिल गए तथा जिसने जो रूप चाहा, वही प्राप्त किया। कवि लिखता है–

विगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भई तहं ओप जहाँ जोई देखा।।
पावा रूप, रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होई रहा।।
नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर शरीर।
हंसन जो देख हंस भा, दसन-ज्योति जग हीर।।

भाषा की दृष्टि से भी यह काव्य उच्च कोटि का है। यह अवधी में लिखा गया है, किंतु इसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। 'रामचरित मानस' की तुलना में इसकी भाषा को कुछ विद्वान शिथिल कहते हैं, परंतु यह समझना आवश्यक है कि 'मानस' की भाषा अवधी होते हुए भी उसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है, जबकि 'पद्मावत' की भाषा लोक-भाषा है, बल्कि यह कहना चाहिए कि 'मानस' की भाषा पांडित्यपूर्ण है, जबकि इसमें कोई भी स्थल ऐसा नहीं, जहाँ इसकी भाषा भावों को व्यक्त करने में असमर्थ हो। कवि का अवधी पर पूर्ण अधिकार है और उसमें आदि से अंत तक जनता के बीच बोली जाने वाली अवधी है। वास्तव में यह काव्य हिंदी सूफी-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ तो है ही, हिंदी साहित्य का भी एक अमूल्य रत्न है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

निष्कर्ष यह है कि 'पद्मावत' जैसे काव्य की रचना भारतीय लोकभाषा में, भारतीय लौकिक कथा के आधार पर और भारतीय छंद में हुई। इसमें भारतीय कथानक-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया गया है।

### 2.4.4 जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य

जायसी और मंझन एक प्रकार से समकालीन थे परंतु चूंकि मंझन की कृति 'मधुमालती' की रचना 'पद्मावत' के चार-पाँच वर्ष बाद हुई, इसलिए उसका उल्लेख भी उसी क्रम से किया जा रहा है।

**मधुमालती–** इस काव्य के रचयिता कवि मंझन चुनार (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे। उन्होंने 'मधुमालती' की रचना 1545 ई. में की। मंझन सत्तारी संप्रदाय के शेख मुहम्मद गोस के शिष्य थे।

इस काव्य में कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती का प्रेम वर्णित है। अप्सराएँ राजकुमार को सुप्तावस्था में उठा ले जाती हैं। मधुमालती के सौंदर्य पर मनोहर मुग्ध हो गया, पर उसके सो जाने पर अप्सराएँ उसे फिर उसके नगर में छोड़ आयी। कुंवर मनोहर को विरह व्यापा। वह योगी बनकर निकल पड़ा। रास्ते में एक भयंकर वन पड़ा। उसमें प्रेमा नामक एक सुंदरी कन्या को उसने एक राक्षस के चंगुल से छुड़ाया। प्रेमा मधुमालती की सखी निकली। प्रेमा के प्रयत्न से ही मनोहर और मधुमालती पुनः मिल पाये।

सूफी प्रेमाख्यानों में महत्त्व की दृष्टि से 'पद्मावत' के बाद 'मधुमालती' का ही स्थान है। इसकी भाषा भी अवधी है और यह काव्य दोहा-चौपाई छंद में लिखा गया है।

**चित्रावली–** 'चित्रावली' के रचयिता उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे तथा बादशाह जहांगीर के समय में वर्तमान थे। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परंपरा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने सन् 1613 में इस प्रेमाख्यान की दोहा-चौपाई छंद और अवधी भाषा में रचना की है।

इस काव्य में नेपाल के राज धरनीधर पंवार के पुत्र सुजान और कंवलावती तथा चित्रावली के प्रेम और विरह का वर्णन है। उसमान ने इसकी रचना में जायसी का अनुकरण किया, अतः पद्मावत की भाँति इसमें भी सात-सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहा रखा गया है। इसकी रचना भी आध्यात्मिक दृष्टि से ही हुई है। इसमें भी सुजान एक साधक के रूप में चित्रित हुआ है और चित्रावली विद्या या ईश्वरीय शक्ति के रूप में। कंवलावती नागमती की भाँति अविद्या के रूप से चित्रित हुई है। अविद्या के रहते विद्या की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए सुजान चित्रावली की प्राप्ति तक कंवलावती को साथ नहीं रखता।

यह एक मनोहर काव्य है तथा इसमें नगर, सरोवर, यात्रा, ऋतु आदि के वर्णन सुंदर बन पड़े हैं।

**ज्ञानदीप–** इसके रचयिता शेख नबी जौनपुर जिले में अलदेमऊ नामक स्थान के रहने वाले थे। ये जहाँगीर के समय में विद्यमान थे। इन्होंने 'ज्ञानदीप' की रचना सन् 1619 ई. में की। सूफी काव्य-परंपरा का यह एक उत्कृष्ट काव्य है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इसमें राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी और उसकी सखी सुरज्ञानी की प्रेमकथा वर्णित है। इसमें भी आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना है।

भक्तिकाल के बाद भी इस धारा की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, परंतु प्रसंगतः उनका उल्लेख यही कर देना उचित जान पड़ता है। निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं

**हंस-जवाहिर–** कासिमशाह दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे। इन्होंने 'हंस-जवाहिर नामक एक कथा लिखी, जिसमें राजा हंस और रानी जवाहिर का प्रेम वर्णित हुआ है। इसकी रचना 1736 में हुई। इस प्रेमाख्यान की एक विशेषता, जिसके कारण इसका स्थान सूफी प्रेमाख्यानों में अन्यतम है, यह है कि बल्ख-बुखारा, रूमदेश तथा चीन को घटनाक्षेत्र के रूप में चुनकर भी कवि ने इस काव्य में भारतीय वातावरण ही रखा है। व्यक्ति और स्थान ही अभारतीय हैं।

**इंद्रावती और अनुराग बाँसुरी–** नूर मुहम्मद दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय में विद्यमान थे तथा जौनपुर के निवासी थे। ये बड़े विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने सन् 1744 में 'इंद्रावती' और 1764 में 'अनुराग बाँसुरी' नामक दो काव्य लिखे। 'इंद्रावती' का पूर्वार्द्ध ही प्रकाशित है, उत्तरार्द्ध हस्तलिखित रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है।

ये दोनों ग्रंथ अवधी भाषा में दोहा-चौपाई में लिखे गये हैं। 'इंद्रावती' में कालिजर के राजकुमार, राजकुंवर और आगमपुर की राजकुमारी इंद्रावती की प्रेम-कथा है। 'अनुराग-बाँसुरी' में शरीर, जीवात्मा तथा मनोवृत्तियों को लेकर प्रेम-कथा लिखी हुई है। इसकी कथा में अध्यात्म तो है ही, रूपक का निर्वाह भी बड़े कौशल से किया गया है। इससे कवि के गंभीर दार्शनिक विचारों का भी परिचय मिलता है। इस काव्य की एक विशेषता यह है कि इसके पात्र नर-नारी नहीं, वरन् मनोभाव हैं। इसमें छंद और भाषा संबंधी भी कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे– चौपाइयों के पश्चात् दोहा न होकर बरवै है तथा अवधी के मध्य कहीं-कहीं ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग है।

**यूसुफजुलेखा–** इस प्रेमाख्यान के रचयिता शेख निसार थे। इसका रचनाकाल 1790 ई. है। यह काव्य भक्ति काल की निर्धारित सीमा के बाद का लिखा है। कुरान में वर्णित यूसुफ-जुलेखा प्रेमाख्यान कुछ परिवर्तित रूप में इसमें ग्रहण किया गया है। कथा का मुख्य आधार जामी की प्रसिद्ध फारसी मसनवी 'यूसुफ-जुलेखा' है।

इस काव्य-परंपरा का अंतिम उल्लेखनीय काव्य 'प्रेम-दर्पण' है जो शेख नजीर द्वारा रचित है।

### 2.4.5 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ

### (1) निर्गुण ईश्वर में विश्वास

सूफी कवि मुसलमान थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। सूफी काव्यों में ईश्वर के एक होने निर्माण और निराकार होने के उल्लेख बार-बार मिलते हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जायसी के 'सुमिरों आदि एक करतारू' इस कथन से एक ईश्वर की भावना व्यक्त होती है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानक काव्यों में ईश्वर को स्त्री के रूप में मानकर आत्मा का पुरुष के रूप में वर्णन किया है। 'दसरे शब्दों में, आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसी तरह प्रयत्न करती है जिस तरह प्रिया को प्राप्त करने के लिए प्रेमी प्रयत्न करता है। ईश्वर को इस प्रकार का आलंबन बनाने की यह पद्धति भारतीय पद्धति से भिन्न है। भारतीय पद्धति में परमात्मा को पुरुष रूप में माना जाता है। आत्मा स्त्री के रूप में उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

## (2) गुरु की महिमा

संत कवियों की तरह सूफी कवियों ने भी अपने गुरु का अपने काव्य में स्मरण किया है, जहाँ इन कवियों ने वर और खलीफा की वंदना की है, वहाँ गुरु के प्रति अपना आभार प्रदर्शन करना भी नहीं भूले हैं। यह दूसरी बात है कि इनकी गुरु-भक्ति उतनी उत्कृष्ट नहीं है, जितनी कि ज्ञानमार्गी संतों का। न ही इन्होंने गुरु को परमेश्वर से ऊपर माना है, जैसा कि कबीर ने। सफी कवियों ने गरु को पीर कहा है। यह पीर उनका मार्गदर्शन करता है और उनकी साधना के मार्ग में शैतान जो बाधाएँ उपस्थित करता है, उन्हें वह दूर कर देता है।

## (3) शैतान को बाधक मानना

सूफी कवियों ने प्रिय-प्राप्ति के मार्ग में बाधक तत्त्व के रूप में शैतान की कल्पना की है। उनका विश्वास है कि खुदा ने शैतान को साधक की परीक्षा लेने के लिए बनाया है। जो साधक उस परीक्षा मे खरा उतरता है, वही परमात्मा से मिल सकता है। यह शैतान आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधा डालता है। इस तरह शंकराचार्य ने माया की जो कल्पना की है तथा संत कवियों ने जिस माया का विरोध किया है, वही माया सूफियों के मत में शैतान है। प्रसिद्ध सूफी कवि जायसी ने अपने 'पद्मावत' में राघव चेतन का वर्णन शैतान के रूप में किया है।–'राघव दूत सोई सैतानू'

सूफियों का विश्वास है कि पीर (गुरु) की कृपा से शैतान की बाधाओं को दूर किया जा सकता है। शैतान से रक्षा करने के कारण गुरु को इन्होंने बहुत ऊँचा माना है।

## (4) साधना की चार अवस्थाएँ

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाओं का उल्लेख है– (1) नासूत, (2) मलकूत, (3) मारिफत, (4) हकीकत। जब साधक एक-एक करके इन अवस्थाओं को पार करता है तो वह सत्य को प्राप्त कर लेता है। हकीकत सत्य को ही कहते हैं। जब उसे परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब वह अपने को 'अनलहक' अथवा 'मैं ही ब्रह्म हूं' कहने लगता है। इस तरह की अवस्थाओं की कल्पना सूफी काव्य की अपनी विशेषता है। यद्यपि सिद्ध और नाथों के 'सोऽहं' और वैदिक वाङ्मय के 'अहं ब्रह्मास्मि' में साधना की अवस्था उसी प्रकार की है, पर सूफियों का सिद्धांत इनसे भिन्न है। सभी सूफी काव्यों के नायक प्रिय-प्राप्ति के मार्ग में जितने कष्ट उठाते हैं, जितनी बाधाएँ पार करते हैं, वे सब इसी सूफी-साधना के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करते हैं तथा प्रिय-संगम में 'अनलहक' की छाप देखी जा सकती है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### (5) लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति

सूफी मत की एक विशेषता है– 'प्रेम की उत्कटता।' प्रेमगाथाओं के माध्यम से सूफियों ने प्रेम की पीड़ा का सुंदर चित्रण किया है। सूफी लोग मानते हैं कि लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) के द्वारा ही अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) को प्राप्त किया जा सकता है। जायसी के 'पद्मावत' में रतनसेन का पद्मिनी के लिए जो प्रेम है वह लौकिक प्रेम है। उसके वर्णन द्वारा जायसी अलौकिक प्रेम का निदर्शन करना चाहते हैं।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में प्रेम के साथ सौंदर्य का अन्योन्याश्रय संबंध बताया गया है। जहाँ रूप है, वहाँ प्रेम के लिए आकर्षण है। सुंदर वस्तुएँ परमात्मा के सौंदर्य का प्रतिबिंब है। रूप में परमात्मा की ज्योति प्रकट होती है। सूफी काव्यों में प्रेम के साथ विरह का भी अनिवार्य सम्बन्ध माना गया है। साधक (प्रेमी) जब तक विरह की आँच में तपकर कुंदन नहीं बन जाता, तब तक उसका संयोग अपने प्रिय से नहीं हो सकता।

### (6) हिंदू-मुस्लिम एकता

सफी कवियों ने मुसलमान होकर हिंदू घरों में प्रचलित कहानियों को चुना और इस तरह हिंदू लोकमानस के समीप आने का प्रयास किया। उन्होंने मुसलमान और हिंदुओं को समीप ला दिया तथा उनके भेद-भाव को दूर कर दिया। हिंदुओं ने सूफियों के सिद्धांतों का आदर किया। भारतीय लोक-साहित्य और परंपरा के निकट आने के प्रयास में सूफी कवियों ने भारतीय साहित्य की पद्धति पर षड्ऋतु, बारहमासा, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद शकुन-विचार, लोक-विश्वास, जादू-टोना, तीर्थ, व्रत, लोक व्यवहार आदि का अपने काव्यों में समावेश किया। हिंदू और इस्लामी–दो संस्कृतियों को मिलाने का इन काव्यों में अद्भुत प्रयास है।

### (7) रहस्यवाद

सूफी काव्यों की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी रहस्यात्मक उक्तियाँ हैं। उनकी रहस्यात्मक उक्तियों में कहीं-कहीं साधनात्मक रहस्यवाद यानी हठयोग के संकेत मिलते हैं, जैसे 'पद्मावत' में शिवजी द्वारा रतनसेन से सिंहगढ़ का वर्णन 'गढ़ तस बांक जैस तोरि काया' आदि। इस वर्णन में पिंड में ही ब्रह्मांड की कल्पना का संकेत किया गया है। यह रहस्यवाद हठयोगियों या नाथपंथियों से प्रभावित है।

सूफियों के रहस्यवाद को संत कवियों के साधनात्मक रहस्यवाद से भिन्न भवात्मक रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। पद्मावत रतनसेन और पद्मावती के प्रेम के द्वारा परमात्मा के प्रति आत्मा की जिज्ञासा, प्रिय और प्रेमी के मिलन और विरह की अत्यंत मार्मिक कल्पना की गयी है। सूफियों का रहस्यवाद संयोग के अत्यन्त श्रृंगारिक वर्णनों से युक्त है श्रृंगार का यहाँ खुलकर वर्णन किया गया है। विरह-वर्णन में मार्मिकता है और उस पर मसनवी प्रभाव है। सूफी कवियों के विरह-वर्णन में फारसी-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। उसमें ऊहात्मकता और वीभत्सता तक आ गयी है। विरह में रक्त के आँसू



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बहाना फारसी का प्रभाव है, जिसमें हमें वीभत्सता लगती है। लेकिन कहीं-कहीं विरह-वर्णन की मार्मिकता हृदय को छू लेती है। पद्मावत का नागमती-विरह-वर्णन प्रसंग एक ऐसा ही उत्कृष्ट उदाहरण है–

'प्रिय सों कहेऊ संदेसड़ा हे भौरा है काग,
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुआं हम लाग।'

### (8) प्रबंधात्मकता

सूफी रचनाएँ प्रेमाख्यानक प्रबंध काव्य हैं। उनमें प्रेम-कथाओं के वर्णन हैं। इनमें एक मुख्य कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। मुख्य और प्रासंगिक कथानकों के कारण सभी सूफी काव्य महाकाव्य की कोटि में आते हैं। प्रबंधकाव्य के लिए आवश्यक सर्गबद्धता, निश्चित छंद, प्रकृति-वर्णन आदि सभी शर्तों की पूर्ति ये काव्य करते हैं।

### (9) रस

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का वर्णन रसमयी भाषा में हुआ है। श्रृंगार की दोनों दशाओं–संयोग और वियोग का इनमें चित्रण है। कहीं-कहीं दूसरे रस भी मिलते हैं, जैसे–गोरा-बादल युद्ध में वीररस और गोरा की माँ की अपने पुत्र के प्रति भावाभिव्यक्ति में वात्सल्य रस मिलता है। शांतरस भी अनेक स्थलों पर आया है। इसी तरह करुण और वीभत्स रस भी इनके काव्य में मिल जाते हैं। ये सभी रस आध्यात्मिक रंगत पाकर शांत रस के अंग बन जाते हैं।

### (10) भाषा, छंद, अलंकार

सूफी काव्यों की भाषा ठेठ अवधी है। जनता के बीच प्रचलित कथाओं को जनता की भाषा में कहने के लिए कवियों ने ग्रामीण अवधी का प्रयोग किया है। जिसमें जहाँ-तहाँ अपभ्रंश के कई शब्द आ गये हैं। छंदों की दृष्टि से इन्होंने चौपाई और दोहा छंदों का प्रयोग किया है।

अलंकारों में सभी प्रचलित अलंकार-अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि तो हैं ही, पर समासोक्ति सूफी कवियों का सबसे प्रिय अलंकार है। जो वर्णन कवि कर रहा होता है, उसके द्वारा अलौकिक सत्ता की ओर भी संकेत होता चलता है। ऐसे प्रसंग समासोक्ति अलंकार के अंतर्गत आते हैं। जायसी समासोक्ति के प्रयोग में सबसे कुशल हैं।

### (11) प्रतीक-विधान

प्रतीक-विधान भी सूफी कवियों की अपनी विशेषता है। विभिन्न प्रतीकों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने में सूफी कवि बहुत पटु हैं। सभी काव्यों में लौकिक प्रतीकों के द्वारा आध्यात्मिक भाव प्रकट किये गये हैं।

### (12) मसनवी शैली

सभी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य मसनवी शैली में लिखे गये हैं। मसनवी फारसी का एक छंद है जिसमें जामी, निजामी आदि कवियों ने अपने प्रबंध काव्यों की रचना की। हिंदी के सूफी कवियों ने इस छंद को नहीं अपनाया, परंतु फारसी के मसनवी छंद में लिखे प्रबंध काव्यों (मनसवियों) में रूढ़ वर्णन-



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शैली को अवश्य अपनाया। मसनवी शैली की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं– काव्य के आरंभ में अल्लाह की वंदना, फिर क्रमशः रसूल की वंदना, गुरु की महिमा, समसामयिक बादशाह या किसी महान् व्यक्ति की स्तुति, तत्पश्चात् पुस्तक लिखने के कारणों पर प्रकाश। हिंदी के सभी सूफी प्रेमाख्यानों के प्रारंभ में कवियों ने इस परंपरा का निर्वाह किया है। मसनवी शैली के काव्यों में एक अन्य शैलीगत विशेषता है–काव्य के अध्यायों का घटना-प्रसंग के अनुसार नामकरण।

### 2.4.6 बोध प्रश्न

1. 'मधुमालती' किसकी रचना है?
2. 'जायसी' का पूरा नाम क्या था?
3. जायसी की कुछ प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

## 2.5 रामभक्ति-शाखा (राम काव्य)

आप निर्गण काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा के विषय में पढ़ चुके हैं कि उस समय एक ओर संत-मत हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का प्रयास कर रहा था तो दूसरी ओर सूफी संत भी इस ओर प्रवृत्त थे। परंतु उपर्युक्त शाखाएँ सवर्ण हिंदुओं का अवलंबन न बन सकीं। परिणामस्वरूप हिंदू जनता राम-कृष्ण की ओर आकृष्ट हुई। इस वैष्णव भक्ति का प्रादुर्भाव दक्षिण में हुआ, किंतु यह शीघ्र ही समस्त उत्तर भारत में फैल गयी। इसका एक प्रधान कारण यह भी था कि अवध और ब्रज प्रदेश राम और कृष्ण के जन्म-स्थान थे। इस कारण उस काल में ब्रज भाषा और अवधी भाषा को भी यथेष्ट सम्मान मिला। यह काल साहित्य-क्षेत्र में स्वर्ण युग कहलाता है। कृष्णभक्त कवियों में महात्मा सूरदास और रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास अग्रगण्य हैं।

### हिंदी काव्य का विकास

हिंदी के महाकाव्यों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–तुलसी-पूर्व, तुलसी-कालीन और तुलसी-परवर्ती। तुसली-पूर्व रामकाव्यों में 'पृथ्वीराज रासो' का द्वितीय 'समय' है। इसमें दशावतार के अंतर्गत रामावतार का भी वर्णन है। रामानंद के कुछ भक्ति-विषयक पद राम के संबंध में मिलते हैं। सूरदास ने भी 'रामचरती' की रचना की है। ईश्वरदास ने 'रामजन्म', 'अंगद-पैज' और 'भरत-मिलाप', दोहा-चौपाई में लिखे, जिनकी भाषा अवधी है। इसमें तुलसीकृत रामचरितमानस' का पूर्वाभास मिलता है। तुलसी के समकालीनों में अग्रदास ने भक्ति-पूर्ण पदों की रचना की है जो 'पदावली', 'ध्यानमंजरी' और 'अष्टयाम' में संकलित हैं। नाभादास ने भी 'अष्टयान' और 'रामचरित' के पदों की रचना की।

तुलसी के समकालीन कवियों में आचार्य केशवदास प्रमुख हैं। इनके द्वारा रचित प्रबंधकाव्य 'रामचंद्रिका' के संवाद उत्कृष्ट कोटि के हैं। सोढ़ी मेहरबान ने हिंदी-पंजाबी मिश्रित-गद्यात्मक भाषा में 'आदि रामायण' लिखी। प्राणचंद चौहान ने 'रामायण महानाटक', हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक', रामनंद ने 'लक्ष्मणायन' और माधोदास ने 'रामरासो' की रचना की।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 2.5.1 भक्तिकालीन रामकाव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकाल में रामकाव्य के रचयिता अनेक सुकवि हुए हैं, जिनमें से प्रमुख ये हैं–सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, गोविंदसिंह, विश्वनाथसिंह। इन कवियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

#### (1) सूरदास

महाकवि सूरदास के बारे में आपको कृष्ण भक्ति शाखा वाले अध्याय में विस्तार से बताया जायेगा। वे मुख्य रूप से कृष्णभक्त कवि थे, लेकिन राम के बारे में उन्होंने कुछ पदों की रचना की है। इसी प्रकार रामभक्त कवि होते हए भी तुलसी ने कृष्ण के बारे में 'कृष्णगीतावली' की रचना की। इसका कारण शायद यह रहा हो कि राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार हैं। सूर ने राम के बारे में जो पद लिखे हैं वे 'सूर रामचरित' और 'सूर सारावली' में संग्रहीत हैं, लेकिन इन दोनों ही ग्रंथों की प्रामाणिकता के बारे में मतभेद है।

#### (2) तुलसीदास

हिंदी में राम काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास माने जाते हैं। इनका जन्म शूरक क्षेत्र (सोरों) के अन्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। इनका बचपन बहुत कष्ट में बीता। माता-पिता इन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे। अतः इनके पालन-पोषण का भार बूढ़ी दादी के कंधों पर आ गया। बचपन में ये राम नाम का बहुत उच्चारण करते थे। इस कारण इनका मुँह बोला नाम 'रामबोला' भी था। गुरु नरहरिदास की कृपा से इन्हें शिक्षा प्राप्त हुई। वयस्क होने पर गंगापार बदरी नामक ग्राम के दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से इनका विवाह हुआ। ये अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। कुछ समय पश्चात् इनका दांपत्य प्रेम अचानक भगवत् प्रेम में परिणत हो गया। ये घर छोड़कर चले गये। संवत् 1680 या 1623 ई. में काशी के अस्सी घाट पर इन्होंने शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है–

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावन शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

कुछ लोग श्रावण शुक्ल 3, शनिवार, संवत् 1680 को उनकी मृत्यु-तिथि मानते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट के अनुसार गोस्वामी जी के नाम से 37 ग्रंथ पाये गये हैं, किंतु इनमें सभी प्रामाणिक नहीं हैं। नागरी प्राचारिणी सभा ने इनके निम्नलिखित 12 ग्रंथों को प्रमाणित माना है–**रामचरितमानस, रामललानहछू, वैराग्य-संदीपनी, बरवे रामायण, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामाज्ञाप्रश्न, दोहावली, कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली और विनयपत्रिका।**

गोस्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने काव्य की प्रायः सभी शैलियों को अपनाया है। 'रामचरित मानस' हिंदी जगत् का अद्वितीय प्रबंधकाव्य है। 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' खंड काव्य



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

के सुंदर उदाहरण हैं। गीतिकाव्य में 'गीतावली' अपना विशिष्ट स्थान रखती है। स्तुतिपरक मुक्तकों में 'विनयपत्रिका' अनुपम है।

गोस्वामी जी ने अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है, किंतु स्तुति, संस्कृत-श्लोक आदि में वर्णिक वृत्त भी समुचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। गोस्वामी जी ने गेय पदों में रागों का भी ध्यान रखा है। गोस्वामी के काव्यों में अलंकार स्वतः चले आये हैं जो काव्य-सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं। राम का जीवन बड़ा व्यापक है। उसमें रसों का समावेश बड़ी सरलता से हो जाता है। गोस्वामी जी ने रसों का प्रयोग बड़ी सफलता से किया भी है। शृंगार और हास्य के वर्णन में विशेष रूप से सावधान रहे हैं। उनका शृंगार और हास्य बहुत मर्यादित और शिष्ट है। उनके मधुर हास्य का एक उदाहरण देखिए–

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुन भे मुनिबंद सुखारे।।
ह्वे हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पग मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे।।

तुलसी की भाषा प्रवाहपूर्ण है। उसमें यथावसर ओज, माधुर्य और प्रसाद इन तीनों गुणों का समावेश हुआ है। गोस्वामी जी ने अवध और ब्रजभाषा का प्रयोग समान कौशल से किया है।

गोस्वामी जी का वर्ण्य–विषय यद्यपि रामकथा और रामभक्ति है तथापि विभिन्न स्थलों पर उनके अन्य विषयों के ज्ञान का परिचय भी मिलता है, जैसे–ज्योतिष, राजनीति, आचार-शास्त्र, दर्शन, काव्यशास्त्र, संगीत, मनोविज्ञान।

### (3) केशवदास

हिंदी साहित्य में महाकवि केशव का एक विशेष स्थान है। इन्होंने अपना परिचय 'रामचंद्रिका' में स्वयं दिया है। ये जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम कृष्णदत्त और पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म टेहरी में संवत् 1612 (1555 ई.) के आस-पास हुआ था। इन्हें ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह के दरबार में बहुत सम्मान प्राप्त था और वे ही इनके आश्रयदाता थे।

केशवदास संस्कृत के विद्वान् थे, इनकी रचनाओं में इनके ज्ञान का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। ये अलंकारवादी थे और रस की अपेक्षा अलंकारों को अधिक महत्त्व देते थे। इनके लिखे सात ग्रंथ हैं–'विज्ञान-गीता', 'रतन बावनी', 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका', 'वीरसिंह देव-चरित्र', 'रसिकप्रिया', 'रामचंद्रिका'। हिंदी कवियों में केवल केशवदास ऐसे बहुप्रतिभा संपन्न कवि हैं, जिनमें जहाँगीर और वीरसिंह की स्तुति के कारण आदिकालीन, 'रामचंद्रिका' से भक्तिकालीन और 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' से रीतिकालीन प्रवृत्तियों का एकत्र समावेश दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से वह एक ऐसी सीमा-रेखा पर खड़े हुए कवि हैं, जिनके एक ओर भक्तिकाल है, तो दूसरी ओर रीतिकाल। ये रीतिकाल के जन्मदाता आचार्य कवि हैं। इनके आचार्यत्व की प्रशंसा रीतिकाल के अनेक आचार्यों ने की है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

'रामचंद्रिका' के कथानक का मुख्य आधार 'वाल्मीकि रामायण' है, किंतु इस पर संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव भी यत्र-तत्र दिखाई दे जाता है। 'रामचंद्रिका' में अनेक प्रकार के वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। किंतु पद-पद पर छंद-परिवर्तन कथा के प्रवाह में व्याघात डालता है। इस कृति में धनुष यज्ञ का वर्णन, प्रकृति-वर्णन और नखशिख-वर्णन भी सुंदर है। 'रामचंद्रिका' में किसी भी दार्शनिक सिद्धांत या लोक-शिक्षा का प्रतिपादन नहीं हुआ है। केशव स्वयं राजदरबार से संबंध रखते थे, इसलिए दरबारी वातावरण, आचार-व्यवहार तथा संवादों से सपरिचित थे। नाटकीय संवादों की दृष्टि से 'रामचंद्रिका' महत्त्वपूर्ण है। वे संवाद सजीवता और वाक्चातुर्य से परिपूर्ण हैं। 'रामचंद्रिका' की भाषा बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। केशव की सरस भाषा का एक उदाहरण देखिए–

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊं कुठाउँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूं संग रैहैं।
केशव काम के राम विसारत और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अन्दर, अंतक लोक अकेलोई जैहैं।

### (4) स्वामी अग्रदास

स्वामी अग्रदास का जन्म संवत् 1662 (1605 ई.) में हुआ था। ये गलता (जयपुर) के निवासी थे। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास इनके शिष्य थे। स्वामी अग्रदास ने पाँच ग्रंथों की रचना की। एक छोटी रचना 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' इनके नाम से हाल ही में प्रकाश में आयी है। अग्रदास यद्यपि अष्टछाप के कृष्ण-भक्त कवि कृष्णदास जी के शिष्य थे, तथापि ये राम के उपासक थे। इन्होंने अपनी 'ध्यानमंजरी' में राम और राम के भाइयों के सौंदर्य एवं अयोध्या और सरयू की शोभा का विशेष वर्णन किया है। 'ध्यानमंजरी' 69 पदों की एक छोटी-सी रचना है। 'अष्टयान' में राम के आठों पहर के कार्यों का वर्णन है। इसमें सीता-राम के दांपत्य-प्रेम का शृंगार-पूर्ण चित्रण है।

### (5) नाभादास

नाभादास का असली नाम नारायणदास था। इनकी जाति डोम अथवा मेदारा थी। इनका जन्म सन् 1600 (संवत् 1657) है। इनके गुरु स्वामी अग्रदास थे। ये राम के उपासक थे और इन्होंने रामसम्बन्धी पदों की रचना भी की, किंतु इनकी ख्याति 'भक्तिमाल' के कारण अधिक हुई। 316 छप्पयों में इन्होंने 200 भक्त कवियों का परिचय दिया है। परिचय में भक्तों के जीवन की विशेष घटनाओं का वर्णन है, तिथि-संवत् का कोई उल्लेख नहीं। संवत् 1769 (1712 ई.) में प्रियादास ने 'भक्तमाल' पर टीका लिखी।

### (6) हृदयराम

हृदयराम ने संस्कृत के 'हनुमान्नाटक' के आधार पर कवित्त-सवैया छंदों में 'हनुमान्नाटक' नामक पद्यात्मक हिंदी नाटक की रचना की है। इसका रचनाकाल संवत् 1662 (1575 ई.) है। रामकाव्य में 'हनुमान्नाटक' का विशेष स्थान है। इसमें रामभक्ति की चर्चा सुचारु रूप से हुई है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## (7) प्राणचंद चौहान

प्राणचंद चौहान जहाँगीर के समकालीन थे। इनका जन्म संवत् 1667 (1610 ई.) में माना गया है। इनकी एक ही रचना प्राप्त है, जो 'रामायण महानाटक' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें रामकथा संवाद के रूप में वर्णित की गयी है। काव्यकला की दृष्टि से यह रचना महत्त्व नहीं रखती।

## (8) सेनापति

सेनापति का जन्म संवत् 145 (1586 ई.) में हुआ था। इनका निवास स्थान गंगा के पास स्थित अनूपशहर था। 'कवित्त-रत्नाकर' में इन्होंने अपना परिचय स्वयं दिया है। इनके पितामह का नाम परशुराम और पिता का नाम गंगाधर था। इनके गुरु हीरामणि दीक्षित थे। 'सेनापति' इनका उपनाम प्रतीत होता है। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी कविता सरस और प्रवाहमयी है। 'कवित्त-रत्नाकर' का रचनाकाल सं. 1706 (1649 ई.) है। इनके अतिरिक्त 'काव्यकल्पद्रुम' नामक एक और ग्रंथ इनका बताया जाता है। सेनापति प्रकृति-वर्णन में बड़े सिद्धहस्त हैं। 'कवित्त-रत्नाकर' में पाँच तरंगे हैं जिनमें, क्रमशः श्लेश, शृंगार, ऋतु रामायण और राम-रसायन का वर्णन है। रामकथा का वर्णन भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इनकी सरस रचना का एक उदाहरण देखिए–

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति,
सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन है।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फैलि रहे तारे मानो मोती अनगन है।
उदित विमल चंद चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भवो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत जोर सागर मगन है।

## (9) गुरु गोविंद सिंह

गुरु गोविंद सिंह का जन्म संवत् 1723 वि. (1666 ई.) में और देहांत संवत् 1765 (1708 ई.) में हुआ था। इनकी माता का नाम गूजरी था और पिता का गुरु तेगबहादुर। इनके दरबार में बावन कवियों को आश्रय प्राप्त था। गुरु गोविंद सिंह केवल संस्कृत के ही विद्वान न थे, अपितु इन्हें अरबी, फारसी और ब्रजभाषा आदि का भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाओं का संग्रह 'दशमग्रंथ' के नाम से विख्यात हैं, जिसमें विचित्र नाटक, जफरनामा, रामावतार, गोविंद रामायण, सौ साखी, जाप, चंडी चरित्र आदि रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनमें अनेक प्रकार के छदों का प्रयोग है। कुछ छंद ऐसे भी हैं जो हिंदी में प्रचलित नहीं है। शृंगार और वीर रस की इसमें प्रधानता है। युद्ध का वर्णन बड़ा सजीव है।

इनकी सरस एवं प्रवाहमयी भाषा का एक उदाहरण देखिए–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

नागरा के नैन हैं कि चातुरा के बैन हैं,
बगूला मानो गैन कैसे-तैसे घहरत हैं।
नर्तकी के पांव हैं कि जूप कैसे दाव हैं,
कि छल को दिखाव कोऊ तैसे विहरत हैं।
हांकि बाजि वीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं,
कि अंजनी को धीर है कि धुजा से थहरत हैं।
लहरें अनंग की तरंग जैसे अंग की,
अनंग कैसे अंग ज्यों न कहूं ठहरत हैं।

### (10) महाराज विश्वनाथ सिंह

महाराज विश्वनाथ सिंह रीवां के नरेश थे। इनका जन्म-संवत् 1790 में हुआ। यह स्वयं भक्त कवि थे कवियों को आश्रय भी प्रदान करते थे। इनके पुत्र महाराज रघुनाथसिंह भी प्रसिद्ध कवि थे। महाराज विश्वनाथ सिंह पर कबीर पंथ का भी कुछ प्रभाव था अतः इनकी रचनाएँ कबीर पंथ और रामकाव्य दोनों से संबंध रखती है। इनकी 32 रचनाएँ बतायी जाती हैं। जिसमें राम काव्य संबंधी कृतियों में 'आनंद रघुनंदन' प्रमुख है–रघुनंदन नाटक में गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग है। गद्य की भाषा भी ब्रजभाषा है। इसमें सात अंकों में राम जन्म से लेकर रामराज्य तक की कथा है। महाराज विश्वनाथ सिंह ने असली नामों के स्थान पर दूसरे नाम रख दिये है, यथाः–राम के लिए हितकारी, लक्ष्मण के लिए डोल धराधर, रावण के लिए दिकुशिरा। इनकी भाषा सरस है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए–

लियो सो बान बिज्जु चाप चार देब बज सो।
लसे सुभट्ट सज्जि गर्जिज्जत-गर्जिज्जत मज सो।।
मिले संग्राम के उछाह पौन सो उमंडि के।
आनंद के अनंत मेह ज्यों चले धुमण्डि कै।।

## 2.5.2 राम काव्य की विशेषताएँ

राम काव्य ने भारतीय जनता को बहुत प्रभावित किया है। इसने भक्ति के उदात रूप को जनता के सन्मुख उपस्थित किया है। रामकाव्य जनता का मनोरंजन करता है। आधुनिक काल में जो रामलीलाएँ होती है, उनसे आबाल वृद्ध, ग्रामीण एवं नागरिक सभी का मनोरंजन होता है और इस मनोरंजन के द्वारा मानसिक उन्नयन भी। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम है, उनका चरित्र मानव-जाति के लिए आदर्श है। रामकाव्य की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

**(1) दास्य-भाव की भक्ति–** कृष्णकाव्य में सख्य-भक्ति की प्रधानता है, किंतु राम काव्य में दास्य-भक्ति प्रधान है। वैसे उसमें नवधा भक्ति के सभी प्रकार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन मिल जाते हैं। इसमें राम की उपासना सेव्य-सेवक भाव से की गयी है। इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं, क्योंकि आज तक हिंदी के राम साहित्य में



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

'रामचरितमानस' जैसा ग्रंथ और नहीं लिखा गया। यह कृषि चार सौ वर्षों से हिंदी भाषी जनसमूह का दिशा निर्देश कर रही है।

**(2) मर्यादा की प्रतिष्ठा–** राम काव्य में मर्यादा का प्रमुख स्थान है। राम का चरित्र ही मर्यादा पुरुषोत्तम का चरित्र है। चरित्र में पूर्णतः मर्यादित किये बिना कोई भी व्यक्ति पुरुषोत्तम नहीं बन सकता है। राम काव्य में मर्यादा कई रूपों में दिखलाई पड़ती है। जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापारों में मर्यादा को मूल्य के रूप में स्थापित किया गया है। धर्मनीति व्यक्ति के चरित्र को मर्यादित करती है, राम का चरित्र आद्यंत धर्ममय है, इसलिए मर्यादा उसके चरित्र में सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। मितभाषी होना, सत्य पर दृढ़ रहना, पिता की आज्ञा का पालन करना, प्रतिज्ञापूरी करना आदि गुण मर्यादा के ही अंग हैं। इसी तरह राम काव्य के अनेक चरित्र मर्यादा से मुक्त है। तुलसीदास जी ने श्रृंगार को भी मर्यादित कर दिया है। उनसे पूर्व कृष्ण काव्य की रचना हो चुकी थी, उसका प्रभाव रामकाव्य पर अवश्य पड़ा। तुलसीदास जी की 'गीतावली' में राम के हिंडोला-विहार और फाग-क्रीड़ा का उल्लेख है। अग्रदास और नाभादास जी के अष्टयानों में श्रृंगार की मात्रा अधिक है। मुनिलाल के 'रामप्रकाश' में राम-कथा का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार है। रीतिकाल में जो रामकाव्य रचा गया उसकी श्रृंगारिता अश्लीलता की सीमा तक जा पहुँची। परंतु तुलसी ने कहीं भी श्रृंगार को मर्यादा की सीमा से नीचे नहीं गिरने दिया।

**(3) आदर्श की स्थापना–** राम काव्य में विभिन्न आदर्शों की कल्पना की गई है और उनकी स्थापना पर बल दिया गया है। आदर्श चरित्र की कल्पना से आदर्श समाज की कल्पना का स्वरूप राम काव्य में साकार सामने आता है। आदर्श भाई, पुत्र, मित्र, राजा आदि तो यहाँ हैं ही, आदर्श परिवार और आदर्श समाज चित्र भी विद्यमान है। राम का राज्य आदर्श राज्य है। वही आदर्श राज्य रामराज्य कहलाता है। राम काव्य में चित्रित विभिन लोकादर्श हमेशा प्रेरणादायक रहे हैं। इन आदर्शों के कारण ही राम-काव्य की ऊँचाई को दूसरे काव्य प्राप्त न कर सकें।

**(4) लोकमंगल की भावना–** प्रभाव की दृष्टि से राम काव्य की गणना उच्चकोटि के उन काव्यों में होगी जिनका उद्देश्य जन-कल्याण या लोकमंगल होता है। ये काव्य सिर्फ मनोरंजन के लिए न लिखे जाकर गंभीर कल्याणकारी उद्देश्य को लेकर रचे गये हैं। हिंदी साहित्य में राम-काव्य के प्रवर्तक तुलसी यद्यपि यह कहते हैं कि उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना स्वांतःसुखाय के लिए की, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि उतनी ही लोकहिताय भी हो गई। अर्थात् उसका उद्देश्य जन–कल्याण या लोक-मंगल को उबुद्ध करना हो गया। राम काव्य के नायक का उद्देश्य भी लोकमंगल ही है। उसका उद्देश्य इन काव्यों का उद्देश्य भी बन गया।

**(5) काव्यरूपों की विविधता–** राम-साहित्य का काव्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत है क्योंकि इसमें काव्य की सभी शैलियों और विधियों को अपनाया गया है। तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' महाकाव्य है। इसकी गणना संसार में श्रेष्ठ महाकाव्यों में की गई है। 'जानकीमगल' अत्यंत सुंदर और मनोरम खण्डकाव्य है। 'गीतावली' गीतिकाव्य है जिसमें सरसता और संगीत का अपना स्थान है। 'विनयपत्रिका' स्तुतिपरक काव्यों में गणमान्य है। विद्वानों की दृष्टि में यह रचना तुलसी के सभी काव्यों में उत्कृष्ट है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कवितावली' में वीरगाथाकालीन चारण-पद्धति का अनुसरण हुआ है, जिसमें कवित्त, चप्पय, सवैये आदि के माध्यम से रामकाव्य की सरसता को उपस्थित किया गया है। 'रामललानहछू' लोकगीत का अनुपम साहित्यिक उदाहरण है। संवाद की दृष्टि से केशव की 'रामचंद्रिका' अनुपम है। इन श्रव्यकाव्यों के अतिरिक्त रामकाव्य में दृष्यकाव्य भी उपलब्ध है, जिनमें हृदयराम का 'हनुमान्नाटक', प्राणचंद्र चौहान का 'रामायण महानाटक' और विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनंदन नाटक' उल्लेखनीय है। रामकाव्य में पद्य के साथ-साथ गद्य का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। रामप्रसाद निरंजनी का भाषा 'योगवासिष्ठ' खड़ी बोली गद्य में है। विश्वनाथ सिंह के 'आनंद रघुनंदन नाटक' में पद्य के साथ ब्रजभाषा का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।

**(6) भाषा-प्रयोग की विविधता–** भाषा के क्षेत्र में भी रामकाव्य अपना महत्त्व रखता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने केवल ब्रजभाषा को अपनाया। अवधी में कृष्ण पर कोई महत्त्वपूर्ण प्राचीन रचना उपलब्ध नहीं होती, किंतु रामकाव्य की रचना प्रायः सभी भाषाओं में हुई है। 'रामचरितमानस' अवधी में रचा गया। 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' आदि की रचना ब्रजभाषा में हुई। 'रामललानहछू' में अवधी का प्रयोग हआ है और रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा योगवासिष्ठ' खड़ी बोली के गद्य में लिखा गया। इसके अतिरिक्त केशव की 'रामचंद्रिका' में ब्रजभाषा के अतिरिक्त बुंदेलखंडी शब्दों का प्रयोग हुआ है। तुलसी की रचनाओं में भोजपुरी के अतिरिक्त अरबी और फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं।

**(7) सभी रसों का समावेश–** राम का चरित्र बड़ा व्यापक है। उसमें सभी रसों का समावेश बड़ी सरसता से हो जाता है। 'रामचरितमानस' में सभी रस उपलब्ध होते हैं। केशव की 'रामचंद्रिका' में भी सभी रसों की व्यंजना हुई है। राम के विवाह में सौंदर्य और माधुर्य की भावना निहित है। राम वनवास के समय करुण रस के चित्रण का यथेष्ट अवसर प्राप्त हुआ है। राम-रावण के युद्ध-वर्णन में वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स की सुंदर व्यंजना है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद में मधुर हास्य के दर्शन होते हैं। रामकाव्य में सेवक-सेव्य भाव की प्रधानता के कारण शांत रस प्रधान है। अधिकतर रामकाव्यों में श्रृंगार अथवा शांत ही प्रधान रस के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

**(8) विविध छंदों का प्रयोग–** रामकाव्य में विविध छंद उपलब्ध है। प्रबंध काव्य में प्रायः दोहे-चौपाइयों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त बीच-बीच में अन्य छंद भी काव्य-सौंदर्य को बढ़ाने में सफल सिद्ध हुए हैं। संस्कृत श्लोक और स्तुतियों में गोस्वामी जी ने वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है। केशव ने तो 'रामचंद्रिका' को छंदों का भंडार बना दिया है। पद-पद पर नवीन छंदों के दर्शन होते हैं। गुरु गोविंद सिंह ने भी बहुत से छंदों का प्रयोग किया है, जो हिंदी में अधिक प्रचलित नहीं हैं।

**(9) प्रकृति-चित्रण–** रामकाव्यों में प्रकृति-चित्रण का अभाव नहीं है। इनमें वन, पर्वत, सूर्योदय, चंद्रोदय, वर्षा ऋतु के चित्रण के साथ-साथ मानव-प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया गया है। 'रामचंद्रिका' का भी प्रकृति-चित्रण सुंदर है।

**(10) जन-श्रद्धा का आधार–** रामकाव्य की विशेषता यह है कि यह कृष्णकाव्य की भाँति आगे चलकर कलुषता को प्राप्त न हुआ। कृष्ण-भक्ति में माधुर्य-भावना का प्राधान्य था, जो रसिक समाज को अपनी



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

ओर आकर्षित करती थी। यही कारण था कि राम-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति का प्रचार अधिक हुआ, किंतु रामचरित्र के आदर्श और मर्यादा भाव शिष्टता और धर्म की पवित्रता के प्रहरी रहे। कृष्ण-भक्ति की अपेक्षा भले ही अधिक रहा हो किंतु जनसामान्य में रामकाव्य अधिक लोकप्रिय रहा। तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का सम्मान उत्तरी भारत में आज भी अक्षुण्ण है। बड़े श्रद्धा भाव से आज भी उसका पाठ होता है।

**(11) समन्वय-भावना–** रामकाव्य में समन्वय-भावना भी परिलक्षित है। यद्यपि गोस्वामी जी रामभक्त थे, किंतु उन्होंने शिव, पार्वती गणेश आदि अन्य देवताओं की भी स्तुतियों की हैं। उन्होंने शिव-पूजन को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया। उनके राम ने रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना की, सीता ने भी गौरी-पूजन किया है। तुलसी ने राम के मुख से कहलाया है–

शिवद्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहुं नहि भावा।

धार्मिक समन्वय के अतिरिक्त ज्ञान और भक्ति का दार्शनिक समन्वय भी तुलसी के रामकाव्य में उपलब्ध हैं। इस तरह शैव और वैष्णव भक्तियों तथा ज्ञान और भक्ति के बीच समन्वय का बड़ा दायित्व राम काव्य में बखूबी निभाया गया है।

**(12) विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के साथ भक्ति पर बल–** रामकाव्य का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद है। शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत बड़ा प्रसिद्ध सिद्धान्त रहा है। उसमें ज्ञान पर बल दिया गया है और ईश्वर तथा जीव को एक माना गया है। विशिष्टाद्वैत में भक्ति को उच्च स्थान प्राप्त हआ है। तुलसीदास ने यद्यपि शंकराचार्य की भाँति ब्रह्म की अद्वैतता का भी आख्यान किया है, पर उनका अधिक बल भक्ति पर ही रहा। भगवत्-कृपा को वे सर्वोपरि मानते रहे हैं–

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंत तुलसीदास हूँ।।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

### 2.5.3 बोध प्रश्न

1. 'रामचरितमानस' किसकी रचना है?
2. तुलसीदास की प्रमुख कुछ रचनाओं के नाम बताइए।
3. रामभक्ति - शाखा के कुछ प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

## 2.6 कृष्ण–भक्ति शाखा (कृष्ण–काव्य)

हिंदी का कृष्ण-भक्ति-साहित्य शुद्ध धार्मिक वातावरण में रचा गया। उस पर भक्ति-दर्शन के संप्रदायों का भी पूरा-पूरा नियंत्रण रहा। यही कारण है कि कृष्ण-भक्ति के सभी संप्रदायों के अनुरूप रचे जाने वाले साहित्य को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते हैं। एक वह जिसका प्रधान लक्ष्य भक्ति-सिद्धांत और भक्ति–दर्शन का निरूपण था तथा दूसरा वह जिसका लक्ष्य था कृष्ण की लीलाओं तथा भक्ति-रस के अवगाहन के द्वारा साहित्यिक आनंद प्रदान करना। 'सूरसागर' दूसरे प्रकार की रचना है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शुद्धाद्वैतवाद अथवा पुष्टि मार्ग के सैद्धांतिक विश्लेषण की सजग चेतना उसके कवि सूर में नहीं है। पर 'साहित्य लहरी' अगर सूर की ही रचना है तो उसमें सैद्धांतिक निरूपण की दृष्टि का प्राधान्य है। नंददास के 'भंवरगीत' में भी ज्ञान–योग आदि के खंडन तथा भक्ति के मंडन में कवि का ध्यान सिद्धांतों और तर्कों पर अधिक गया है। मध्यकाल में कृष्ण-भक्ति साहित्य के दो प्रधान आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण रहे। कृष्ण-भक्त कवियों ने उन ग्रंथों से पर्याप्त सामग्री ली। पर मध्य-काल के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रधान प्रेरणा-स्रोत लोक-साहित्य में प्रचलित पद शैली रही, जो सूर आदि कवियों में विकसित तथा पुष्ट हुई थी। दूसरे, इन कृष्ण-भक्त कवियों की कल्पना भी उर्वर थी इन्होंने कृष्ण-लीला के विभिन्न प्रसंगों की मौलिक उद्भावना भी की है। इस प्रकार हिंदी का कृष्ण-भक्ति साहित्य पुराणों का पिष्टपेषण मात्र नहीं है। उसका अपना स्वतंत्र साहित्य सौंदर्य एवं महत्त्व है। यह लोक-साहित्य शताब्दियों से चली आ रही परंपरा का प्रौढ़ एवं विकसित रूप है। हिंदी-कृष्ण-भक्ति काव्य में लोक-जीवन के विभिन्न पक्षों को ही भक्ति के प्रसंग में महत्त्व मिला है।

कृष्ण-भक्त कवियों का मन मुख्यतः कृष्ण की मधुर लीलाओं में ही रमा है। रामकाव्य की तरह जीवन की संपूर्ण दशाओं के विस्तार एवं उनके क्रमिक वर्णन में इन कृष्ण-भक्त कवियों का मन उतना नहीं रम पाया। कृष्ण-चरित्र की समग्रता या विविधता का चित्रण इन भक्तों का उद्देश्य नहीं था, वे कृष्ण की कुछ लीलाओं में आनंदमग्न होना चाहते थे। यही कारण है कि कृष्ण-भक्ति साहित्य प्रधानतः मुक्तक और गेय पदों की शैली में रचा गया। लीला के आनंद में रमने के लिए गेय पदों में भक्त कवि की पूर्ण तन्मयता के भी दर्शन होते हैं। इसी से ये पद सहृदय पाठक को भाव विभोर किये रहते हैं। इनमें गीति-काव्य का सौंदर्य अपनी पराकाष्टा पर पहुँचा हुआ है। भक्त के लिए भगवान का संपूर्ण जीवन ही लीला है। प्रायः सभी कृष्ण भक्त कवि भागवत अथवा अन्य किसी पुराण में वर्णित कृष्ण-संबंधी प्रसंगों का अवलंबन करके ही चले हैं। घटनाओं के क्रम पर भी इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया है। इन कृष्ण-भक्त कवियों ने साधारणतः बालकृष्ण से लेकर किशोर या यौवन में प्रवेश करने वाले कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। यही कारण है कि पदों के अंतस्तल में प्रबंध की धारा का सूत्र भी व्यंजित होता चलता है। इसी से अधिकांश कृष्ण-भक्त कवियों के गेय पदों में गीति, मुक्तक और प्रबंध– तीनों प्रकार के काव्यों के सौंदर्य का सहज मिश्रण हो गया है। फिर भी उनके काव्य में प्रधान सौंदर्य गीति का ही है। कवि कृष्ण-राधा अथवा युगलछवि की किसी एक लीला के भाव को अन्य सहायक भावों से चरम अवस्था तक पहुँचा देता है। कृष्ण-भक्ति के इन पदों में गीतिकाव्य की सहज स्फूर्ति, आडंबरहीनता तथा निश्छलता के दर्शन होते हैं। जीव मात्र अथवा कम से कम भक्त मात्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति इन पदों में हुई है। अतः इनमें भक्त के साधारणीकृत व्यक्तित्व का आत्माभिव्यंजन है।

कृष्ण-काव्य की एक दीर्घ परंपरा है। महाभारत, हरिवंश पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण के जीवन की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। इनमें से भागवत में कृष्ण-भक्ति का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। बाद के सभी काव्यों पर भागवत का प्रभाव देखा जा सकता है। प्राकृत काव्य-ग्रंथों में हाल की गाथा सतसई (गाथा सप्तशती, ई.पू. प्रथम शताब्दी) में श्री कृष्ण का उल्लेख है। दक्षिण के आलवार संतों का कृष्ण-भक्ति-परंपरा में महत्त्वपूर्ण योग है। संस्कृत के अश्वघोष, महानारायण, आनंदवर्धन आदि



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

के ग्रंथों में कृष्ण की लीलाओं के उदाहरण मिलते हैं। जयदेव का 'गीतगोविंद' संस्कृत काव्य ग्रंथों में इस दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। उसमें कृष्ण और राधा का शृंगार-लीलाओं का विशद वर्णन है। हिंदी में यह परंपरा विद्यापति से प्रारंभ होती है। गीतगोविंद की शृंगारिकता की तरह उन्होंने भी कृष्ण-काव्य में मादक शृंगार की अभिव्यक्ति की है। विद्यापति के पश्चात् सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति के गौरवशाली साहित्य की सर्जना की है। इन कवियों की रचनाओं में भारतीय दर्शन के विभिन्न मतों का आधार लिया गया था। ऐसे चार मतवाद विशेष प्रसिद्ध हैं–

(1) बल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग, (2) चैतन्यमहाप्रभु का गौड़ीय संप्रदाय, (3) गोस्वामी हितहरिवंश का राधबल्लभी संप्रदाय और (4) स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय।

### 2.6.1 प्रमुख कृष्णभक्त कवि

हिंदी के कृष्णभक्त कवि बल्लभाचार्य से सबसे अधिक प्रभावित थे। अतः उन कवियों के साथ उनका भी संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है।

बल्लभाचार्य का जन्म सं. 1535 (सन् 1478 ई.) में मध्य प्रदेश के चंपारण्य में हुआ था। उनके पिता का देहांत उनकी वाल्यावस्था में ही हो गया। उनकी माता बड़ी बुद्धिमती थीं। माता की देख-रेख में उन्होंने असाधारण प्रगति की। 13 वर्ष की अवस्था तक उन्होंने काशी में रहकर शास्त्र, पुराण और साधना-पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद वे यात्रा पर निकल पड़े। शंकराचार्य की तरह उनके मन में भी दिग्विजय की आकांक्षा थी। इस यात्रा के क्रम में बल्लभाचार्य ने अपने मत शुद्धाद्वैतवाद का प्रचार किया। इसी बीच वे ब्रजप्रदेश गये और वहाँ श्री नाथ की जी मूर्ति की स्थापना की। सं. 1587 (सन् 1539 ई.) में काशी में उनका देहांत हो गया।

बल्लभाचार्य द्वारा लिखित ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है–ब्रह्मसूत्रों का 'अणुभाष्य' तथा श्रीमद्भगवद्गीता की टीका 'श्री सबोधिनी'।

बल्लभाचार्य के छोटे पुत्र विट्ठलनाथ का पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान है। उनका जन्म सं. 1572 (सन् 1515 ई.) में हुआ था। 41 वर्ष की अवस्था में वे ब्रज जाकर स्थायी रूप में रहने लगे। फिर 56 वर्ष की अवस्था में वे गोकुल आकर रहने लगे। 70 वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया।

गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने पिता के ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'विद्वन्मंडल', 'भक्तिनिर्णय' तथा 'शृंगाररसमंडन' आदि कई ग्रंथ लिखे।

ग्रंथ-रचना की अपेक्षा विट्ठलनाथ द्वारा किये गये संप्रदाय-संगठन संबंधी कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पिता के और अपने चार-चार शिष्यों को मिलाकर विट्ठलनाथ जी ने 'अष्टछाप' नाम से गायक कवियों का एक दल बनाया। हिंदी साहित्य में अष्टछाप के इन कवियों का विशेष महत्त्व है। अष्टछाप के इन कवियों का परिचय आगे प्रस्तुत है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## (1) सूरदास

सूर का जन्म संवत् 1535 (1478 ई.) वैशाख शुक्ल 5 को हुआ। उनका जन्म दिल्ली-मथुरा रोड पर सीही नाम के ग्राम के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था।

नेत्रविहीन होते हुए भी उन्होंने दृश्य-जगत का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है कि उनकी जन्मान्धता पर संदेह होता है। उन्होंने यमुना के कछारों, कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं एवं ब्रज के सामान्य जीवन का जितना सजीव चित्रण किया है, उतना कोई नेत्रयुक्त कवि भी आज तक नहीं कर सका है। प्रारंभ में उनकी विशेष रुचि गायन-वादन में थी। प्रभावोत्पादन मधुर कंठ के गाये गये उनके विनय और दीनता के पदों को सुनकर लोग मंत्रमुग्ध से हो जाते थे। सं. 1553 (1496 ई.) तक वे सीही तथा उसके निकटवर्ती ग्राम में रहे और इसके बाद मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर आ बसे। वहाँ वे प्रायः 12 वर्ष तक रहे। इस बीच उनकी काफी ख्याति हो गयी तथा अनेक व्यक्ति उनके शिष्य-सेवक बन गये। सं. 1567 (1510 ई.) के लगभग पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य जी अपने नवनिर्मित श्रीनाथ जी के मंदिर की देखभाल करने गोवर्धन जाते हुए गऊघाट पधारे और वहाँ सूर से उनकी भेंट हुई। सूर ने महाप्रभु के समक्ष अनेक विनय और दीनता के पद गाये जिन्हें सुनकर महाप्रभु इस अंधकवि के हाथों बिक से गये और प्यार भरे शब्दों में इनसे कहने लगे– 'सूर ह्वैके ऐसे काहे घिघियात हौ। कछु भगवत् लीला बरनन करौ।' कहते हैं कि तभी से कृष्ण की विविध लीलाओं का गान करना सूर का मुख्य लक्ष्य बन गया।

सूरदास की प्रारंभिक रचनाओं में एक विचित्र प्रकार की दीनता का भाव है। वह बार-बार अपने को पतित, पापी एवं अधम कहते हैं तथा कृष्ण से यह प्रार्थना करते हैं कि वह अपने सेवक का उद्धार करें। दासता के भावों से भरे हुए उनके ये पद 'विनय' के पद कहे जाते हैं। विनय के पदों में आत्म-हीनता, सांसारिक भोग-विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, इस संसार की नश्वरता, हरि-भजन का आग्रह और निर्गुण ईश्वर की अनुकम्पा आदि का वर्णन है। महाप्रभु बल्लभाचार्य के दर्शन के बाद सूर की यह दीनता समाप्त हो गयी और वह श्रीकृष्ण को साकार रूप से भजने लगे। फिर तो उनकी भक्ति सख्य-भाव की हो गयी और अपने कृष्ण से वह हठ, जिद और आग्रह करने लगे। उनके ऐसे पदों में बड़ा खुलापन है–

'सूर' कबहूं न द्वार छांड़े डारिहौं कढ़राई।

अगर कृष्ण उन्हें दरवाजे से निकाल दें तो भी वह वहीं रहेंगे और भगवत्कृपा प्राप्त किये बिना नहीं मानेंगे।

**सूर की रचनाएँ–** नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में सूर के सोलह ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। परंतु शैली और विषय की भिन्नता के कारण ये सब ग्रंथ सूरदास के नहीं हो सकते। अधिकांश साहित्य इतिहासकारों ने 'सूरसारावली', 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर' को ही सूरदास की रचनाएँ माना है। 'सूरसारावली' 'सूरसागर' की विषय-सूची सी है और 'साहित्यलहरी', 'सूरसागर' से लिए गए रस-



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रीति के दृष्ट-कूट पदों का संग्रह मात्र है। 'सूरसागर' श्रीनाथ जी के मंदिर में अनवरत रूप से गाये गये कीर्तन के पदों का संग्रह काव्य है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित 'सूरसागर' में बारह स्कंध में कवि ने कृष्ण के जन्म से लेकर नामकरण, कर्णवेध, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, बाल-क्रीड़ाओं-कालियदमन, दावानल पान, चीर-रहण, रास, पनघट, दान, मान आदि विविध लीलाओं, कंस द्वारा भेजे गये राक्षसों का विनाश, गोचारण, गोवर्धन-पूजा, वनविहार, कृष्ण का मथुरा एवं द्वारिका गमन, कंस-विनाश, श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र-आगमन आदि का सविस्तार उल्लेख किया है। सूर की कीर्ति का स्थायी स्तम्भ 'सूरसागर' ही है।

**कृष्ण-लीला संबंधी पद–** ऐसे पदों में स्थिति-विशेष का पूर्ण दिग्दर्शन, घटना-क्रम का आभास तथा उच्च कोटि के रूप-सौंदर्य एवं भाव–सौंदर्य की परिपूर्ण झलक देखने को मिलती है। सूरसागर की अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके पदों का गीति-माधुर्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरसागर को किसी प्राचीन समय से चली आती लोकगीत-पद्धति का विकसित रूप माना है। भाव, भाषा, लय एवं तान की दृष्टि से सूरसागर के समस्त गीत, शास्त्रीय रागों में आबद्ध होते हुए भी लोकगीतों का परिमार्जित रूप कहला सकते हैं। झूलन, होली, बसंत आदि पर रचे गये उनके पदों में लोकगीतों की सहज सुकुमारता एवं स्वाभाविकता दर्शनीय है।

**बाल-लीला संबंधी पद–** सूर-काव्य का वास्तविक रूप वात्सल्य और विरह के वर्णन में देखने को मिलता है। वात्सल्य का तो सूर कोना-कोना झाँक आये हैं। बालक की कोई भी मनोदशा एवं भावना शेष नहीं रही, जिसका अध्ययन इस नेत्रविहीन कवि ने न किया हो। यशोदा को पुत्र की प्राप्ति युवावस्था के ढलने पर हुई है। तभी तो वह सदैव पुत्र की चिंता करती रहती है और उसे खेलने बाहर नहीं जाने देती। उसे यही चिंता है कि कब उसका लाल चलना सीखेगा, कब तक उसे माता और पिता नंद को बाबा कहेगा और कब वह बहुरिया लायेगा। माता की इन विविध अभिलाषाओं के साथ कृष्ण की शैशवोचित क्रीड़ाओं का जाल-सा फैलता चला जाता है। घुटने के बल चलते हुए बालक का मणि-खचित प्रांगण में अपना प्रतिबिंब देख– बार-बार हंसना, सुवर्ण खंभ में अपने प्रतिबिंब को दूसरा शिशु विचार कर उसे लवनी खिलाना, खेलने के लिए माँ से चंद्रमा मांगना, चोटी बढ़ाने का आश्वासन देकर माँ का दूध पिलाना और बालक का मचल जाना, दूसरे बालकों के साथ मिलकर माँ के सहयोग से आँख-मिचौली का खेल खेलना, खेल ही खेल में साथियों से झगड़ पड़ना और सारा दोष बलराम के माथे मढ़ देना, गोचारण-प्रसंग में साथियों से छाछ एवं रोटी की छीना-झपटी करना, घर-घर में दही-मक्खन की चोरी करते फिरना और अभियोग मुक्त होने के लिए तरह-तरह की बातें एवं युक्तियाँ सोचना, प्रेयसी राधा के साथ खिलौनों की दुनिया बसाना एवं गलबांही डालकर यमुना के कुँजों में खेलने जाना आदि बातें ऐसी हैं, जिन्होंने कृष्ण को संपूर्ण ब्रज का जीवनाधार बना दिया। सूर ने कृष्ण के इसी मधुर रूप का अंकन बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया है।

सूर रूप अर्थात् सौंदर्य के कवि हैं। उनके कृष्ण की बाँकी छवि माता-पिता को ही विमोहित नहीं करती प्रत्युत् राधा एवं गोपियों पर तो उसने ठगौरी-सी लगा दी है। कृष्ण के मोर-मुकुट, पीत-पट एवं



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

हरे बाँस की बाँसुरी ने गोपियों को मंत्र-मुग्ध सा कर लिया है। उधर राधा को श्री-शोभा पर कृष्ण तन-मन न्यौछावर किये हुए हैं। राधा के सौंदर्य पर उन्मत्त बने कृष्ण कभी तो उसके साथ खेलने की बात करते हैं, कभी उसे वन-विहार के लिए उकसाते हैं और कभी उसे यमुना पुलिन–पर रास के लिए आमंत्रित करते हैं। सूर ने रास की पृष्ठ-भूमि में चाँदनी रात, मूग वृक्षों, गोपियों की सज्जा, संगीत की मधुर स्वर-लहरी एवं नृत्य की बंधी गति का जिस तल्लीनता से वर्णन किया है, वह कोई सौंदर्य-प्रेमी कवि ही कर सकता था।

**वियोग–शृंगार–** यों तो सूरदास के संयोग के चित्र अत्यंत पूर्ण हैं, परंतु विरह की जो तीव्र अभिव्यंजना उनके द्वारा हुई है, उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता है। गोपियों के पास जीवित रहने के लिए विरह के अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है। तभी तो विरह के दिनों में भी वे कृष्ण से प्रेम करती हैं। कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय राधा विरह की तीव्रतर घड़ियों में कभी कृष्ण बन जाती है और कभी राधा। विरहाग्नि में जलते हुए उसकी अवस्था ठीक उसी कीट-सी है जो लकड़ी के दोनों छोरों पर आग लगने से बीच में ही बिलबिलाता रह जाता है। संयोग के दिनों में जो वस्तुएँ सुख पहुँचाती हैं, वियोग के दिनों में वे ही काटने को दौड़ती हैं, तभी तो हरी-हरी कुँजें आग की लपटें बन जाती हैं, काली रात का चाँदनी से भर जाना उन्हें सर्पिणी के डँसकर उलट जाने के समान लगता है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रंभाने लगती हैं। 'भ्रमगीत' प्रसंग में सूर ने गोपियों के मुख से सगुण का मंडन और उद्भव के द्वारा निर्गुण का खंडन कराया है। भक्ति के समक्ष उन्हें योग अटपटा-सा लगता है। उनकी यही अभिलाषा है कि उन्हें योग न सिखाकर केवल प्रिय-मिलन की रीति बतलायी जाए।

सूर की भाषा बिल्कुल बोलचाल की ब्रजभाषा नहीं है। सूर ने उसे साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की है। ब्रजभाषा की साहित्यिक परंपरा को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वालों में अष्टछाप के कवि सूर का स्थान सर्वोपरि है।

### (2) कुंभनदास

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने सबसे पहले कुंभनदास को दीक्षित किया था। कुंभनदास गोवर्धन पर्वत के पास ठेठ किसान परिवार में सन् 1468 ई. में जन्मे थे। वह स्वाभिमान की जीवंत मूर्ति थे। 'संतन कहा सीकरी सों काम' जैसे प्रसिद्ध पद के रचयिता कुंभनदास को श्रीकृष्ण की लीला का रूप अत्यंत प्रिय था। उनके पदों में श्री कृष्ण की चित्तचोर चितवन का बार-बार उल्लेख हुआ है। अनुमान है कि उनका परलोकवास 1582 ई. में हुआ था। उनके द्वारा रचित किसी स्वतंत्र ग्रंथ का उल्लेख नहीं मिलता। विभिन्न संग्रहों में उनके पद संकलित हैं।

### (3) परमानंददास

अष्टछाप के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और कवि परमानंददास का जन्म 1493 ई. में हुआ था और उनका परलोकवास 1583 ई. में माना जाता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

महाप्रभु बल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त करने के पहले ही वह संगीत, कीर्तन और काव्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो चुके थे। स्वामी परमानंददास पहले विरह और वैराग्य के पद गाया करते थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य की दीक्षा प्राप्त करने के बाद कृष्ण के बाल-रूप से उन्होंने आत्मीयता स्थापित की और फिर बालकृष्ण की सम्मोहक लीलाओं का ऐसा अनुप वर्णन किया है कि सूरदास के बाद वात्सल्य की दृष्टि से दूसरा स्थान उन्हीं का माना जाता है। 'परमानंदसागर' में इनके पद संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कई रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है।

### (4) कृष्णदास

इनका जन्म सन् 1495 ई. में और देहावसान सन् 1575 ई. माना जाता है। ये शूद्र थे, पर इनकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर बल्लभाचार्य ने इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर का भेटिया बनाया। इनके त्याग और कर्त्तव्य की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कविता में ये सूरदास से प्रतियोगिता करते थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। शताधिक फुटकर पद ही इनके नाम से मिलते हैं।

### (5) गोविंदस्वामी

गोविंदस्वामी का जन्म सन् 1504 ई. में हुआ था। ये गोस्वामी विट्ठलनथ के शिष्य थे। कहा जाता है कि गोस्वामी जी के देहान्त का समाचार सनुकर ये गोवर्धन की कंदरा में गये थे और उसी कंदरा में इन्होंने जीवनलीला समाप्त कर दी। गोस्वामी विट्ठलनाथ के संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही ये संगीत, कीर्तन और काव्य के अधिकारी बन गये थे। स्वयं पदों की रचना करते थे और गाया करते थे। किंवदंती है कि इतिहास-प्रसिद्ध गायक तानसेन इनसे संगीत की शिक्षा लेने आया करता था। गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा प्रापत करने के बाद श्री कृष्ण की भक्ति इन्होंने सख्य भाव से की। भजन-कीर्तन के लिए जो पद समय-समय पर इन्होंने रचे, वे 'गोविंदस्वामी के पद' नाम से संकलित हैं। इनके पदों में साहित्यिक सौंदर्य की अपेक्षा संगीत-माधुर्य की प्रधानता है।

### (6) छीतस्वामी

इनका जन्म सन् 1510 ई. में हुआ था। कहते हैं इन्होंने भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के मृत्यु का समाचार सुनकर प्राण-विसर्जन कर दिया।

अपनी युवावस्था में ये कपटी और लंपट स्वभाव के थे, पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के संपर्क में आने के बाद इनका जीवन ही बदल गया। ये भी संगीत के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध गायक थे। इनके लगभग 200 पद 'पदावती' नाम से मिलते हैं।

### (7) चतुर्भुजदास

इनका जन्म 1527 ई. में और देहावसान 1585 ई. में हुआ था। गृहस्थ-जीवन बिताते हुए भी ये श्रीनाथ जी के सेवा में लगे रहते थे। भक्ति और कविता इन्हें उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इनके स्फुट पदों को 'चतुर्भुज-कीर्तन-संग्रह', 'कीर्त्तनावली', 'दानलीला' आदि शीर्षकों से प्रकाशित किया गया है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## (8) नंददास

इनका जन्म सन् 1533 ई. में माना जाता है। कहते हैं 53 वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हो गया था। ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। एक किंवदंती के अनुसार नंददास अकबर की बांदी रूपमंजरी पर रीझ गये थे।

अष्टछाप के कवियों में प्रखरता, रसिकता और कवित्व की दृष्टि से सूरदास के बाद इन्हीं का स्थान माना जाता है। इनके विषय में प्रसिद्ध है– "और कवि गढ़िया नंददास जड़ियाँ।" कहते हैं कि नंददास महाकवि तुलसीदास के भाई थे। तुलसीदास ने इन्हें राम-भक्त बनाने का प्रयास किया था, "पर विफल रहे। नंददास-कृत 'रासपंचाध्यायी' और 'भंवरगीत' सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। 'रासपंचाध्यायी' में कृष्ण की रास-लीला का वर्णन मनोहर छंदों और ललित भाषा में किया गया है। भाषा के लालित्य और वर्णन-कौशल के कारण कुछ आलोचक इस कृति को जयदेव-कृत 'गीतगोविंद' के समकक्ष मानते हैं। 'भंवरगीत' को उद्धव-गोपिका-संवाद के कारण स्वतंत्र खंडकाव्य के रूप में माना गया है। सूरदास के भ्रमर गीत की तुलना में इस कृति का महत्त्व कम है। आलोचकों के अनुसार नंददास के भंवरगीत में बुद्धिगमय वार्तालाप और तर्कपद्धति अवश्य है, पर भाव की तल्लीनता नहीं मिलती है। नंददास की गोपियाँ उद्भव को न्यायदर्शन के तर्कों से परास्त करना चाहती हैं।

नंददास की अन्य कृतियों में 'सिद्धांतपंचाध्यायी', 'स्यामसगाई' और 'रसमंजरी' प्रमुख हैं।

### अष्टछाप के अतिरिक्त कृष्ण-भक्त कवि

अष्टछाप के अतिरिक्त काव्य के दो संप्रदायों के कवि उल्लेखनीय हैं। एक– राधावल्लभी संप्रदाय, दूसरा– सखी सम्प्रदाय। राधावल्लभी संप्रदाय की स्थापना का श्रेय गुसांई हितहरिवंश जी को दिया जाता है। इसे हरिवंशी संप्रदाय भी कहते हैं। इस संप्रदाय के अनुयायियों में हरिराम व्यास और ध्रुवदास प्रमुख माने जाते हैं।

इस संप्रदाय में राधा को सर्वोपरि माना गया है, कृष्ण उसके बाद आते हैं। इस संप्रदाय के रचनाकारों के वर्ण्यविनय कुंजलीला और सुखद विलास हैं। हितहरिवंश जी की दृष्टि में वियोग अमान्य है। उन्होंने सदैव संयोग और माधुरी के ध्यान तथा गायन पर बल दिया गया है। हितहरिवंश का जन्म 1502 ई. में और निधन 1555 ई. में हुआ।

सखी-संप्रदाय की स्थापना स्वामी हरिदास ने की थी। साकार कृष्ण की सखी-भाव से उपासना करना ही इस संप्रदाय की साधना का लक्ष्य था। स्वामी हरिदास के प्रमुख शिष्य ये थे– विट्ठल विपुल, विहारिनदेव, सरसदेव, नरहरिदेव, रसिकदेव, ललितकिशोरी, ललितमोहनी, चतुरदास, ठाकुरदास, राधिकादास, सखीशरण राधाप्रसाद और भगवान दास।

स्वामी हरिदास की वाणी से प्रेम के उदात्त रूप की झाँकी मिलती है। उनकी पदावली 'केलिमा' के नाम से प्रसिद्ध है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

मुस्लिम कृष्णभक्त कवि रसखान को कौन नहीं जानता? रसखान का जनम 1548 ई. और देहांत 1628 ई. में माना जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी और इन्हें उनके 252 मुख्य शिष्यों में स्थान प्राप्त हुआ था। उनकी दो रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं– 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान'। मुसलमान होते हुए भी कृष्ण-भक्ति में इनकी तल्लीनता और भावविभोरता विशेष द्रष्टव्य हैं। ऐसे ही विजातीय भक्तों को लक्ष्य कर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था–

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदू न वारिये।'

## कृष्ण-भक्ति शाखा का विकास

संप्रदायों में दीक्षित कवियों के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति शाखा में उपर्युक्त प्रेमभाव के भी बहुत से उत्कृष्ट कवि हुए हैं। मीरा, अब्दुल रहीम खानखाना, नरोत्तमदास आदि ऐसे ही कवि हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'कृष्णगीतावली' के द्वारा कृष्ण-भक्ति के विकास में योग दिया है। रीतिकाल में भी भारतेंदु, रत्नाकर, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त तथा दिनकर आदि के नाम कृष्ण-कथाओं के लेखकों में उल्लेखनीय हैं। श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' प्रबंधकाव्यों की परंपरा का उल्लेखनीय ग्रंथ है।

## 2.6.2 कृष्ण-भक्ति की शाखा की प्रमुख विशेषताएँ

**(1) कृष्ण-लीला का वर्णन–** कृष्ण-भक्ति शाखा के सभी कवियों के आराध्य श्री कृष्ण की कथा महाभारत में आई है, पर वहाँ उनके देवत्व की इतनी प्रतिष्ठा नहीं हो पाई, जितनी भागवत पुराण में मिलती है। भागवत पुराण कृष्ण-भक्ति का आकर ग्रंथ हैं। हिंदी के कवियों ने भागवत पुराण के आधार पर ही श्री कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। इस संबंध में सूरदास ने स्वयं भी कहा है–

श्रीमुख चाहि स्लोक दये ब्रह्मा कौं, समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद व्यास सुनई।।
व्यास कहे सुखदेव सौं, द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे, पद भाषा कहि गाइ।।

भागवत के दशम् स्कंध में श्री कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का वर्णन है। सूरदास ने भी सूरसागर के दशम् स्कंध में श्री कृष्ण की लालाओं का वर्णन किया है। अन्य कृष्ण-भक्त कवियों ने भागवत के साथ-साथ प्रायः सूरदास से प्रभावित होकर कृष्ण-लीलाओं को गाया है।

**(2) कृष्ण-काव्य में मौलिकता–** भागवत का आधार लेकर वर्णित लीलाओं में कृष्ण-भक्त कवियों की मौलिकता सर्वत्र देखने को मिलती है। भागवत के छोटे-छोटे प्रसंगों को सूरदास ने विस्तार के साथ काव्यमयी भाषा में व्यक्त किया है। राधा की कल्पना तो एकदम नवीन है। राधा और कृष्ण के प्रेम में अनेक प्रसंगों की अवतारणा और कहने की प्रणाली सर्वथा नूतन है। उसके लिए भागवत के भ्रमर गीत प्रसंग और सूरसागर तथा नंददास के भ्रमरगीत व भंवरगीत को भली प्रकार प्रमाण के रूप में रख सकते



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

हैं। (राधा को स्वकीया के रूप में आगे चलकर चाचा हित वृंदावनदास ने अपने 'लाड़सागर' ग्रंथ में जैसे चित्रित किया है, वैसा अंयत्र दुर्लभ है।)

**(3) पुष्टिमार्ग का अनुसरण–** कृष्ण-भक्त कवियों की भक्ति का दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद है और उनका व्यवहार पक्ष पुष्टिमार्ग है। शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत जीवन और ब्रह्म मूलतः एक होते हुए भी माया-भेद से अलग-अलग है। जीव को भक्ति द्वारा आनंद तभी मिल सकता है जबकि वह ब्रह्मा से अलग हो। उसके लिए पुष्टिमार्ग में आठों याम की सेवा का विधान किया गया है। उसमें कृष्ण को जगाने के पद हैं तो खिलाने के और सुलाने के भी।

**(4) कांत, वात्सल्य और सख्य भाव की प्रधानता–** कांत, वात्सल्य, दास्य, सख्य और शांत– ये भक्ति के पाँच विशिष्ट भाव माने जाते हैं, इनमें से कांत, वात्सल्य और सख्य की भक्ति की प्रधानता आलोच्य परंपरा के कवियों की रचनाओं में मिलती है। कहीं तो श्री कृष्ण और गोपियों की शृंगार-चेष्टाओं का वर्णन है तो कहीं कृष्ण के वात्सल्य का और कहीं उनकी श्रीदामा आदि सखाओं के साथ बाल-क्रीड़ाओं का।

**(5) बाल-लीला-वर्णन की प्रधानता–** इस शाखा के कवियों ने बाल-कृष्ण के जीवन को अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। वात्सल्य में श्री कृष्ण गोकुल और वृंदावन आदि स्थलों पर रहे, जहाँ प्रकृति की छटा बिखरी हुई थी। अतः कृष्ण-काव्य में स्वाभाविक रूप से प्रकृति-वर्णन आ गया है। वह कहीं उद्यीपन रूप में है, कहीं अलंकार के रूप में और कहीं उपमान के रूप में–

'देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहि पटतर इक सैन।।'

आदि पद में प्रकृति का उपमान के रूप में सुंदर प्रयोग है।

**(6) वात्सल्य और शृंगार रसों की प्रधानता–** रस की दृष्टि से यहाँ शृंगार और वात्सल्य प्रधान रस है। सूरदास ने तो दोनों रसों की सांगोपांग अभिव्यंजना की है। इसी से उन्हें वात्सल्य और शृंगार रस का सम्राट कहा जाता है। इसके अतिरिक्त वीर, भयानक, अद्भुत और हास्य रस भी यत्र-तत्र मिल जाता है।

**(7) मुक्तक काव्य–** कृष्ण-भक्ति साहित्य मुख्य रूप से मुक्तक गेय पदों में लिखा गया है। यद्यपि कतिपय प्रबंध काव्य भी लिखे गये हैं। जैसे सबलसिंह चौहान कृत 'महाभारत भाषा' (1661-1724) और छत्रसिंह कायस्थ कृत 'विजय मुक्तावली' (1799 ई.), परन्तु कृष्ण-भक्ति की दृष्टि से इनका हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है।

**(8) सीमित छंदों का प्रयोग–** छंद की दृष्टि से अधिकतर पदों का ही प्रयोग हुआ है, पर अनेक स्थलों पर चौपाई, सार, सरस आदि छन्द भी मिल जाते हैं, इसी प्रकार दोहा, सवैया, छप्पय और हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**(9) ब्रजभाषा काव्य-भाषा–** इस शाखा के कवियों के प्रमुख रूप से ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। कृष्ण-जन्मभूमि की भाषा में कृष्ण लीला-वर्णन स्वाभाविक ही है। इन कवियों ने ललित और साहित्यिक ब्रजभाषा में जो काव्य रचा है, वह आज भी भाव और भाषा साहित्य के कारण लोकप्रिय है।

**(10) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग–** इसमें अनुप्रास, यमक और श्लेष आदि 'शब्दालंकारों' तथा उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, विभावना, अतिशयोक्ति आदि अनेक अर्थालंकारों को देखा जा सकता है। 'साहित्य लहरी' में सूरदास ने नायिका भेद और शब्दों के चमत्कृत कर देने वाला प्रयोग भी किया है।

### 2.6.3 बोध प्रश्न

1. अष्टछाप के कवियों के प्रमुख नाम बताइए।
2. सूरदास की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

## 2.7 सारांश

भक्ति का उद्भव दक्षिण भारत में हुआ किंतु उसका पूर्ण विकास उत्तर भारत में हुआ। भक्ति आंदोलन द्वारा समाज में चेतना फैलाने का सफल प्रयोग हुआ। ईश्वर के निराकार और साकार रूप की पूजा का प्रचलन बहुत पहले से था। भक्त कवियों में भी किसी ने निर्गुण ईश्वर की आराधना की तो किसी ने सगुण रूप की। कोई राम का भक्त था तो कोई कृष्ण का और कोई सूफी संप्रदाय से जुड़ा था। इस प्रकार ईश्वर की कई रूपों में अराधना हुई। कबीर, नानक आदि संत कवियों ने ईश्वर के निराकार रूप की उपासना की। सूफियों ने ईश्वर को प्रेम के रूप में देखा। सगुणोपासक भक्त कवियों ने विष्णु के अवतारी रूपों राम और कृष्ण की उपासना की। कृष्ण उपासक कवियों ने कृष्ण का लीला गायन किया तो राम उपासक कवियों ने राम के लोकमंगलकारी रूप का वर्णन किया।

## 2.8 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति काल का उदय किन परिस्थितियों का प्रतिफलन है?
2. रामकाव्य की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. कृष्ण काव्य-धारा की प्रवृत्तियों को बताइए।
4. राम एवं कृष्ण भक्ति काव्य में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. प्रेममार्गी शाखा की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.9 संदर्भ–ग्रंथ


1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेंद्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी


© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 3. रीतिकाल : सामान्य विशेषताएँ

**लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा**
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 रीतिकाल की परिस्थितियाँ
  3.2.1 ऐतिहासिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ
  3.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
  3.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
  3.2.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
  3.2.5 बोध प्रश्न
3.3 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख धाराएं एवं प्रवृत्तियाँ
  3.3.1 बोध प्रश्न
3.4 रीतिबद्ध काव्यधारा प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.4.1 बोध प्रश्न
3.5 रीतिमुक्त काव्यधारा प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.5.1 बोध प्रश्न
3.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि और उनके काव्य
  3.6.1 बोध प्रश्न
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 संदर्भ-ग्रंथ

## 3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को जान सकेंगे–

- रीतिकाल की परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- रीतिकाल के कवियों के आश्रयदाताओं को जान सकेंगे।
- रीतिकाल के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्य की विशेषताओं को जान सकेंगे।

## 3.1 प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1700 वि. से 1900 वि. तक के कालखंड को रीतिकाल की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार इस काल में 'रीति तत्व' की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नामकरण रीतिकाल किया गया है। इस काल के अधिकांश कवियों ने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथों की रचना की जिनमें अलंकार, रस, नायिका भेद आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। अपनी काव्य प्रतिभा दिखाने के लिए इन कवियों के लिए लक्षण ग्रंथ लिखना अनिवार्य था। काव्यांग चर्चा में ये गौरव का अनुभव करते थे तथा इस युग में इस बात पर विवाद होते थे कि इस पंक्ति में कौन-सा अलंकार, शब्द-शक्ति, रस या ध्वनि है। काव्यांगों के लक्षण एवं स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रीति ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही इस काल में रीति तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी कारण इस काल का नाम रीतिकाल रखा गया है।

## 3.2 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

प्रत्येक युग के साहित्य पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। रीतिकालीन साहित्य भी अनेक ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों की देन है। अब हम उन परिस्थितियों की चर्चा करेंगे, जिन्होंने रीतिकालीन कवियों को प्रेरित-प्रभावित किया।

### 3.2.1 ऐतिहासिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल का प्रारंभिक छोर जहाँगीर के शासन काल (सन् 1605-27) को मानना चाहिए और अन्तिम छोर बहादुर शाह द्वितीय (जफ़र) के शासन काल (सन् 1837-58) को। उत्तर भारत के इतिहास की इन ढाई शताब्दियों में मुगल साम्राज्य की अवनति प्रारंभ हुई। धीरे-धीरे इतना बड़ा साम्राज्य मिटता चला गया और अंत में सन् 1857 के विद्रोह के साथ उनका अंत हो गया। इन ढाई शताब्दियों में एक ओर उत्तरी भारत जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों ने राज्य किया और दूसरी ओर रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में पूर्वी भारत पर एक के बाद एक सत्रह अंग्रेज शासकों ने।

अकबर के देहावसान के बाद सन् 1605 में जब जहाँगीर के हाथों में शासन-सत्ता आयी, तब वह शासन के बजाय अपनी सुंदरी पत्नी नूरजहाँ और शराब में अधिक रुचि लेने लगा। धीरे-धीरे शासन के वास्तविक अधिकार जहाँगीर के हाथों से निकलकर नूरजहाँ के पास पहुँच गये। नूरजहाँ ने उसे विलासित में डुबाये रखा और अपने परिवार-जनों की सहायता से राज्य चलाया। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ और अधिक विलासी शासक के रूप में सामने आया। युद्धों से मुक्ति मिल जाने और साम्राज्य



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

में शांति होने के कारण शाहजहाँ ने वैभवपूर्ण जीवन बिताया। भवन, नहर और बाग बनवाने में उनकी कलाप्रियता प्रकट हुई। औरंगजेब को छोड़कर अन्य सभी मुगलवंशी सम्राट निश्चिंत होकर विलासिता में डूबे रहे।

आपसी ईर्ष्या-द्वेष, विलासिता और लापरवाही से भरे ऐसे वातावरण में देशी राजा और सामन्त केन्द्रीय शासन की छत्रछाया से चैन की सांस ले रहे थे। युद्ध-विग्रह आदि केंद्रीय शासन के सिर दर्द थे, अधीनस्थ राजाओं, सामंतों और शासनाधिकारियों का सुख-सामग्री जुटाने तथा 'काव्य-शास्त्र विनोद' के बहाने मनोरंजन करने के अतिरिक्त कोई काम शेष नहीं रह गया था। फल यह हुआ कि अपने दरबारों में भी इन लोगों ने उन्हीं कलावंतों को आश्रय दिया, जो इनका मनोरंजन कर सकें। यही कारण था कि उक्त भीषण घटनाओं के घटित होते हुए भी हिंदी के अधिकार प्रतिनिधि कवि-चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास, पदमाकर, प्रतापसिंह आदि रीति-संबंधी श्रृंगारपरक उदाहरणों का ही निर्माण करते रहे। उक्त घटनाओं से नितांत अप्रभावित रहकर वे अपने आश्रयदाताओं की विलासिता की वृद्धि में ही सहायक सिद्ध हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक उथल-पुथल के युग में श्रृंगार की रचनाओं के लिए अवकाश बहुत कम था, किंतु फिर भी इसी युग में ऐसी काव्य-रचना के पुष्ट कारण भी विद्यमान हैं। रीतिकालीन साहित्य के अधिकतर भाग का निर्माण भारतीय रियासतों–भरतपुर, जयपुर, मेवाड़, गढ़वाल, लखनऊ, प्रतापगढ़, चरखारी, पन्ना, पूंदी, नागपुर– आदि के शासकों के प्रासादों की चारदीवारी में हुआ है। ये शासक उपयुक्त भयावह राजनीतिक वातावरणों में इसी आशंका के कारण जान-बूझकर नितांत उदासीन तथा निरपेक्ष बने रहते थे कि कहीं उनकी तथा कथित 'शांति' में बाधा न पड़े। यह शांति वास्तविक शांति न थी–संघर्ष और कर्म से पलायन के फलस्वरूप एक ओर दुबककर बैठ जाने की हताश भावना थी। महलों में बंद इन शासकों के समय-यापन के लिए मनोरंजन की सामग्री जुटाना परम आवश्यक था। गवैयों, भांडों, चित्रकारों आदि के साथ–इन सामंतों के दरबारों में कवियों को भी प्रश्रय मिला। इन शासकों के लिए अन्य मनोरंजनों के साथ-साथ कविता भी मनोरंजन का साधन थी।

यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि दरबारों में आश्रय पाने वाले कलावंत आपस में एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते थे। चित्रकार चित्र के द्वारा जितनी बड़ी बात कहता था, कवि छोटे से छोटे पद्य के द्वारा उससे भी ऊँची बात कहना चाहता था और कहता था। कम शब्दों में अधिक गूढ़ और चमत्कारपूर्ण कथन की इस स्पर्द्धा के कारण कविता रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और नायक-नायिका भेद के परिभाषित शब्दों में सिमटती चली गयी। चमत्कारप्रियता के इस वातावरण में कविता श्रृंगार और काव्यशास्त्र तक ही सीमित रही और दरबारों ने इस काम में भरपूर योग दिया।

निस्संदेह इस युग में भी महाराज राजसिंह, शिवाजी, छत्रसाल, गुरुतेग बहादुर और गोविंदसिंह आदि राजपूतों, मराठों, बुंदेलों और गुरुओं ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध किया, पर ऐसे आत्माभिमानी वीरों की संख्या बहुत कम थी। वस्तुतः रियासतों के सभी राजा राजपूत युग से ही विलासी बन गए थे। इधर अकबर की नीति ने इस रंग को और अधिक गहरा बना दिया था। आगे चलकर मुगल सम्राटों की



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विलासिता का भी इन पर और अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनकी विलासिता से ये इतने प्रभावित थे कि उनके गुणों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। इसके समक्ष शाहजहाँ की कलाप्रियता, औरंगजेब के अमीरों की विलासिता और उनके उत्तरवर्ती मुहम्मदशाह रंगीले जैसे शासकों की अकर्मण्यता का ही आदर्श था। उन्हीं के उदाहरण पर शेरो-शायरी की महफिलें गरम रखने के उद्देश्य से इनके लिए भी यह आवश्यक हो गया कि श्रृंगार रस के मुक्तक सुनाने वालों की कविता-धारा में निमज्जित हो रहे थे। आगे चलकर लार्ड वेलेजली की सहायता रीति (सब्सिडियरी सिस्टम) के दाव ने इन्हें और भी अकर्मण्य बना दिया। इस 'रीति' द्वारा भीतरी विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा मिल जाने के कारण उनकी विलासिता और भी बढ़ गई।

अपने आश्रयदाताओं की विलासिता को पुष्ट करने वाले रीतिकवियों तथा अतिरिक्त कवियों का एक दूसरा वर्ग था जो रीति की छाप लेकर रीति मुक्त रहा। उनके काव्य में एक ओर आत्मानुभूत प्रणय का मनोहारी राग मिलता है तो दूसरी ओर भक्ति की पुण्यसलिता भागीरथी भी पाठक के लिए अमर सन्देश लिए हुए हैं। इन कवियों में घनानंद प्रमुख हैं। इस वर्ग के कवियों में आश्रयदाताओं से धन-दौलत पाने की ललक नहीं रही। वे धीरे-धीरे श्रृंगार से भक्ति की ओर मुड़ गए। उनका काव्य किसी भी भक्त कवि के भावोद्गार से टक्कर ले सकता है।

निस्संदेह उस युग में भूषण जैसा भी कवि हुआ, जिसने अपने आश्रयदाता शिवजी को अपने वीर–काव्य द्वारा प्रोत्साहित किया, पर उनका कार्यक्षेत्र तत्कालीन हिंदी क्षेत्र से दूर दक्षिण में था। अतः उसकी वीर कविता उत्तरी भारत के कवियों को प्रभावित न कर सकी। केवल लाल, जोधराज, सूगन, चंद्रशेखर, जैसे इने-गिने कवियों ने ही उस युग में वीर रस की कविता की है। उस युग का अधिकांश वीरकाव्य आदिकालीन काव्य की तरह प्रशस्ति काव्य है। उनके काव्याधार राष्ट्रीय गौरव नहीं, स्वार्थी सामंत हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि–रीतिकाल में अधिकांशतः श्रृंगार रस-संबंधी रचनाओं का प्रमुख कारण उत्तर भारत के प्रायः सभी रियासती राजाओं की विलासप्रियता है। ये लोग भारत की वास्तविकता तथा राजनीतिक उथल-पुथल से जान-बूझकर नितांत अलग-थलग रहते हुए विनोद, परिहास और विलास का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

### 3.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था– (1) शासक और (2) शासित। बादशाह से लेकर उनके आश्रित कर्मचारियों तक का एक वर्ग समाज का विशेष अधिकार-प्राप्त वर्ग था। इसके पास सुख-सुविधा का प्रत्येक सामान मौजूद था। कविगण इन्हीं की कृपा पर जीवित थे। शासित अर्थात् जनता के सुख-दुःख को समझने और उसके कष्ट दूर करने से तो जैसे समाज के इन उच्चवर्गीय लोगों को कोई प्रयोजन ही न था और न इनके आश्रय में पलने वाले कवियों को। जनता शासनतंत्र के तले कुचली जा रही थी। भूख और बीमारी से तड़प-तड़प कर मर रही थी, शासकों की परस्पर स्वार्थ-लिप्सा के बीच पिस रही थी– इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। न तो शासकों का और न उनके दरबार से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वृत्ति पाने वालों का। कवि राजदरबारों से पुरस्कार और दान के लोभ में वही लिखते-कहते थे, जो उनके आश्रयदाता चाहते थे और आश्रयदाताओं की चाह 'राधा कन्हाई के सुमिरन के बहाने' से उनकी शृंगारपरक मुद्राओं, अवस्थाओं और क्रियाओं का सरस वर्णन करवाने की थी।

जनता केंद्र और रियासतों के दुहरे जन-विरोधी शासन-तंत्र के नीचे पिस रही थी। राज्य की नीतियों में भाग लेने का उसे अवसर न था, गरीब जनता पर नये-नये कर लगाए जा रहे थे और न्याय के लिए कोई दरवाजा खुला न था, किंतु रीतिकाल के ये खरीदे हुए रीतिबद्ध कवि जनता के कष्टों की उपेक्षा करते हुए अपने-अपने अन्नदाताओं का मनोरंजन करने में जुटे रहे। विश्व-साहित्य में कवियों की उत्तरदायित्वहीनता का ऐसा उदाहरण ढूंढ़ निकालना कठिन होगा।

### 3.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल में सगुण भक्ति का विशेष प्रचार हुआ। राम लोक रक्षक के रूप में पूजे गए और कृष्ण का लोकरंजक रूप सर्वाधिक प्रिय रहा। लोकरंजकता के कारण कृष्ण-लीला भक्तों का आकर्षण-केंद्र बनी। राधा-कृष्ण तथ गोपियों के राग, विहार, क्रीड़ाएँ आदि कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में आध्यात्मिक धरातल पर प्रकट हुए, लेकिन रीतिकाल तक पहुँचते-पहुँचते राधा-कृष्ण और गोपियों ने अपना आध्यात्मिक अर्थ खो दिया और वे लौकिक अर्थों में नायक-नायिका, सखी, दूती आदि बन गए। ऐसा क्यों हुआ? इसका एक कारण है कृष्ण-भक्ति के प्रचारक महाप्रभु बल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण-भक्ति के लिए पुष्टिमार्ग का प्रवर्त्तन। पुष्टमार्ग प्रेममार्ग ही है दाम्पत्यभाव का प्रवेश हो जाने के कारण कृष्ण-भक्ति सरस हो गयी थी। अष्टछाप के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम को कांत-रीति के रूप में प्रस्तुत किया। रीतिकालीन विलासितापूर्ण वातावरण ने ऐसे सरस प्रसंगों को अपनाने में कोई हिचक नहीं दिखलाई। रीतिकाव्य के 'कृष्ण' विभिन्न रियासतों के स्वामी खुद ही हैं और कृष्ण-राधा के प्रेम में नारी के प्रति इन सामन्तों की रुग्ण लालसा ही प्रकट हुई है।

### 3.2.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल के काव्यशास्त्र तथा शृंगारपूर्ण काव्य का विपुल सर्जन आकस्मिक रूप से नहीं हुआ। उपर्युक्त परिस्थितियाँ रीतिकालीन काव्य को जन्म देने का कारण रहीं, लेकिन जिन तत्त्वों से यह काव्य निर्मित हुआ, उनकी परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृत में लिखित भरत का 'नाट्यशास्त्र' सर्वप्रथम उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इसके बाद उनके मतवादों के आधार पर प्रचुर मात्रा में काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे गये। लेकिन रीतिकाल में सबसे अधिक अनुकरण भानुदत्त द्वारा संस्कृत में रचित काव्यशास्त्रीय ग्रंथों– 'रस-मंजरी' और 'रसतरंगिणी'– का किया गया। कहीं-कहीं 'साहित्यदर्पण', 'ध्वन्यालोक' और 'काव्यादर्श' आदि का प्रभाव भी देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कामशास्त्रीय ग्रंथों का प्रभाव भी भरपूर मिलता है।

काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत और प्राकृत में शृंगाररस-पूर्ण मुक्तक काव्य लिखने की परंपरा भी चल रही थी। प्राकृत में 'गाहा सत्तसई' (गाथा सप्तशती) की रचना ने संस्कृत कवियों को



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बड़ा प्रभावित किया। संस्कृत के 'अमरुकशतक' आदि इसी प्रभाव की देन है। इन मुक्तकाव्यों में प्रमुख रूप से शृंगार को आधार बनाया गया है और गौणरूप से भक्ति और नीति पर भी लिखा गया है। यही परम्परा हमें रीतिकाल में दिखाई पड़ती है।

रीतिकाल से पूर्व हिंदी में भी कुछ कृतियाँ मिलती हैं, जो रीतिकाल की शैली में रची गयी हैं। भक्तिकाल में उनकी रचना हुई थी। कृपाराम, ब्रह्म (बीरबल), गंग, बलभद्र, केशवदास, रहीम तथा मुबारक कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल के अंतर्गत आते हैं। परंतु उनकी काव्य-पद्धति प्रायः रीति-प्रधान ही थी। सूर की 'साहित्य लहरी' और नंददासकृत 'रसमंजरी' रीति-परंपरा में ही लिखे गए काव्य हैं। रीतिकाल आचार्यों तथा कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभाव लेने में संकोच नहीं किया।

### 3.2.5 बोध प्रश्न

1. रीतिकाव्य की प्रमुख काव्यधाराओं का परिचिय दीजिए।
2. रीतिकाव्य की पांच प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

## 3.3 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ

संपूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। (1) रीतिशास्त्रीय काव्य, (2) रीतिबद्ध काव्य, (3) रीतिमुक्त काव्य। किंतु इस संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य' के इतिहास में लिखा गया है। "रीतिकालीन कविता के प्रसंग में विद्वानों ने तीन प्रकार के काव्य का विवरण दिया गया है– एक रीतिबद्ध, दूसरा रीतिसिद्ध और तीसरा रीतिमुक्त। रीतिमुक्त के संबंध में कोई मतभेद नहीं है। परंतु 'रीतिबद्ध' शब्द के विषय में मतभेद प्राप्त होता है।" (पृ. 36) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह वर्ग विभाजन इस प्रकार किया है– (1) रीतिबद्ध, (2) रीतिसिद्ध, (3) रीतिमुक्त। इनके अनुसार रीतिबद्ध रचना लक्षणों और उदाहरणों से युक्त होती है परंतु डॉ. नगेंद्र ऐसा नहीं मानते। ऐसे कवियों को वे रीतिकार या आचार्य कवि मानते हैं जिन्होंने काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीति ग्रंथों का प्रणयन किया। रीतिबद्ध कवि वे उन्हें मानते हैं जिन्होंने रीति ग्रंथों की रचना न करके काव्य सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य की रचना की है। इस प्रकार विश्वनाथ प्रसाद, डॉ. नगेंद्र के मत से सहमत नहीं है। क्योंकि मिश्र जी तो ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि मानते हैं। जिन्होंने काव्य सिद्धांतों के अनुसार काव्य रचनाएँ तो की है पर लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, अर्थात् स्वयं अपने किसी नये काव्य सिद्धांतों की स्थापना नहीं की है। इस प्रकार हम रीति साहित्य को तीन धाराओं में विभक्त कर सकते हैं। (1) रीति शास्त्रीय काव्य, रीतिसिद्ध काव्य धारा और रीतिमुक्त काव्यधारा। आइए अब संक्षेप में इन काव्यधाराओं का साहित्यिक आधार जान लें। इस युग के कवियों की पहली व्यापक प्रवृत्ति रीति-निरूपण की रही। यह प्रवृत्ति तीन रूपों में दिखाई देती है।

**(क) रीतिकर्म कविता–** इस वर्ग का कवि अलंकारिक विशिष्ट काव्यांगों पर संक्षिप्त लक्षण-उदाहरण देकर अथवा स्वरचित लक्षण और दूसरे कवियों के उदाहरण देकर विषय को मात्र समझाने में अपने कर्म की



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सफलता समझता रहा। वह स्वरचित सरस उदाहरणों के फेर में नहीं पड़ा। जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण', दूलह का 'कविकुल कंठाभरण' रस रूप का 'तुलसी भूषण' आदि इसी प्रकार के ग्रंथ हैं।

**(ख) रीतिसिद्ध कविता–** काव्य रचना इन कवियों का उद्देश्य था। काव्यशास्त्रीय ज्ञान होते हुए भी ये कवि लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े। फिर काव्यशास्त्रीय छाप इनके काव्य ग्रंथों में दृष्टव्य है। बिहारी, मतिराम, भूपति आदि की सतसइयाँ, हठी जी का 'श्रीराधा सुधाशतक' ग्वाल कवि का 'कविहृदय विनोद' आदि ग्रंथ इसी वर्ग में आते हैं। इन कविताओं का मुख्य विषय शृंगार है। फिर भी वीर रस भक्ति प्रवृत्ति, नीति की कविताएँ भी लिखी गई हैं। इस प्रकार इस वर्ग के इतिहास में सरसता के साथ-साथ विषय की विविधता भी देखने को मिलती है।

**(ग) रीतिबद्ध कविता–** इस वर्ग के कवियों ने काव्यांगों के लक्षणों और उनके अनुसार सरस उदाहरणों की रचना की है। चिंतामणि के 'कविकुल कल्प तरु', 'रस विलास', ललितललाम', भूषण का 'शिवराज भूषण' देव का 'भावविलास' 'रसविलास' पद्माकर का 'जगविनोद' आदि ग्रंथ इसी प्रकार के ग्रंथ हैं। रीतिबद्ध काव्य–संग्रहों की संख्या सर्वाधिक है तथा विषय-वैविध्य भी पर्याप्त है।

अब हम रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्यधाराओं की प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

## 3.4 रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

### (1) लक्षण ग्रन्थों का निर्माण

रीति काल के अधिकांश कवियों की सर्वप्रमुख विशेषता लक्षण ग्रन्थों का निर्माण है। इनमें काव्य विवेचना अधिक है। संस्कृत के लक्षण ग्रन्थकार आचार्यों का अनुकरण करते हुए इन्होंने अपनी रचनाओं को लक्षण ग्रन्थों अथवा रीतिग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया। अनेक कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन में रुचि ली, लक्षण ग्रन्थ लिखे, किन्तु इस क्षेत्र में इनकी सफलता संदिग्ध हैं रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में– "हिंदी में लक्षण ग्रन्थ की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य कोटि में नहीं आ सके। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार आचार्यतव तथा कवित्व के मिश्रण ने ऐसी खिचड़ी पकाई जो स्वादिष्ट होने पर हितकर न हुई।"

### (2) शृंगारिकता

भाव या अनुभूति का विश्लेषण करते हुए विद्वानों ने इन काव्यों में मुख्य रूप में शृंगार रस को देखा है। इस काल के काव्य रचना का प्रमुख प्रयोजन अर्थ प्राप्ति था। प्रतिपाद्य विषय आश्रय दाता की रुचि के अनुसार कविता करना। राजाओं की प्रवृत्ति शृंगारिक थी। अतः उसी के अनुसार इन्होंने शृंगार परक रचनाएँ लिखी। वास्तव में यही उनका प्रतिपाद्य था। डॉ. नगेंद्र ने रीतिकालीन शृंगारिकता का निष्पक्ष विवेचन करते हुए कहा है– "सांचा चाहे जैसा भी रहा हो इसमें ठली शृंगारिकता ही है। इसकी अभिव्यक्ति में उन्होंने किसी प्रकार से संकोच नहीं किया। इसलिए उनकी शृंगारिकता में अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रंथियाँ नहीं है, न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम का अतींद्रिय रूप देने



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

का उचित-अनुचित प्रयत्न। जीवन की वृत्तियाँ उच्चतर सामाजिक अभिव्यक्ति से चाहे वंचित रही हो, परन्तु श्रृंगारिक कुंठाओं से ये मुक्त थी। इसी कारण इस युग की श्रृंगारिकता में घुमड़न अथवा मानसिक छलना नहीं है।"

रसराज श्रृंगार के दो रूप माने जाते हैं। संयोग और वियोग– संयोग में दर्शन, श्रवण, स्मरण, संलाप आदि पाये जाते हैं। चमत्कार प्रिय रीतिकालीन कवि हावों के चित्रण में विदग्ध हैं। नायिका-नायक रूपी मुरली से बेहद प्रेम करती है किंतु अपनी भावनाओं को हृदय में ही सहेजे हुए हैं।

बतरस लालन लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करैं भौहन हंसे दैन कहे नटि जाय।।

ऐसे ही पावस में जब प्रेमी प्रेमिका का मिलन हुआ वहाँ कवि रम सा गया है। तीज के अवसर पर नायिका के मानसिक उल्लास को देखिए–

काम भूलै उर में उरोजनि में दाम झूलै।
स्याम झूलै प्यारी की अनियारी अंखियान में।

श्रृंगार के अन्य पक्ष वियोग में पूर्व राग, मान, प्रवास, और करुण आते हैं। प्रायः सभी कवियों ने वियोग की दसों दशाओं का मनोरम चित्रण किया है। रीतिकालीन नायिका को शुभ चंद्रमा कसाई प्रतीत होता है किंशुक और अनार उसे अंगार से लगते हैं। चंदन, चाँदनी और बादल उनके लिए आग बरसाते हैं। कुल मिलाकर श्रृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके।

### (3) आलंकारिता

रीतिबद्ध काव्य की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति आलंकारिता है। इसका कारण राजदरबारों का विलासी वातावरण तथा जन साधारण की रुचि था। कवि को अपनी कविता को भड़कीले रंगों में रंगना पड़ा। बहुत सारे कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिये किंतु उनके मन में भी लक्षण विद्यमान थे। अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि वह साधन न रहकर साध्य बन गए जिससे काव्य का सौंदर्य बढ़ने की अपेक्षा कम ही हुआ। कभी-कभी केवल अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत उसी चमत्कार में खो जाता है। यह दोष रीविकालीन कवियों में प्रायः पाये जाते हैं। केशव को इसी कारण कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है।

### (4) जीवन–दर्शन

इस काल के कवियों का मुख्य लक्ष्य जीवन और यौवन के रमणीय स्वरूप का उद्घाटन करना था। इनका जीवन दर्शन रूढ़िबद्ध और यांत्रिक है। यह एक सीमित कटघरे में बंधा हुआ है। जीवन की विविधता के दर्शन यहाँ नहीं होते। संघर्ष, साधना और वास्तविक समस्याओं का चित्रण यह काव्य नहीं कर सके। इस व्यापकता के अभाव के कारण उसमे गहराई और गंभीर चिंतन नहीं आ पाये हैं। ये आ



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

भी कैसे सकते थे क्योंकि एक तो वह रसिकता प्रधान युग या दूसरे उस समय का कवि संस्कृत की ह्रासोन्मुखी परम्परा का अंधानुकरण कर रहा था। इसी कारण चिंतन का स्थान प्रदर्शन और अलंकरण प्रियता ने ले लिया और उसके काव्य में हल्कापन आ गया। फिर भी इन कवियों के काव्य में नवीन उद्भावनाएँ भी देखने को मिलती हैं। इन कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य को अलंकृत भी किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ऐसा लगता है कि "रीति कविता के रचयिता यौवन और वसंत के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुधार रूप ही उन्हें प्रिय है।"

### (5) आचार्यत्व

सामान्यतः आचार्य उस विद्वान को कहते हैं जो साहित्य-संबंधी विषय के नूतन सिद्धांतों की स्थापना करे अथवा व्याख्या करे। काव्यशास्त्र या लक्षण-ग्रंथ की रचना करना उसका काम है। कवि कविता करता है और आचार्य उसके गुण-दोषों की मीमांसा करता है। रीतिकाल में कवि ही आचार्य भी थे, यह विचित्र संयोग था। उस समय कवि के लिए कवि शिक्षा का ज्ञाता होना आवश्यक था। बिहारी आदि कुछेक कवियों को छोड़कर रीतिकाल के केशव, देव, मतिराम, पद्माकर, भूषण आदि सभी कवि आचार्य भी थे। विद्वानों ने इन आचार्यों की आलोचना की है, परंतु साहित्य के क्षेत्र में उनका योगदान उपेक्षणीय नहीं है। उसका सबसे बड़ा लाभ यह रहा कि एक तो इस बहाने काव्य में सरस उदाहरणों की भरमार हो गई और दूसरे काव्यशास्त्र के सिद्धांत सरल सरस जनभाषा में व्यक्त कर दिये गये। हिंदी में काव्यशास्त्र के अभाव की पूर्ति इन आचार्य कवियों द्वारा की गई है।

### (6) आश्रयदाताओं की प्रशस्ति

आदिकालीन कवियों की भाँति इस काल के कवियों ने भी शासक एवं सामंत लोगों के आश्रय में रहकर काव्य-रचना की थी। अपने को आश्रय देने वाले व्यक्ति की स्तुति करना उनके लिए स्वाभाविक भी था। इन स्तुतियों में एक तो कवि ने अपनी बहुत सी रचनाओं के नाम ही अपने आश्रयदाता के नाम पर रखे हैं, जैसे भवानी-विलास, हिम्मत बहादुर-विरुदावली जगद्विनोद आदि। दूसरे, आश्रयदाता के जीवन-चरित्र को लेकर उसके विषय में लिखा है, जैसे वीर सिंह देवचरित, जहाँगीर-जस चंद्रिका, रतनावली, शिवाबावनी आदि ग्रन्थों में हैं। आश्रयदाता की वीरता, शूरता, दानशीलता, सुंदरता आदि अनेक गुण इन प्रशस्तियों में समाये हुए हैं। ये वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, जैसे–

'झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते राते जरग जरूर मांगि लाइयो।
कहे पद्माकर सो हीरा लाल मोतिम के,
पन्नन के भाँति-भाँति कहने जड़ाइबो।।

### (7) भक्ति-भावना का पुट

रीति काल की कविता की एक विशेषता यह भी है कि उसके शृंगारमय वर्णनों में कहीं-कहीं भक्ति के भाव भी आ गए हैं। बिहारी ने राधा की स्तुति की है। कृष्ण की स्तुति बिहारी तथा पद्माकर, देव,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मतिराम सबने की है। शिव, गणेश, सरस्वती आदि की स्तुतियाँ करके कवियों ने अपनी भक्ति दिखलाई है। यह दूसरी बात है कि यह भक्ति शब्दमात्र की थी। इतना अवश्य है कि कवि राधा और कृष्ण के नाम का स्मरण करना चाहते थे। भिखारीदास ने रीतिकालीन कवियों द्वारा राधा-कृष्ण को बहाने के रूप में वर्ण्य-विषय बनाने की ओर संकेत किया है–

रीझिहैं सुकवि जो तो मानों कबिताई,
न तु राधिका-कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।

इनके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने अवश्य सच्चे भाव से भक्तिकाव्य लिखे हैं।

## (8) विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन

रीतिकालीन, आचार्यकवियों ने शृंगार वर्णन के आलम्बन रूप में जो विस्तार से नायक-नायिका-भेद बतलाया है, उसमें नायक के वर्गीकरण में उन्होंने उतनी रुचि प्रदर्शित नहीं की है, जितनी नायिका के वर्गीकरण में रीतिकाल के इन कवियों ने अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन अपने काव्यों में किया है। देव, मतिराम, पद्माकर आदि ने विस्तार के साथ नायिकाओं के भेद बतलाएँ हैं और उनके उदाहरण दिये है। रसलीन ने नायिकाओं की संख्या 1152 तक पहुँचा दी है। इन नायिकाओं के भेदों के आठ आधार देखने में आते हैं :– (1) जाति-अनुसार, (2) कर्म-अनुसार, (3) पति-प्रेमानुसार, (4) वयक्रमानुसार, (5) मान के अनुसार, (6) दशा के अनुसार, (7) काल (अस्था) के अनुसार, (8) प्रकृति के अनुसार। इन नायिकाओं के वर्णनों में बहुत अधिक शृंगारिकता है। विलासपूर्ण जीवन बिताने वाले राजा नवाब यही चाहते थे और कवियों ने वैसा करके उनको प्रसन्न किया। उन्होंने नायिकाओं के भेद में शृंगार की कोई भी गोपनीय स्थिति बिना वर्णन के नहीं रहने दी।

## (9) शृंगारेतर विषय

इस काल की कविता की विशेषताओं में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि शृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयों पर पर्याप्त मात्रा में अभिव्यक्ति की गई है। उनमें से भक्ति के अतिरिक्त मुख्यतः नीति, वीरता, प्रकृति-चित्रण आदि को ले सकते हैं।

जीवन के व्यावहारिक अनुभवों से युक्त वृंद, रहीम आदि के दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। बिहारी, देव, ममितराम आदि के काव्यों में भी शृंगारेतर विषयों का वर्णन मिलता है। प्रकृति का वर्णन आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में हुआ है।

## (10) मुक्तक काव्य

रीतिकाल अपनी मुक्तक रचनाओं के लिए विशेष विख्यात है। यद्यपि इसमें प्रबंध काव्य भी लिखे गये हैं। रीतिकाल में मुक्तक काव्य लिखने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। अधिकांश कवियों ने एक क्षण में चमत्कृत कर देने वाली बात कविता में उत्पन्न करने की कोशिश की है। रीतिकाल के मुक्तक काव्यों से पहले काल की गाथासप्तसती, अमरुक का अमरुक शतक, गोवर्द्धनचार्य की आर्य सप्तशती आदि प्राकृत



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

तथा संस्कृत के ग्रंथ लिख चुके थे। रीतिकालीन मुक्तक काव्य दरबारी काव्य अधिक रहा। प्रबंध काव्यों की संख्या बहुत कम हैं, पर प्रबंध काव्य भी लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ 'नाटक' नाम से रचनाएँ मिलती हैं, पर वे वास्तव में नाम के ही नाटक हैं।

### (11) ब्रजभाषा का प्रयोग

ब्रजभाषा रीतिकाल के कवियों की प्रधान भाषा रही अपनी सुकुमारता, कोमलता और काव्योचित विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा ने कवियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इस समय अतीव परिष्कृत ब्रजभाषा का प्रयोग देखने में आता है। उसमें परिस्थितिवश अरबी, फारसी शब्दों की प्रचुरता भी मिलती है, पर वे प्रयोग ऐसे हैं जो भाषा में घुलमिल गए हैं और उसकी स्वाभाविकता को नष्ट नहीं कर पाते। बिहारी का भाषा की प्रांजलता की बार-बार प्रशंसा हुई है। इस भाषा की विशेषताओं ने मुसलमानों को ब्रजभाषा काव्य लिखने की ओर प्रवृत्त किया।

### (12) छंद

दोहा, कवित्त और सवैया इस काल के प्रमुख छंद रहे हैं। बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने सतसई ग्रंथों में दोहा छंद का प्रयोग किया है। लक्षण ग्रंथों में भी दोहों का प्रयोग बहुत हुआ है। इसके अतिरिक्त सोरठा, बरबै, छप्पय, रोला आदि छंद भी रीतिकाल में बार-बार प्रयोग में आए हैं। लक्षण-ग्रंथों की रचना करने वाले कवियों द्वारा भिन्न छंदों का सशक्त एवं उपयुक्त प्रयोग द्रष्टव्य है।

### (13) ऊहात्मकता

ऊहात्मक वर्णन का अर्थ है बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करना भी रीतिकाल की एक विशेषता रही है। वियोग श्रृंगार-वर्णन में बिहारी की नायिका का जो चित्र है, वह ऊहात्मकता से युक्त है–

इत आवति, चलि जात उत, चली छःसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।

अर्थात् नायिका विरह में इतनी कमजोर हो गई है कि जब सांस छोड़ती है तब छः-सात हाथ आगे चली जाती है और जब सांस लेती है तो छः-सात हाथ पीछे आ जाती है। इस तरह वह हिंडोरे पर चढ़ती रहती है।

विरह के कारण नायिका इतनी तृप्त है कि जाड़े की रात में भी गीले वस्त्र की आड़ रखे बिना उसकी सखियाँ उसके पास नहीं आ सकती हैं। विरह से तप्त नायिका पर गुलाब जल डाला तो छनछनाकर सूख गया। राजाओं की प्रशस्ति में भी ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण ऊहाएँ देखने को मिलती है। अनेक प्रसंग संयोग श्रृंगार-वर्णन के भी ऐसे हैं जिन्हें ऊहात्मक कहा जा सकता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

निष्कर्ष यह है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिबद्ध कवियों का अपना विशिष्ट स्थान है। हिंदी के रीति आचार्यों का प्रमुख योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय काव्य शास्त्र परंपरा को हिंदी में सरस रूप में अवतरित किया है। कला की दृष्टि से भी रीतिकाव्य का महत्त्व असंदिग्ध है।

## 3.5 रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

### (क) काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

रीतिकाल में **रीतिमुक्त** अथवा **स्वछंद काव्यधारा** प्रमुख रूप से प्रवाहित हुई है। इस वर्ग की कविताएँ भाव-प्रधान थीं। इनमें शारीरिक वासना की गंध नहीं, वरन् हृदय की अतृप्त पुकार है। राधा और कृष्ण की लीलाओं के गान के बहाने नहीं, सीधे-सादे रूप में वैयक्तिक रूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इन्होंने जो कुछ भी लिखा अपनी अंतः प्रेरणा से परिचालित होकर लिखा है। रीतिमुक्त कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों का काव्य दो प्रकार का मिलता है। (1) **स्वानुभूतिपरक काव्य**, (2) **भक्तिपरक काव्य**। स्वानुभूतिपरक कवियों ने अपने हृदय की आँखों से प्रेम की पीड़ा को देखा था, उसकी चुभन को गहराई तक भोगा था और इसके कारण वियोग की तपन को झेला था। घनानंद जैसे कवियों ने प्रणय में असफल होकर जहाँ एक ओर अपने विरह का गान किया है, वहीं दूसरी ओर अपने हृदय की रसार्द्रता को भक्ति में डुबाकर सांत्वना प्राप्त की है। स्वाभूतिपरक कवियों ने अपने जीवन के वास्तविक प्रेम से प्रेरणा लेकर प्रबंधों और मुक्तकों की रचना की है, जबकि भक्तिप्रेरित स्वछंद कवियों ने कृष्ण भक्ति से प्रभावित होकर अपने काव्यों में श्रृंगार की सरिता नबहाई है। रीतिमुक्त धारा में जगारी कवियों का श्रृंगार चित्रण एक भिन्न पद्धति पर चला है। अतः उनके काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों और विशेषताओं को जानना आवश्यक है।

**(1) स्वच्छंद, संयत प्रेम का चित्रण–** रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने प्रेम का चित्रण रीतिबद्ध कवियों के समान बंधी-बंधाई परिपाटी में नहीं किया है। रीतिबद्ध कवियों का प्रेम रसिकता की कोटि से आगे नहीं जा सका, उनमें उन्मुक्त रूप से हृदय का स्पंदन नहीं आ सका, किंतु रीतिमुक्त कवियों का प्रेम स्वछंद और संयत है। उनमें भावप्रवण हृदय की सच्ची अनुभूति है कहीं भी कृत्रिमता नहीं, और न कहीं कोई छिपाव और दुराव है। उन्हें न कोई लोक लाज का भय है और न ही परलोक की चिंता। प्रेम का मार्ग सीधा है, उस पर चलने के लिए सरल हृदय होना आवश्यक है–

अति सूधों सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
यहाँ साँचे चलै तजि आपन पौ झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।

हृदय की सरलता के साथ-साथ इन कवियों ने शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आंतरिक प्रेम को महत्त्व दिया है। प्रिय के अनुराग में प्रेमी इतना तन्मय है कि उसकी वृत्ति पागलों की सी है। उसका अंतः करण प्रिय की प्रेम साधना और ध्यान में ऐसा लगा है कि अब केवल वही उसके सामने है, सारे संसार की प्रतीति समाप्त हो गई है। चातक की भाँति केवल देखना है–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

"मन जैसे कुछ तुम्हें चाहत है सु बखानिये कैसे सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरै बावरे लौं लगियै नित लौं।
बुद्धि और सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ।
उधरौ जग छाय रहे घनआनंद चातिक त्यौं तकियै अब तौ।

इस प्रकार इनके प्रेम में शुद्ध हृदय का योग है, वृद्धि की कतरब्योंत नहीं है। यह प्रेम उनकी आत्मा की पुकार है। उन्होंने अपनी प्रेमानुभूति रीतिबद्ध कवियों की तरह दूत या दूती के माध्यम से अभिव्यक्त न कर आत्माभिव्यक्ति की शैली में व्यंजित की है। यदि कहीं दूती और सखी का प्रयोग हुआ भी है तो वहाँ वह तटस्थ रूप से प्रेमी की शब्दावली को दुहराती है, अपनी बुद्धि की कतरब्योंत नहीं दिखलाती। इनका प्रेम एकनिष्ट है, इसमें लोकापवाद की तनिक भी चिंता नहीं। इन कवियों पर कवि कालिदास की यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है। 'न कामवृत्ति–वर्चनीय मीक्षते।' इनके पास प्रेम की सच्ची अनुभूतियाँ हैं और उनका इन्होंने उदात्त रूप में वर्णन किया है। विवाह के बंधन में न पड़ कर भी इन कवियों ने प्रेम का जो निर्वाह किया, वह अनुपम है।

## (2) विरहानुभूति की प्रधानता

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम व्यथा प्रधान है। पीड़ा ही इनके काव्य का प्राण है। वियोग वर्णन में इन कवियों की मनोवृत्ति अधिक रमी है, क्योंकि वियोग में कवि की दृष्टि अंतर्मुखी होती है। वह अंतस्तल के प्रेम की अतल गहराइयों तक बैठने के लिए आतुर रहता है। वियोग की अमिट प्यास उसके भाव पेशल हृदय को सदा द्रवित रखती है। अतः उसमें क्रियाशीलता बनी रहती है। हाई ब्लड-प्रेशर की भी वह परवाह नहीं करता। इन कवियों के प्रेम के अंतर्गत संयोग की मात्रा कम है और है भी तो उसमें भी पीड़ा की अनुभूति किसी न किसी प्रकार बनी रहती है–

"यह कैसो संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यौ हूँ बिछोहत है।"

इन कवियों की प्रेम-तृषा सदा बढ़ती ही रहती है। इनमें प्रेम की अथाह पीर है और उस पीर को पहचानने के लिए पीर भरा हृदय अपेक्षित है।

समुझे कविता घनानंद की,
हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।

विरह की अग्नि इन कवियों के भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। गिरिधर कविराय ने भी लिखा है–

चिंता ज्वाल सरीर बन दाहा लगि लगि जाइ।
प्रगट धुआं नहीं देखियै उर अंतर धुंधआई।

विरहिणी विरह में किस प्रकार व्यथित है उसका विवरण घनानंद ने अपने काव्य में किया है। विरहिणी को चैन नहीं है, विरह व्याकुलता अधिक है, जी क्षण भर भी नहीं बहलता, संजीवन सुजान प्रिय



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

को चाहता है। वेदना ऐसी हो गई है कि उसे दूर करने के उपाय से उसे मूर्छा हो जाती है। अकेले विरहिणी ही सह रही है, बेचारी किस से कहे–

क्यौहूं न चैन पर दिनरैन सु पैडे परयो बिरहा बज्रमारो।
ज्यौ बहरे न कहू छन एक हू नाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ो घनानंद वेदनि देया उपाय ते आवै तॅवारो।
हों ही भरौं अकली कहौ कौन सौं जा विध होत है सांस सबरो।

प्रिय के विरह से विरहिणी व्याकुल होकर संकल्प करती हैं कि यदि प्रिय अपने दर्शनों से वंचित कर रहा है, तटस्थ हो अपना मुख छिपा रहा है तो उसकी पीठ ही देखती रहेगी। पर उसे यह अवश्य कहना है कि प्रिय जिसे खेल या प्रयोग मात्र समझ रहा है वह उसके लिए बरछे के समान है। बिछोह संसार में भारी दुःख है। प्रिय की लोक कल्याण की प्रवृत्ति के अनुकूल ही उसे चलना है। प्रिय को यदि तटस्थता ही सूझती है उसे वह भी उसके लिए सिरमाथे पर है–

तोहिं तो खैल पै मो हिय सेल सो ए रे अमोही बिछोह महादुःख
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो पै कयों न परयौ लहि त तौ सदा सुख
एक ही टेक न दूसरी जानति जीवन प्रान सुजान लिये रुख।
ऐसी सुहाय तौ मेरी कहा बस, देखिहौं पीठ दुराह हौ जो मुख।

इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य परम्परा की व्यथा–प्रधानता उसे प्रचलित परम्परा से पृथक् प्रमाणित करती है। इसका एक कारण फारसी का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त इन कवियों की 'प्रेम की पीर' सूफी कवियों से भी प्रभावित प्रतीत होती है। इसी कारण इनके प्रेम में रहस्यमयता की झलक भी मिलती है। संक्षेप में इनका प्रेम बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक है। वह वासना पंकिल न होकर स्वच्छ एवं उदात्त है। उसमें हृदय की मार्मिक सूक्ष्म अनुभूतियाँ और सौन्दर्य की महीन से महीन बारीकियाँ हैं। वस्तुतः ये कवि प्रेम, हृदय और सौंदर्य के सच्चे पारखी हैं। इन कवियों का विरह वर्णन शास्त्रीय कोटि का नहीं है, उनकी सच्ची अनुभूति में अनायास विरह के शास्त्रीय लक्षण मिल जाते हैं।

### (3) काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

रीतिमुक्त कवियों ने न तो परम्परागत काव्यशास्त्रीय नियमों को आधार बनाकर रचना की और न ही किसी काव्यशास्त्रीय सम्बन्धी विशेष सम्प्रदाय का अनुसरण किया। ये कवि आश्रयदाताओं की इच्छा के गुलाम नहीं रहे। रीतिबद्ध कवियों ने अनुप्रास, यमक आदि अलंकार-विधान को प्रधानता दी, अनुभूति गौण थी। रीतिमुक्त काव्य में यह क्रम उलट गया। इस काव्य में अनुभूति साध्य बनी और कवित्त रचना मात्र साधन रही। इस प्रकार रीतिमुक्त कवियों ने जो अपने काव्यादर्श प्रस्तुत किये हैं उन्हें रीतिबद्ध काव्यादर्शों से पृथक् समझा है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### (4) सौंदर्यानुभूति

रीतिमुक्त कवियों ने प्रिय की छवि के अनेक रमणीय चित्र खींचे हैं, जो सर्वथा लीक से हटकर हैं। रीतिबद्ध कवियों की तरह इन कवियों ने नायिका का नख-शिख का वर्णन नहीं किया, बल्कि प्रिय ने समग्र सौंदर्य के प्रभाव का चित्रण किया है। नारी-सौंदर्य के अतिरिक्त कृष्ण रूप में पुरुष नायक के रूप-प्रभाव का भी चित्रण किया है।

### (5) प्रकृति-चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण कर जिस संवेदनशीलता का उद्घाटन किया है वह उनके स्वछंदतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है। रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, पृष्ठभूमि और मानवीकरण आदि विविध रूपों का सजीवता के साथ चित्रांकन किया है।

### (6) शिल्प-सौष्ठव

रीतिमुक्त कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए काव्य नहीं लिखा, अपितु भावावेग में जो लिखा, वह उनकी सहजता का कलात्मक रूप बन गया। इन कवियों ने अरबी, फारसी शब्दों को स्वतन्त्र रूप में ग्रहण कर स्वच्छ प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इन कवियों ने मुख्य रूप से ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, इसके साथ-साथ कवि आलम ने अवधी भाषा में भी काव्य रचना की है। भाषा मुहावरेदार और लोकोक्ति प्रधान है। सानुप्रासिकता इनकी भाषा का निजी गुण है। लाक्षणिकता, व्यंजना और सूक्ति प्रयोग से इनकी काव्य भाषा रमणीय बन गयी है। इन कवियों ने अधिकांशतः कवित्त और सवैये का प्रयोग किया है, इसके साथ-साथ इनके काव्य में दोहा छंद का प्रयोग भी पर्याप्त है। यत्र-तत्र कुछ अन्य छन्द भी प्रयुक्त हैं। छंद में संगीतात्मकता और लय की अनुगूँज भी विद्यमान है।

रीतिमुक्त कवियों ने न केवल मुक्तक काव्य लिखे, वरन् प्रबंध काव्य भी लिखे हैं। कवि आलम और बोधा ने क्रमशः 'माधवानल कामकंदला' और 'विरह वारीश' नामक प्रबंध काव्यों की रचना की। 'श्याम सनेही' ने भी प्रयाशः प्रबंध कोटि की रचना है। कवि घनानंद रचित गिरिपूजन, यमुनायश, गोकुलगीत आदि को भी किसी सीमा तक प्रबंधात्मक रचनाएँ माना जा सकता है।

इन कवियों ने अधिकांशतः दृश्य और श्रव्य बिंबों का प्रयोग किया है। इन्होंने अपनी स्वछंद प्रवृत्ति के अनुकूल प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य से बिंब ग्रहण किए हैं। इनकी संपूर्ण कला लोक जीवन की ओर विशेष झुकी हुई है।

© DDCE, COL SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 3.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि और उनके काव्य

### केशवदास

परिचय पीछे 'भक्तिकाल' के अंतर्गत दिया जा चुका है। यद्यपि ये अलंकारों को महत्त्व देने वाले चमत्कारवादी कवि माने जाते हैं, प्रमाणस्वरूप इनकी प्रसिद्ध उक्ति– 'भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त' को उद्धृत किया जाता है। किंतु इनके दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथ **'रसिकप्रिया'** और **'कविप्रिया'** इन्हें अलंकारवादी सिद्ध नहीं करते हैं। 'रसिकप्रिया' कविता के शृंगार-अलंकारों का विवेचन ग्रंथ है। कुछ विद्वानों ने केशव को रीतिकाल का प्रवर्त्तक कवि नहीं माना है और उन्हें भक्तिकाल में रखा है, किंतु कुछ उन्हें रीतिकाल का प्रवर्त्तक आचार्य कवि मानते हैं।

### बिहारीलाल

इनका जन्म ग्वालियर के पास बहुवा गोविंदपुर नामक स्थान पर संवत् 1660 (सन् 1603 ई.) में हुआ था। इनका बचपन बुंदेलखण्ड में बीता और युवावस्था में अपनी ससुराल मथुरा में आ बसे थे। ये आमेर (जयपुर) के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि राजा से इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिला करती थी। बिहारी रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि हैं। इनका एक मात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** है। इस ग्रंथ की बहुत प्रशंसा हुई है। छोटी सी रचना में शृंगार रस की मार्मिक अभिव्यंजना तो है ही साथ ही इसमें भक्ति और नीति-विषयक दोहे भी मिलते हैं। ब्रजभाषा पर बिहारी का बहुत अधिकार था और इन्होंने बड़ी परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया है।

### चिंतामणि त्रिपाठी

इनका जन्म 1610 ई. में हुआ था। ये कानपुर के निकट तिकवांपुर के रहने वाले थे। कहते हैं ये चार भाई थे– चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। चारों कवि थे। बहुत विद्वानों ने चिंतामणि त्रिपाठी को ही रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। इनका प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'कविकुल कल्पतरु' है। इनके अन्य ग्रंथों के नाम **छंदविहार, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, रामायण** हैं। चिंतामणि प्रसिद्ध कवि थे। शुक्ल जी ने इनकी भाषा का लालित्य की प्रशंसा की है।

### भूषण

इनका जन्म संवत् 1610 (1613 ई.) में हुआ था। ये चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। चित्रकूट से सोलंकी राजारुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि से विभूषित किया था। उसी नाम से ये प्रसिद्ध हैं। इनका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चला ये महाराज शिवाजी और छत्रसाल के दरबार में रहे थे, दोनों ने इनका बड़ा मान किया था। कहते हैं, शिवाजी ने भूषण को एक-एक छंद पर लाखों रुपये दिये थे। रीतिकालीन कवियों में भूषण वीररस के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ तीन हैं– 'शिवा बावली', 'छत्रसाल दशक' और 'शिवराजभूषण'।

भूषण ओजभरी भाषा में कवित्त लिखने के कारण बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### मतिराम

ये कानुपर जिले के तिकवापुर नामक स्थान पर संवत् 1678 (1621 ई.) के लगभग उत्पन्न हुए थे। ये चिंतामणि और भूषण कवि के भाई थे। ये बूंदी के महाराज भाव सिंह के यहाँ रहे थे। इनका रीतिकाल के कवियों में अच्छा स्थान है। **'रसराज'** और **'ललित ललाम'** इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। मतिराम सतसई, साहित्यसार, लक्षणसार– ये ग्रंथ भी मतिराम के माने जाते हैं।

मतिराम सरसता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये श्रृंगार के कवि हैं। उनके वर्णनों में बड़ी सरस व्यंजनाएँ मिलती हैं।

### देव

देव का जन्म संवत् 1730 (1673 ई.) में हुआ था। इनका पूरा नाम देवदत्त था। कहते हैं कि ये कई रईसों के यहाँ घूमते रहे, इन्हें कोई अच्छा आश्रयदाता नहीं मिला। एक भवानीदत्त वैद्य के नाम पर उन्होंने 'भवानी विलास' नामक ग्रंथ लिखा। कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल विलास' लिखा। इन्हें राजा भोगीलाल का आश्रय भी मिला और इन्होंने उसके लिए 'रस विलास' नामक ग्रंथ लिखा और उसमें उसकी प्रशंसा की–

भोगीलाल भूप लाख पाखर लेवैया, जिन्हें लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं।

देव द्वारा हिंदी और संस्कृत में रचे हुए 25 ग्रंथ बतलाये जाते हैं।

### भिखारीदास

इनका कविता-काल संवत् 1786 से 1806 तक है। ये प्रतापगढ़ के पास ट्योंगा नामक गांव के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। इन्होंने अपने परिवार का पूरा परिचय दिया है। अपने एक ग्रंथ में इन्होंने अपने आश्रयदाता बाबू हिंदूपति सिंह का उल्लेख किया है। इन्होंने काव्यांग-निरूपण के लिए 'काव्य निर्णय' नामक ग्रंथ लिखा है। इनके अन्य ग्रंथों **'रस-सारांश'**, **'श्रृंगार-निर्णय'**, **'छंद प्रकाश'** आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने ग्रंथों में बड़े मनोहर और सरस उदाहरणों को प्रस्तुत किया है।

### पद्माकर

पद्माकर का जन्म संवत् 1810 में बांदा में हुआ था। ये रीतिकाल के लोकप्रिय कवि हैं। इनके काव्य रमणीयता की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हैं। ये पंडित थे। इनका अनेक जगह बहुत सम्मान हुआ था। नागपुर के महाराज रघुनाथराव, पन्ना के महाराज हिंदूपति, जयपुर नरेश प्रतापसिंह की प्रशंसा इन्होंने की है।

इनके प्रसिद्ध ग्रंथ **'हिम्मत बहादुर विरुदावली'**, **'राम रसायन'**, **'प्रबोध पचासा'** और **'जगद्विनोद'** हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### घनानंद

इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग हुआ था। ये ब्रजभाषा के बहुत अच्छे कवि थे। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के रीतिमुक्त कवियों में आते हैं। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीरमुंशी थे। कहते हैं, एक दिन इन्होंने बादशाह के कहने से ध्रुपद गाया नहीं और अपनी प्रेमिका सुजान नामक वेश्या के कहने से गाना गा दिया। बादशाह ने इन्हें शहर से निकाल दिया। तब वे सुजान के पास गये और अपने साथ चलने को कहा। पर जब सुजान इनके साथ नहीं गई, तो ये निराश होकर मृत्युपर्यंत वृंदावन में रहे और 'सुजान' छाप देकर प्रेम और भक्ति के गीत गाते रहे।

**'सुजानविनोद'**, **'सुजानसागर'**, **'विहार लीला'** आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके 400 के लगभग फुकल कवित्त और सवैये मिलते हैं। ये अपनी सरसता और प्रेम की उच्चता के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं।

## 3.7 सारांश

रीतिकाल काव्य की विविध काव्य धाराएं हैं, इनको मूलतः तीन वर्गों में विभक्त किया है। ये तीन धाराएं हैं - रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य। रीतिकाल के कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की। रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं - बिहारी। बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति की जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णतः मुक्त हैं - रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं। रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त वृद्धि की है। हिंदी में काव्यशास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रन्थकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगो की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

## 3.8 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिबद्ध काव्य का वर्णन कीजिए।
2. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध काव्य किस प्रकार भिन्न हैं?
3. रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
4. रीतिबद्ध काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
5. रीतिकाल के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दें।
6. रीतिकाल की परिस्थितियों को बताइए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 3.9 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेंद्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 4. आधुनिक काल : सामान्य विशेषताएँ

**लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा**
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

4.0 अधिगम का उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 आधुनिक काल और उसकी परिस्थितियाँ
4.3 आधुनिक कविता : सामान्य परिचय
4.3.1 बोध प्रश्न
4.4 भारतेन्दु युगीन काव्यधारा
4.4.1 बोध प्रश्न
4.5 द्विवेदी युगीन काव्यधारा
4.5.1 बोध प्रश्न
4.6 छायावादी काव्यधारा
4.6.1 बोध प्रश्न
4.7 प्रगतिवादी काव्यधारा
4.7.1 बोध प्रश्न
4.8 प्रयोगवादी काव्यधारा
4.8.1 बोध प्रश्न
4.9 नयी कविता
4.9.1 बोध प्रश्न
4.10 सारांश
4.11 अभ्यास प्रश्न
4.12 संदर्भ-ग्रंथ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 4.0 अधिगम का उद्देश्य

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ 19वीं सदी के मध्य में माना जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1857 की क्रांति के बाद भारत में अंग्रेजी सत्ता पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी। आधुनिक युगीन हिंदी साहित्य में स्पष्ट परिवर्तन दिखते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य का संबंध इन्हीं नए परिवर्तनों से है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल की पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
- आधुनिक काल के उदय के कारणों को जान सकेंगे।
- आधुनिक काल के स्वरूप को जान सकेंगे।
- आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ उन्नीसवीं सदी के मध्य माना जाता है। उन्नीसवीं सदी भारतीय इतिहास से कई दृष्टियों से निर्णायक कही जा सकती है। हमें आधुनिक साहित्य की उस पृष्ठभूमि को समझना है जिसने इस काल के साहित्य के निर्माण की परिस्थितियाँ पैदा कीं अर्थात् यह साहित्य किन परिस्थितियों में पैदा हुआ और इसकी सृजना के पीछे की प्रेरक शक्तियाँ कौन सी हैं। प्रत्येक युग के साहित्य का संबंध उस युग की परिस्थितियों से बहुत गहरा होता है वह इस युग की परिस्थितियों को बनाने वाले प्रमुख कारकों में से एक होता है, और साहित्य परिस्थितियों को प्रभावित भी करता है।

## 4.2 आधुनिक काल और उसकी परिस्थितियाँ

आदिकाल का वीरगाथा काल में युद्ध की प्रवृत्ति प्रमुख थी। भक्तिकाल में धर्म प्रमुख हो गया और रीतिकाल में सामंतों के दरबार प्रमुख हो गए। पर रीतिकाल के बाद जनता, लोक–समाज, राष्ट्रीयता और देश–गौरव सहसा प्रमुख हो उठे इसलिए काल की दृष्टि से जिसे हम आधुनिक काल मानते हैं, उनमें बृहत्तर जन–सूमाज और राष्ट्र की चेतना परिपूर्ण रूप में व्यक्त हुई है, उसमें देश के विगत गौरव का इस तरह आख्यान किया गया है, जिससे निराश जन समूह को प्रेरणा मिलती है। उसमें धर्म, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान, सामूहिक अधिकार और कर्त्तव्य, विज्ञान आदि के संबंध में पर्याप्त तर्क–वितर्क का साहित्य मिलता है। उसमें व्यक्ति की निजी भावनाओं, संवेदनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है। इस तरह आधुनिक काल का साहित्य बहिर्जगत् और अंतर्जगत् दोनों ही पर बल देकर विकसित हुआ है और हो रहा है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

धार्मिक कर्मकाण्ड, सामाजिक रूढ़ि, शासन–व्यवस्था और अंग्रेजी सम्राज्यवाद के विरोध से आधुनिक साहित्य का प्रारंभ माना गया है। इस दृष्टि से भारतेंदु युग (सन् 1850 से 1900) के साहित्यकारों ने नवीन परंपरा का सूत्रपात किया। अपने साहित्य के माध्यम से यह काम करने के लिए भारतेंदु युग में ही कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उन पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और व्यंग्य कविताओं को पढ़कर आप भी यह स्वीकार करेंगे कि भारतेन्दु युग में विचार की प्रौढ़ता और आधुनिकता का आरंभ हो गया था। इसी विचार का प्रौढ़ता और आधुनिकता में प्रवेश के कारण गद्य को इतना महत्व मिला। चूंकि कविता के माध्यम से एक सीमित दायरे में ही सीमित वर्ग तक अपनी बात पहुंचाई जा सकती है, इसलिए भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्रि, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' और बालकृष्ण भट्ट ने गद्य का सहारा लिया। भारतेंदु युग में गद्य के क्षेत्र में निबंध, नाटक और कहानी का प्रारंभ हुआ। आधुनिक साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप भारतेंदु–युग में ही निश्चित हुआ। भारतेंदु और उनके सहयोगियों ने हिंदी साहित्य को आधुनिक बनाने में बड़ा काम किया।

हिंदी साहित्य में आधुनिक प्रवृत्तियों के अध्ययन से पूर्व आधुनिक काल की कुछ अन्य प्रारम्भिक परिस्थितियों और पृष्ठभूमियों का परिचय पाना आवश्यक है।

अंग्रेजों का राज्य भारत वर्ष में यूं तो सन् 1707 में ही स्थापित हो चुका था, किन्तु अंग्रेजों के सम्पर्क का प्रभाव साहित्य पर बहुत बाद में जाकर पड़ा। रीतिकाल के समाप्त हो जाने पर भी कवि रूढ़ि और परम्परा से प्रभावित हो, राधा-कृष्ण की लीलाओं और नायक-नायिकाओं के वर्णन में लीन थे। ऐसे भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त साधन भी कवियों के पास थे। कविता के आदर्श में अभी तक परिवर्तन नहीं हुआ था, किन्तु अंग्रेजों के आने पर ज्ञान-विज्ञान तथा शासन व्यवस्था की नवीन पद्धति से भारतीयों का परिचय हुआ। रीतिकाल में साहित्य राजा और रईसों से पोषित और प्रोत्साहित होता रहा था। अंग्रेज पदाधिकारियों से इस प्रकार का कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी इस काल में प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उद्धार का प्रयत्न अंग्रेजों की ओर से हुआ। यूरोपीय विद्वानों द्वारा इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा-विज्ञान, प्राचीन भारतीय धर्म और भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन एवं शोधन कार्य आरम्भ करने पर अपरिमित सामग्री प्रकाश में आयी। जीवन की नवीन परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार इस समय गद्य की आवश्यकता का अनुभव हुआ। फलतः गद्य का आश्रय लेना पड़ा। इसीलिए अनेक विद्वान आधुनिक काल को गद्य काल भी कहते हैं। इससे पूर्व हिन्दी में ब्रजभाषा गद्य, राजसथानी गद्य और खड़ी बोली गद्य अविकसित रूप में थे। अर्थात् साहित्य के लिए सशक्त साधन न था। आधुनिक काल में आकर हिन्दी गद्य का प्रारम्भ हुआ–गद्य की नाना साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ, जिसमें निबन्ध, कहानी, उपन्यास आलोचना आदि प्रमुख हैं।

### 4.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

जिस समय के आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ माना जाता है उस समय से एक शताब्दी पूर्व ही भारत की राजनैतिक स्थिति में बदलाव आना शुरू हो गया था। अंग्रेजी राज्य की नींव सन् 1757 से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भारत में पड़ चुकी थी, उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराया था। इस पराजय से सम्पूर्ण बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

देशी रियासतों के राजाओं ने एकत्रित होकर 1857 में पहला स्वतंत्रता समर लड़ा। वे पराजित हुए किंतु इसके दो लाभ हुए। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हुआ। भारत ब्रिटिश राज्य का उपनिवेश बन गया दूसरे अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षिणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। नये उद्योग धंधों ने देश की आर्थिक स्थिति उन्नत की। अंग्रेजी प्रचलन ओर शिक्षा के व्यापक प्रसार से जनता में ज्ञान का उदय हुआ। रेल, डाक, तार आदि यातायात और संचार साधनों से देश में सुख-समृद्धि के बीज उत्पन्न हुए। प्रेस के आविष्कार से साहित्य का प्रचार और प्रसार हुआ।

### 4.2.2 धार्मिक स्थिति

धार्मिक परिस्थितियाँ भी मानव चेतना का प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती। ब्रिटिश राज्य की स्थापना के कारण भारत की अर्थनीति शिक्षा पद्धति यातायात के साधनों आदि में बुनियादी परिवर्तन हुए। फलतः समाज के इस नवीनीकरण से पुराने धार्मिक संस्कार, राजनीतियाँ मेल नहीं खाती थी। अतः धर्म में भावना के स्थान पर तर्क, बुद्धि और विवेक का आगमन हुआ। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज राम, कृष्ण मिशन आर्य समाज और थियोसाफिकल सोसाइटी की मान्यताएँ बहुत कुछ बुद्धि विवेक ओर तर्क पर आधारित हैं।

राजा राम मोहन राय ब्रह्म समाज के संस्थापक थे। उन्होंने अकेले खड़े होकर समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया। विधवा-विवाह का समर्थन किया। स्त्री-पुरुष के समानाधिकार की मांग की।

सन् 1861 में केशवचंद्र सेन ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। इसके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद राणाडे थे। वे मनुष्य की समानता के पक्ष में थे। जाति प्रथा के विरुद्ध थे। अंतर्जातीय के समर्थक थे। स्त्री शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। स्वामी विवेकानंद ने हीनता से ग्रस्त देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य, मनुष्य समता, एकता, बंधुत्व और स्वतंत्रता की ओर उन्होंने ध्यान आकृष्ट किया।

सन् 1867 में महर्षि दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने उत्तर भारत में बड़े प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। वैदिक धर्म की ध्वजा पताका को लहराया। अनेक स्कूल-कॉलेज खोलकर शिक्षा का प्रसार किया। अस्पृश्यता पर जितना प्रबल प्रहार आर्य समाज ने किया उतना और किसी ने नहीं। गद्य की भाषा के परिष्कार में आर्य समाज आंदोलन का बहुत महत्त्व है।

### 4.2.3 सामाजिक स्थिति

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ इस देश के सामाजिक संगठनों में विघटन होने लगा। छोटे-छोटे गाँवों की जड़ता टूटने लगी। वे दूसरे गाँवों और शहरों के संपर्क में आने को बाध्य हुए। घेरे



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

में बंधी अर्थ-व्यवस्था राष्ट्रोन्मुख हो चली। जाति प्रथा आर्थिक वर्गों में बदलने लगी किंतु जातीय उच्चता की भावना विलीन नहीं हो सकी।

अंग्रेजी-शिक्षा, यातायात के साधनों, शान्ति और व्यवस्था ने मानव समाज को उनत्ति का अवसर प्रदान किया। देश प्रेम और समाज सुधार के अंकुर प्रस्फुटित हुए।

आधुनिक युग की परिस्थितियों का परिचय देते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है "अंग्रेजी राज्य के आने से लोगों का ध्यान जीवन की कठोर वास्तविकताओं की ओर गया। जीवन संग्राम बढ़ा और साथ ही जातीय जीवन की भी जागृति हुई। लोग अपनी सभ्यता को महत्त्व देने लगे। जनता ने अपने राजनीतिक अधिकारों को समझा और अपने राष्ट्रीय भाव को प्रकट करना चाहा। हिंदू लोगों ने विदेशी धर्मों का मुकाबला करने के लिए अपने धर्म को बुद्धिवाद के आलोक में परिष्कृत करना आरंभ किया। राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की और महर्षि दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की। ऐसे बुद्धिवाद और प्रतिद्वंद्विता के समय में जनता के भावों के प्रकाश के लिए पद्य उपयुक्त माध्यम नहीं हो सकता था। अतः अंग्रेजी राज्य के साथ-साथ गद्य का युग आया। पद्य में ब्रजभाषा का साम्राज्य था, किंतु नवीन युग आ जाने पर उसकी कोमलकांता पदावली जीवन की संघर्षमय कठोरभूमि के लिए अनुकूल सिद्ध न हो सकी। ब्रजभाषा गद्य के लिए उपयुक्त न ठहरी। अरबी फारसी और व्यवहार योग्य भाषाएँ न थीं। फलतः खड़ी बोली पहले गद्य की भाषा स्वीकार की गई और बाद में गद्य-पद्य दोनों का माध्यम बनी।

गद्य के नाना साहित्यिक रूपों के विकास एवं प्रसार का कारण छापाखाना (प्रेस) भी बना। इसके अतिरिक्त यातायात के साधन, शांतिपूर्ण व्यवस्था और नयी शिक्षा प्रणाली के आरंभ में भी उसमें योग दिया।

आधुनिक काल के हिंदी-साहित्य को भली-भाँति समझने के लिए उन नवीन परिस्थितियों, शक्तियों एवं विचारों को समझना आवश्यक है, जिनका जन्म 19वीं और 20वीं शताब्दियों में हुआ। आओ इन पर संक्षेप में दृष्टिपात करें। भारत में अंग्रेजी राज्य के स्थापित हो जाने पर नवीन शिक्षा-प्रणाली आरम्भ हुई। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों से लोग परिचित हुए। इनके परिणामस्वरूप समाज, धर्म और राजनीति सम्बन्धी अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उनके कारण सामाजिक सुधार की ओर लोगों का ध्यान गया, प्राचीन भारत संस्कृति के पुनरुद्धार का विचार भी उत्पन्न हुआ।

यह काल नवजागरण का काल था। इसी समय पूर्वी ओर पश्चिमी विचारधाराओं का संघर्ष भी आरम्भ हो गया। कुछ लोग पश्चिमी प्रवाह में बह गए, कुछ लोग रूढ़िवादी बने रहे, इस तरह दोनों विचारधाराओं के साथ-साथ नवीन वैज्ञानिक भावधारा का साहित्य में प्रवेश इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिणाम था। इसी काल में राष्ट्रीयता की भावना भी पनपी, विचार-स्वतन्त्रता भी अंकुरित हुई। फलतः इस काल के अन्तर्गत कविता निबन्ध, उपन्यास, नाटक, कहानी, समालोचना, जीवनी आदि नाना साहित्य-रूपों का उद्भव हुआ। इस पाठ में इन सभी साहित्य रूपों में से केवल कविता, नाटक,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि के विकास का परिचय दे रहे हैं। इसलिए यहाँ हम इन्हीं से आपका संक्षिप्त परिचय करवा रहे हैं।

### 4.2.4 बोध प्रश्न

1. आधुनिक काल की समय–सीमा बताइए।
2. आधुनिक काल की भाषा कौन–सी थी?
3. आधुनिक काल की मुख्य समस्याएँ कौन–सी थीं?

## 4.3 आधुनिक कविता : सामान्य परिचय

यह तो आपको पता ही है कि हिंदी साहित्य का आधुनिक काल 1850 ई. के लगभग से आरंभ होता है। और इसे आधुनिक इसलिए कहा जाता है कि विश्व साहित्य और संस्कृति में पाश्चात्य प्रभाव से, राजनीतिक विचार-धारा, विज्ञान की उन्नति और मशीन के उपयोग से हमारे जीवनक्रम में ऐसा परिवर्तन हो गया कि हमें अपनी पुरानी मान्यताओं ओर रूढ़ियों से अरुचि हुई और हमने स्वतन्त्र चिन्तन को अपना पथ-प्रदर्शक मान लिया। अंग्रेजी के माध्यम से भारत के शिक्षित वर्ग पर उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीयता का प्रभाव पड़ना आरम्भ होता है और दूसरी तरफ पाश्चात्य विचारकों–मार्क्स, डार्विन तथा फ्रॉयड का भी प्रभाव पड़ता है। अंग्रेजों के रहन-सहन, उनके सोचने-विचारने के ढंग तथा उनकी भाषा में अनुदित विश्व साहित्य ने हमें वैज्ञानिक युग में ला खड़ा किया।

लेकिन यह आधुनिक काल अपने में किस-किस प्रकार की विशेषताएँ लिए है, यह जानने के लिए उसकी परिस्थिति का सामान्य परिचय पा लेना चाहिए। इस विषय में हम संक्षेप में इतना ही कहेंगे कि सन् 1857 के विद्रोह के बाद भारत की राजनीति बदल गयी। भारतीय जनता जिस तरह की धारणाओं और विचारों के प्रभाव में थी, वह इस विद्रोह के असफल होने के कारण जाता रहा और उसे लगा कि अपनी दयनीय दशा को सुधारने के लिए स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए, तभी महारानी विक्टोरिया के शासन की घोषणा हुई। वह घोषणा उदार थी, इसलिए भारतीयों पर फिर से राजभक्ति का असर पड़ा। एक ओर राजभक्ति और दूसरी ओर देशभक्ति इन दोनों की मिश्रित भावना को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

अंग्रेज राज सुख साज सबै सुखकारी।
पे धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

रीतिकाल के बाद हिंदी कविता में पुराने के साथ-साथ नये विचारों के प्रवर्तन के कारण सबसे बड़े कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हुए। आधुनिक काल के प्रथम चरण को इसी कारण भारतेंदु-युग कहा जाता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सन् 1903 के लगभग से परिस्थिति फिर बदलती है ओर कांग्रेस सारे देश पर छा जाती है। अब राज-भक्ति समाप्त हो जाती है और देशभक्ति युग-दर्शन बन जाती है। जनता भूत, वर्तमान ओर भविष्य के बारे में इस प्रकार सोचने लगती है–

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी।। –मैथिली शरण गुप्त

यह द्विवेदी युग की आवाज थी और इस युग के प्रवर्त्तक थे– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

इसके बाद बाता है– प्रथम महायुद्ध (सन् 1914)। इस युद्ध में भारतवासी अंग्रेजों को इस आशा से सहायता देते हैं कि वे उन्हें स्वतन्त्रता देंगे। लेकिन अंग्रेज अपना वादा पूरा नहीं करते। इसके विरोध में गाँधीजी के नेतृत्व में सन् 1921 का सत्याग्रह आंदोलन छिड़ता है। इस आन्दोलन में चारों तरफ नवयुवकों का संगठन आरम्भ होता है। देहाती अंचलों में भूमि की समस्या को लेकर अंग्रेजी शासन तथा जमींदारों, किसानों की टक्कर आरम्भ होती है। शहरों में मजदूरों की व्यापक हड़तालें होती हैं। पर चोरी-चौरा (गोरखपुर जिला) में किसानों का एक दल पुलिस अफसर के अन्यायपूर्ण किसान-विरोधी रवैये को लेकर हमला करता है। इसी आधार पर गाँधीजी पूरे असहयोग आन्दोलन को वापस ले लेते हैं। फल यह होता है कि समाज में घोर निराशा और स्कूल कॉलेजों मे 1917 की अक्तूबर क्रांति के प्रभाव से आयी स्वच्छन्दता मिलकर साहित्य में कल्पनाशीलता को बढ़ाती है। दूसरी तरफ दमन होता है और साहित्यकार विशेष रूप से कवि, संघर्ष से भागकर कल्पना लोक का वासी हो जाता है। वह पुकार लगाता है–

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे।

इस कल्पना-लोक के वासी कवि छायावादी कहलाए और उनका युग छायावाद-युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

1931 में कांग्रेस फिर अंग्रेजी राज्य से मोर्चा लेती है किन्तु फिर भी सत्य-अहिंसा का आन्दोलन क्रूर शासन का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता। रूस की जनक्रांति से प्रेरणा लेकर हमारे यहाँ भी किसान-मजदूर का राज स्थापित करने के लिए क्रांतिकारी साहित्य लिखा गया है। इसका स्वर यथार्थवादी होता है, जो छायावाद की कल्पनाशीलता का विरोध करता है। ऐसा साहित्य प्रगतिवादी कहा जाता है और इसका युग प्रगतिवाद युग।

दूसरे महायुद्ध के समाप्त (1945) होने से पहले ही प्रगतिवाद का विरोध प्रारम्भ हो जाता है और सन् 1943 में फिर निराशा और घुटन गहरी हो जाती है। छायावादी कल्पनालोक और प्रगतिवादी यथार्थ



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दोनों के समाप्त होने पर अब कवि व्यक्तिवादी काव्य लिखता है। आगे चलकर इसी का नाम प्रयोगवादी या नई कविता हो जाता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके आधार पर आधुनिक काल की काव्यधाराओं को मोटे तौर पर पाँच रूपों में विभाजित कर सकते हैं–

1. भारतेन्दु युगीन काव्यधारा (सन् 1850 से सन् 1900)
2. द्विवेदी युगीन काव्यधारा (सन् 1900 से 1918-25 तक)
3. छायावादी काव्यधारा (सन् 1919-25 से सन् 1936-42 तक)
4. प्रगतिवादी काव्यधारा (1936-42 से 1946-48 तक)
5. प्रयोगवादी और नई कविता की काव्यधारा (सन् 1948 से अब तक)

इन काव्यधाराओं में भी निश्चित विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है कि इनका आरम्भ और अन्त किस निश्चित समय पर हुआ। फिर भी प्रवृत्तियों अथवा प्रेरकों के आधार पर इनकी पहचान की जा सकती है।

## 4.4 भारतेंदु–युगीन काव्यधारा

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र राष्ट्रीय जनगरण के अग्रदूत थे। उनके युग में रातिकालीन परिपाटी की कविता का अवसान और राष्ट्रीय एवं समाज सुधार भावना की कविता का उदय हुआ। इस युग की कविता की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. इस काल में नायिका-भेद और अलंकार ही कविता के विषय नहीं रहे। समय के अुनसार उसमें वर्तमान के प्रति असन्तोष, समाज का उद्धार, देशप्रेम आदि का स्वर भी प्रखर हुआ। साथ ही, राजभक्ति की भी प्रधानता रही।
2. राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सामाजिक स्थिति की ओर भी कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ। सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों के विरोध में भी कविता लिखी गई।
3. भक्तिकालीन और रीतिकालीन परिपाटी की कविताएँ भी लिखी जाती रहीं, पर उनमें उर्दू-साहित्य के 'दर्द' आ जाने से कुछ नवीनता आ गई।
4. प्रकृति–वर्णन की ओर भी कवियों का ध्यान गया ओर उद्दीपन के अतिरिक्त आलम्बन रूप में भी प्रकृति चित्रण होने लगा।
5. कविता अब किसी राजा को प्रसन्न करने के लिए न लिखी जाकर जनता की भावनाओं को व्यक्त करने का साधन बन गई। उसमें यथार्थ का समावेश हुआ।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6. भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अपेक्षा पश्चिमी सभ्यता ओर संस्कृति को उच्च बताने वालों के विरुद्ध व्यंग्य और हास्यपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी।
7. भारत के गौरवमय अतीत को भी कविता का विषय बनाया गया।
8. सजीवता और जिन्दादिली इस युग की कविता की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। कवि लोकगीत, होली, कजली आदि लोक-जीवन में व्याप्त काव्य-प्रकारों को भी अपनाने लगे।
9. छन्दों में कवित्त, सवैया और दोहा के अतिरिक्त लावनी का विशेष प्रयोग हुआ।
10. यद्यपि इस युग में काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही और गद्य की खड़ी बोली, लेकिन अनेक कवियों ने अपने काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग करने की भी कोशिश की। इस युग के अन्त में श्रीधर पाठक के ब्रज और खड़ी बोली दोनों की रचना की।

निस्सन्देह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के सर्वप्रमुख कवि हैं। उनका जन्म सन् 1850 में हुआ, सन् 1857 की जनक्रान्ति से सात वर्ष पूर्व वे केवल 34 वर्ष जीवित रहे। पर इसी छोटी सी आयु में ही उन्होंने 175 ग्रन्थ लिखे, नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, निबन्ध, इतिहास आदि सभी विषयों से सम्बन्धित हैं। भारतेन्दु जी ने कवि-समाज की स्थापना की और कई पत्रिकाएँ निकालीं। यही नहीं, उन्होंने कितने ही लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन दिया। इन सब बातों के कारण ही वे युग-प्रवर्तक कहलाते हैं।

भारतेन्दु बाबू की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है– प्राचीन और नवीन का समन्वय। वे कविता में ब्रजभाषा और गद्य में खड़ी बोली के पक्षपाती हैं। ब्रजभाषा में वे एक साथ भक्ति और शृंगार की कविता लिखकर प्राचीन कवियों की कोटि में पहुँचते हैं– और नवीन ढंग की देश-भक्ति और समाज-सुधार की कविताएँ लिखकर नये कवियों का नेतृत्व करते हैं। वे सच्चे प्रेमी थे। निम्नलिखित सवैये में उनका प्रेमी रूप झलकता है–

हमहूं सब जानति लोक की चालन क्यों इतनी बतरावती हो,
हित जामें हमारो हे सोई करो, सखियां तुम मेरी कहावती हौ।
हरिचन्द जू यामें न लाभ कछू, हमें बातनि क्यों बहरावती हौ,
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कौन का समुझावती है।।

उनके भक्ति-भावना वाले अनेक पद भी मिलते हैं कवित्त-सवैये ओर पद उन्हें प्राचीन कवि की पंक्ति में बिठाते हैं, तो 'भारत दुर्दशा' नाटक में 'आवहु सब मिलि रोवहु भाई। हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई। अथवा 'नील देवी' में 'कहा करुणानिधि केशव तुम सोये। जगत नाहि अनेक जतन करि भारतवासी रोये।' जैसी पंक्तियाँ उन्हें युग का प्रतिनिधि कवि बनाती हैं। उनकी ऐसी ही देशभक्ति की रचनाओं को देखकर आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था कि भारतेन्दु की कविता में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। तीसरी विशेषता उनकी कविता में प्रकृति-वर्णन की है। उन्होंने ही सबसे पहले



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण की कविताएँ लिखीं। उनकी गंगा और यमुना नदियों पर लिखी कविताएँ इसका प्रमाण है। लेकिन प्रकृति-वर्णन में उनका मन विशेष नहीं रमा।

भारतेन्दु के बाद उनके युग के दूसरे प्रमुख कवि हैं श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन'। वे अपनी कविताएँ विशेष अवसरों पर ही लिखते थे। वे कभी दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंट मेम्बर होने पर प्रसन्नता प्रकट करते हैं, तो कभी महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती मनाते हैं। कभी देव-नागरी के कचहरी-प्रवेश पर गद्‌गद हो उठते हैं, तो कभी सनातन धर्म की स्तुति गाने लगते हैं। देश का ध्यान वे सदा रखते हैं। उनके 'सौभाग्य' नाटक में देश की दशा का सजीव चित्र है।

इस युग में अन्य कवियों में सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह और पं. अम्बिका प्रसाद व्यास प्रमुख हैं।

### 4.4.1 बोध प्रश्न

(1) भारतेन्दु युगीन काव्यधारा का समय क्या माना गया है?

(2) भारतेन्दु का जन्म किस वर्ष में हुआ था?

(3) भारतेन्दु युगीन कवियों के नाम बताएं।

## 4.5 द्विवेदी युगीन काव्यधारा

भारतेन्दु-युग में राजभक्ति और देशभक्ति के साथ समाज सुधार की कविता होती थी, इसे आप जान ही गये हैं साथ ही आपको यह भी पता चल गया है कि काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी और गद्य की खड़ी बोली। यह आप जानते ही हैं कि भारतेन्दु ने ब्रजभाषा को देशभक्ति की भावनाओं को व्यक्त करने योग्य बनाया किन्तु द्विवेदी-युग में राजभक्ति समाप्त हुई और कांग्रेस के रूप में जनता ने देशभक्ति का परिचय दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष अब हमारा लक्ष्य था। राष्ट्रीयता की भावना सारे देश में व्याप्त हो गई। फलस्वरूप साहित्य में भी उनकी अभिव्यक्ति हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य की भाषा का अन्तर मिटाकर खड़ी बोली को ही दोनों के लिए उपयुक्त ठहराया। द्विवेदी जी ने स्वयं खड़ी बोली में कविता लिखी। उनके अनुकरण पर श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा और अयोध्यासिंह 'हरिऔध' ने ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया। श्रीधर पाठक आधुनिक खड़ी बोली कविता के जनक ही हैं।

आचार्य द्विवेदी ने छन्दों में भी क्रांति की। हिंदी कविता के लिए संस्कृत के छन्दों की उपयोगिता पर उन्होंने बल दिया और छोटे-छोटे मात्रिक छन्दों को हिंदी-प्रकृति के अनुकूल बताया।

भाषा और छन्द के अतिरिक्त भाव के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। शृंगारिक कविता की भर्त्सना की गई और नैतिकता-प्रधान रचनाओं का समर्थन किया गया। इस युग की कविता में न तो कल्पना की उड़ान है और न भावुकता की अधिकता। वह तो सीधी-सादी है। शृंगार से अछूती और सात्विक भावों से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भरी यह कविता इतिवृत्तात्मक कहलायी। आशा, विश्वास, नैतिकता, मातृभूमि-प्रेम और समाजोत्थान की भावना इसमें विशेष रूप से मिलती है। संक्षेप में द्विवेदी युग की कविता में हम निम्नलिखित विशेषताएँ पाते हैं–

1. काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई ओर उसमें ब्रजभाषा जैसी सरसता लाने का प्रयत्न किया गया।
2. कवित्त, सवैये जैसे पुराने छन्दों का बहिष्कार किया गया और संस्कृत छन्दों को अपनाया गया। कुछ नये छन्द भी प्रयोग में लाये गये।
3. कल्पना, भावुकता ओर श्रृंगार को छोड़कर उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक (कथानक) कविताएँ लिखी गयीं।
4. कविता में आदर्शवाद पनपा और वह मनोरंजन की वस्तु न होकर हमारे जीवन को अभिव्यक्त करने लगी।

द्विवेदी-युग के कवियों में तीन प्रकार के कवि हैं– एक तो वे जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिखते थे और फिर खड़ी बोली में लिखने लगे। दूसरे वे जो शुद्ध खड़ी बोली में लिखते थे और तीसरे वे, जो एक मात्र ब्रजभाषा में कविता लिखते थे।

पहले प्रकार के कवियों में सर्वश्री पं. श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीधर पाठक (1876-1928 ई.) पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे और उसके सफल कवि थे, लेकिन जब खड़ी बोली का प्रचार हुआ तो वे खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। फिर भी उनकी कविता में ब्रजभाषा का प्रभाव बना रहा, क्योंकि उसकी मिठास उनसे छोड़ी नहीं गई। वे स्वतन्त्र प्रकृति के कवि थे और स्वच्छन्दतावादी कविता के आदि कवि। प्रकृति-प्रेम और स्वदेश-प्रेम उनकी कविता के मुख्य विषय थे। 'कश्मीर-सुषमा' में प्रकृति-प्रेम और 'भारत गीत' में स्वदेश-प्रेम की जो कविताएँ हैं, वे बड़ी सरल और सुन्दर हैं। 'एकांतवासी योगी', 'भ्रांत पथिक', 'ऊजड़ गाँव' आदि उनकी अन्य कृतियाँ हैं। इनमें से पिछली दो अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की 'ट्रेवलर' और 'डेजर्टेड विलेज' नामक कृतियों के अनुवाद हैं। ये कृतियाँ ब्रजभाषा में हैं। सब मिलाकर पाठक जी खड़ी बोली कविता के प्रथम कवि थे। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिए।

आज रात इससे परदेशी चल कीजै विश्राम यहीं,
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरी करो ग्रहण संकोच नहीं।
तृष्णा शैया ओर स्वल्प रसोई पाओ स्वल्प प्रसाद,
पैर पसार चलो निद्रा लो मेरा आशीर्वाद।।

**पं. नाथूराम शंकर शर्मा** ने भी पाठक जी की भाँति ब्रजभाषा और खड़ी बोली में कविता की है। ये आर्य समाजी थे, इसलिए इनके काव्य में उपदेशात्मकता अधिक है। वैसे इन्होंने श्रृंगारी कविताएँ भी बहुत लिखी हैं। इनकी कविता में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बड़ी खूबी से हुआ है। मात्रिक और वर्णवृत्त



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

दोनों में समान रूप से टकसाली कविता लिखना इनका स्वभाव था। छन्दों पर इन जैसा अधिकार कम ही कवियों का होता है।

**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** (1865-1947 ई.) भी पहले ब्रजभाषा में ही लिखते थे। इनका 'रसकलस' ब्रजभाषा की महत्त्वपूर्ण कृति है और उससे ये रीतिकालीन आचार्यों की कोटी में पहुँच जाते हैं। उसके अतिरिक्त भी ब्रजभाषा में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। लेकिन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से ये खड़ी बोली में कविता करने लगे। ये एक ओर उर्दू छन्दों की छटा है, तो 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' में संस्कृत छन्दों की। भाषा भी चौपदों में चलती हुई मुहावरेदार है तो महाकाव्यों में संस्कृतगर्भित। इस तरह ये सब प्रकार की भाषा में सिद्धहस्त थे।

इनकी अनेक कृतियाँ हैं, जिनमें 'प्रियप्रवास', 'रस कलस', 'चौखे चौपदे', 'चुभते चोपदे', 'बोल-चाल', 'वैदेही वनवास', 'पारिजात' आदि प्रसिद्ध हैं। 'प्रियप्रवास' इनकी अमर कृति है। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का सफल महाकाव्य है। हिंदी-साहित्य में 'प्रियप्रवास' का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसने महाकाव्यों की धारा ही बदल दी।

**हरिऔध जी के 'वैदेही वनवास'** और **'परिजात'** इसी शैली के महाकाव्य हैं, पर वे 'प्रियवास' की कोटि के नहीं है। वस्तुतः 'प्रियप्रवास' ही इनकी अमर रचना है।

**मैथिलीशरण गुप्त** (1886-1965) द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्हें हम अपने युग का प्रतिनिधि कवि कहते हैं। अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों में उन्होंने काव्य-रचना की है। यदि आप राष्ट्रीयता को लें, तो 'भारत भारती' प्रस्तुत है। छायावाद को लें तो 'साकेत' ओर यशोधरा' के गीत देखिए और रहस्यवाद की झलक पानी हो तो वह 'झंकार' में मिलेगी। इसके अतिरिक्त सभी संस्कृतियों के प्रतीक-रूप काव्य ग्रन्थ लिखने में वे अद्वितीय है। उदाहरण के लिए महाभारत कालीन संस्कृति 'जयद्रथ-वध', 'वक-संहार', 'वन-वैभव', 'सेरन्ध्री', 'द्वापर' और 'जयभारत' में है। पौराणिक संस्कृति 'चन्द्रहास', 'तिलोत्तमा', 'शकुन्तला' ओर 'नहुष' में है। रामायण-कालीन संस्कृति 'पंचवटी, 'साकेत' ओर 'प्रदक्षिणा' में है। बौद्धकालीन संस्कृति 'अनध', 'यशोधरा' ओर कुणाल' में है। मध्य-कालीन संस्कृति 'रंग में भंग', 'गुरुकूल', 'गुरु तेगबहादुर' और 'सिद्धराज' में है। मुस्लिम संस्कृति 'अर्जन और विसर्जन' तथा 'काबा और कर्बला' में है। यदि सामाजिक जीवन की झांकी लेनी हो तो 'किसान' और 'विश्ववेदना' देखिए। इस प्रकार उनसे कोई क्षेत्र छूटा नहीं है। इसलिए उन्हें राष्ट्रकवि कहा जाता है।

सन् 1906 से उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी थी। तब से सन् 1965 के प्रारम्भिक महीने तक वे निरन्तर लिखते रहे। वे आचार्य द्विवेदी जी के शिष्य थे और हिंदी के प्रत्येक कवि को उनकी रचनाओं से प्रेरणा मिली है। छायावादी कवियों तक को उन्होंने प्रभावित किया है।

उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'भारत-भारती' है। इसमें भारत के अतीत और वर्तमान का बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण है। इसके बाद 'जयद्रथ-वध' और 'पंचवटी' के नाम आते हैं। 'पंचवटी' में लक्षण के चरित्र का उत्कर्ष वर्णित है। लेकिन इनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास 'साकेत' और यशोधरा में हुआ है। ये दोनों प्रबन्ध-काव्य हिंदी की निधि हैं। 'साकेत' में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के तप और त्याग का



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गुणगान है और 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध की पतनी यशोधरा के चरित्र की उज्ज्वलता का दिग्दर्शन। भारतीय काव्यों में दोनों ही उपेक्षित रही हैं।

'साकेत' नाम इसलिए रखा गया कि समस्त कथा का केन्द्र साकेत अथवा अयोध्या है। एक बार कथा का केन्द्र चित्रकूट बनता है, तब सारी अयोध्या ही वहाँ पहुँच जाती है। उर्मिला का विरह-वर्णन इसकी विशेषता है। इसके नवम् और दशम् वर्ग उसी के आँसुओं से भरे हैं। इसकी दूसरी विशेषता कैकेयी की आत्मग्लानि का प्रकाशन है। भारत और माण्डवी के चरित्र भी अच्छे निखरे हैं। राम भूतल को स्वर्ग बनाने आये हैं। वे आर्य-संस्कृति के रक्षक हैं। यद्यपि इसमें छायावादी अभिव्यंजना-पद्धति को अपनाया गया है, तथापि किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति, युद्ध की विभीषिका, राज्य-व्यवस्था में पूजा का अधिकार, सत्याग्रह विश्वबन्धुत्व आदि सभी बातों का समावेश सफलता से हुआ है। युग की छाप तो पग-पग पर मिलती है।

'यशोधरा' में गौतम के गृहत्याग और वह भी पत्नी को कहे बिना गृहत्याग करने से उत्पन्न पतिव्रता की वेदना का प्रकाशन है। नारी-जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति इस काव्यकृति की विशेषता है। कुछ लोगों की दृष्टि में यह 'साकेत' से भी बढ़कर है।

अन्य रचनाओं में 'द्वापर', 'नहुष' 'विष्णुप्रिया' आदि प्रमुख हैं। गुप्त जी ने बंगला में 'विरहिणी ब्रजांगना', 'मेघनाथ-वध', 'प्लासी का युद्ध' आदि रचनाओं का हिंदी में अनुवाद भी किया है जो अत्यन्त सुन्दर हैं।

गुप्त जी की भाषा शुद्ध और परिमार्जित खड़ी बोली है। पदावली सरल और कोमल है। उनकी रचनाओं में चमत्कार की प्रवृत्ति मिलती है। वे समन्वयवादी कवि है। पक्के वैष्णव होते हुए भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने वाले हैं। प्राचीन और नवीन को समान रूप से महत्त्व देना उनका स्वभाव है।

खड़ी बोली में ही श्रेष्ठ कविताएँ लिखने वाले कवियों में मुकुटधर पाण्डेय का नाम भी उल्लेखनीय है।

द्विवेदी युग में आपको ऐसे ही कवि मिलेंगे, जो खड़ी बोली की कविता के पर्याप्त प्रचार के बावजूद ब्रजभाषा में रचना करते रहे। ऐसे कवियों में केवल दो का विशेष महत्त्व है—एक है बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ओर दूसरे हैं सत्यनारायण 'कविरत्न'। रत्नाकर की विशेषता यह है कि आधुनिक काल में रह कर भी उन्होंने प्राचीन परिपाटी का पालन किया। 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण' और 'उद्धव शतक' तीनों ब्रजभाषा की बहुमूल्य कृतियाँ हैं। इन में भी 'उद्धव शतक' तो अद्वितीय है। 'बिहारी सतसई' पर बिहारी रत्नाकर' नाम की इनकी टीका भी उच्च कोटि की है। रत्नाकर जी के काव्य मं भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर सामंजस्य है। वे शब्द चित्र अंकित करने में अद्वितीय हैं।

**सत्यनारायण 'कविरत्न' 'ब्रजकोकिल'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। रतनाकर में यदि भक्तिकाल और रीतिकाल का समन्वय है तो सत्यनारायण 'कविरत्न' में भक्तिकाल और आधुनिक काल का। ये ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी थे। 'हृदय तरंग' में इनकी रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'भ्रमरदूत' नामक काव्य में इन्होंने देश की वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का अच्छा वर्णन किया है। इनके उपालम्भ के पद



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

और सवैये भी उत्तम हैं। इन्होंने भवभूति के 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' नाटकों का सुन्दर अनुवाद भी किया है।

द्विवेदी-युग में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त खड़ी बोली और ब्रजभाषा के अन्य उल्लेखनीय कवि भी हुए है। उनमें से खड़ी बोली के कवियों में सर्वश्री रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और लोचन प्रसाद पांडेय और ब्रजभाषा के कवियों में राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' और वियोगी हरि के नाम स्मरण रखने योग्य हैं।

### 2.5.1 बोध प्रश्न

(1) 'प्रियप्रवास' किसकी रचना है?

(2) मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं के नाम बताइए।

## 4.6 छायावादी काव्यधारा

इस युग में भारतीय राजनीति में ऐसा परिवर्तन हुआ कि कविता का स्वरूप ही बदल गया। बात यह हुई कि सन् 1914 से जो प्रथम महायुद्ध हुआ, उनमें गाँधी जी ने यह सोचकर अंग्रेजों की सहायता की थी कि वे भारत को स्वतंत्रता देने का वचन पूरा करेंगे। दो साम्राज्यवादी देशों के इस युद्ध में जनता पर नये करों का बोझ पड़ा और महंगाई भयंकर रूप धारण करने लगी। अंग्रेजी ने स्वतन्त्रता-आन्दोलन का दमन किया फलस्वरूप गाँधी जी ने सन् 1921 में सहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। दुर्भाग्य से इस आन्दोलन को भी गाँधी जी ने वापस ले लिया और देश में घोर निराशा का वातावरण छा गया। इस निराशापूर्ण वातावरण में जो काव्य-प्रवृत्ति विकसित हुई, उसका नाम छायावाद पड़ा।

छायावाद क्या है? इस प्रश्न का उत्तर आज तक कोई ठीक नहीं दे पाया। जितने विचारक उतने ही मत। हाँ, जिस परिस्थिति में यह जन्मा ओर जो कवि इसके जनक कलाये उनकी मनःस्थिति तथा उनके काव्यों की भूमिकाओं को समझ लेने पर इसका स्वरूप स्पष्ट हो सकता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि छायावादी कवियों पर अंग्रेजों के रोमांटिक कवियों का प्रभाव है। इन कवियों में वर्ड् सवर्थ, शैले, कीट्स, ब्राउनिंग आदि प्रमुख हैं। अंग्रेजी रोमांटिक कविता में राजनीति और साहित्य के बन्धनों का तिरस्कार होता है। हिंदी के छायावादी कवियों की भी यह विशेषता रही है। वे यथार्थ जीवन की कटुता से मुँह मोड़कर, अर्थात् राजनीति से विमुख होकर, कल्पनालोक में विचरण करने वाले हैं। इसीलिए उन्हें पलायनवादी कहा जाता है। (पलायन का अर्थ है भागना)। दूसरी बात यह है कि वे सामाजिक बन्धनों को भी स्वीकार करते हैं। तीसरी बात साहित्य और कला के सिद्धान्तों में क्रान्ति से सम्बन्धित है। उन्होंने भाव और कला दोनों ही पत्रों में परिवर्तन किये कि जनता उन्हें समझ न सकी और कविता की अस्पष्टता को लोगों ने 'छायावाद' कह दिया अर्थात् जो समझ में न आये, वह छायावाद है। कुछ लोग प्रतीकों के माध्यम से भाव व्यक्त करने को छायावाद कहते हैं। प्रतीकवाद क्या है? दुःख के लिए 'कांटा', सुख के लिए 'फूल', आशा के लिए 'प्रभात' ओर निराशा के लिए 'रात' जैसे



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शब्दों का प्रयोग करना प्रतीकवाद है। कुछ का मत है कि प्रकृति में आत्मा या परमात्मा की छटा देखना छायावाद है। यहाँ छायावाद रहस्यवाद-सा हो जाता है। आचार्य शुक्ल छायावाद को एक शैली मानते हैं। डाक्टर नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का 'विद्रोह' मानते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि उसमें द्विवेदी युग की शुष्कता के स्थान पर सूक्ष्म भावों से परिपूर्ण सरसता रहती है। वास्तव में द्विवेदीयुगीन कविता के पश्चात् नवीन भावविन्यास, नवीन भावना, नवीन छन्द और नवीन अलंकार-युक्त कविता को ही छायावाद नाम दिया गया।

छायावाद युग की कविता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. निराशा तथा अतृप्त प्रेम के कारण संसार में सुख का अनुभव न करने के कारण काल्पनिक संसार बनाने की इच्छा करना।
2. आदर्श महापुरुष अथवा राजा के स्थान पर सामान्य कृषक, मजदूर, भिखारी, विधवा आदि को काव्य का विषय बनाकर मानव-गौरव की प्रतिष्ठा करना।
3. सामाजिक भावनाओं के स्थान पर व्यक्तिगत भावनाओं को महत्त्व देना और अपने ही दृष्टिकोण से विश्व को देखना।
4. कविता में घटनाओं की अपेक्षा हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करना।
5. प्रकृति का आलम्बन अर्थात् स्वतन्त्र रूप में चित्रण करना और उसे प्रमाण तथा संवेदनशील मानकर चलना।
6. भारत और यूरोप के विभिन्न दर्शनों के अध्ययन के फलस्वरूप कविता में आध्यात्मिकता का प्रकाशन। प्राचीन रहस्यवादी कवियों की कविता, रविन्द्र की 'गीतांजलि', अंग्रेजी कवियों की भाव-प्रवणता और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का घुला-मिला रूप इस आध्यात्मिकता को नया रूप देता है।
7. सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष के कारण बन्धनों को ठुकराना और स्वच्छन्दप्रेम व व्यंजना करना।
8. स्वदेश-प्रेम के प्रसंग में बलिदान-भावना का प्रकाशन और देश के अतीत गौरव, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सम्पन्नता की स्मृति में लीन रहना।
9. छोटे-छोटे मात्रिक छन्दों का प्रयोग, जिनमें दो मात्रिक छन्दों के मिश्रण बने हुए अतुकान्त छन्द और मुक्त छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए।
10. इस विधान में अलंकार-विधान बदल गया। अब तक मूर्त (दिखाई न पड़ने वाले) के लिए मूर्त उपमान ही प्रयोग में आते थे। अब मूर्त के लिए अमूर्त (न दिखाई पड़ने वाले) उपमानों का प्रयोग होने लगा। यही नहीं, अमूर्त भावनाओं के लिए मूर्त उपमान लाये जाने लगे। उदाहरणार्थ 'उच्चाकांक्षाओं से तरुवर' में मूर्त के लिए अमूर्त और 'जीवन की जटिल समस्या है, बड़ी समस्या है, बढ़ी जटा सी केसी' में अमूर्त के लिए मूर्त उपमान प्रयुक्त हुए हैं। इनके साथ-साथ



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मानवीनीकरण और विशेषण-विपर्यय दो नये अलंकार विशेष रूप से ग्रहण किए गए। जड़ पदार्थ को चेतन मानकर उसमें मनुष्य के गुणों का आरोप मानवीकरण और विशेषण को अपने स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाना विशेषण-विपर्यय है। निराला की जुही की कली' और पन्त की 'छाया' में कली और छाया में स्त्री का रूप देखना मानवीकरण के उदाहरण हैं। 'गीला गान' और 'अधीर वीणा' में 'गीला' और अधीर वीणा' क्रमशः रोते हुए और अधीर व्यक्तियों के विशेषण हैं, जिनके द्वारा गाये जाने वाले गान में सरसता और बजायी जाने वाली वीणा में अधीरता का आरोप हुआ है।

छायावाद के प्रमुख कवियों में सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा की गणना होती है। इसमें से प्रसाद जी (1889-1937 ई.) छायावाद के प्रवर्त्तक माने जाते है। काशी निवासी इस सहकवि ने घर पर ही शिक्षा पाई और इतिहास, दर्शन, साहित्य आदि सभी का गम्भीर अध्ययन किया। ये एक साथ कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्ध-लेखक, आलोचक और इतिहासवेत्ता थे। कवि के रूप में इन्होंने पहले ब्रजभाषा में लिखना प्रारम्भ किया। उनकी ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह 'चित्रधार' हैं इसके बाद इनकी खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम समूह 'कानन कुसुम' है। ये कविताएँ द्विवेदी-युग की कविताओं से मिलती-जुलती हैं। उसके बाद तो 'झरना', 'आँसू', 'लहर' और कामायनी' जैसी एक से एक बढ़कर रचनाएँ उन्होंने दी। 'झरना' छायावादी कविता का प्रथम ग्रन्थ है।

प्रसाद जी की कविता के मुख्य विषय हैं– प्रेम प्रकृति और अतीत गौरव। प्रेम में ईश्वरीय और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के प्रेम का समावेश होता है। दोनों प्रकार के प्रेम की व्यंजना उनके प्रसिद्ध विरह काव्य 'आँसू' में हुई है। वे आँसू यद्यपि एक विरही कवि के हैं, तथापि उनमें विश्व कल्याण की भावना भी छिपी हुई है। उनका कहना है–

सब का निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूने जीवन में।
बरसो भारत हिम-कण-सा, आँसू इस विश्व सदन में।।

'कामायनी' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति ही नहीं, अपने युग की महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, आदि वृत्तियों के चित्रों के साथ मानव-जीवन में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा का मार्ग बताया गया है। 'कामायनी' के पात्रों में मनु मन के प्रतीक हैं, श्रद्धा हृदय की और इड़ा बुद्धि की। श्रद्धा आनन्दलोक की ओर जाती है। लेकिन बिना इड़ा के उसकी सार्थकता नहीं। हृदय और बुद्धि के संयोग, भोग और योग, ग्रहण और त्याग, संसार और स्वर्ग का एकीकरण 'कामायनी' का लक्ष्य है।

**सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** (1896-1961) हिंदी के अनुपम विभूति थे, जिन्होंने छायावादी कविता में विद्रोह, पौरुष और संघर्ष का स्वर भरा। इनकी शिक्षा बंगला में हुई। खड़ी बोली इन्होंने अपनी पत्नी की प्रेरणा से सीखी और सभी प्रकार की रचनाएँ लिखीं। इनकी सबसे पहली रचना 'जूही की कली' थी, जो 'सरस्वती' में नहीं छप सकी थी। मुक्तछन्द के प्रवर्त्तक निराला जी का हिंदी में विरोध भी बहुत हुआ, पर



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वे बढ़ते चले गये। 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'बेला' 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुँज' आदि उनके काव्य ग्रन्थ हैं।

निराला जी की रचनाओं में वेदान्त का तत्त्व प्रमुख है। इसका कारण राम कृष्ण मिशन का सम्पर्क और स्वामी विवेकानन्द का आदर्श मानकर चलना है। उनकी 'तुम और मैं' कविता इस दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है। निराला जी के काव्य में आरम्भ से ही प्रगतिशीलता के तत्त्व रहे हैं। 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाएँ उनकी प्रगतिशील दृष्टि की परिचायक हैं। 'यमुना के प्रति' में अतीत गौरव की झांकी है तो 'गीतिका', 'परिमल' में भारत की कीर्ति का गान और बलिदान की गाथा है।

वे मुक्तछन्द के सिद्धहस्त कलाकार और संगीत के पण्डित थे। 'गीतिका' में भारतीय संगीत के आधर पर लिखे गीत अद्वितीय हैं। शब्द-चित्र अंकित करने में तो वे बड़े ही निपुण थे। उन्होंने पुराने उपमानों का नए ढंग से प्रयोग किया।

**सुमित्रानन्दन पन्त** (1900-77) प्रकृति के सुकुमार कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। छायावादी काव्य की भाषा को संवारने में आपके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के क्रीड़ा-क्षेत्र अलमोड़ा जिले के कौसानी में जन्म, व्यक्तित्व में कलाकार–सुलभ कोमलता और आकर्षण, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का गम्भीर अध्ययन–इन सबके कारण उनकी कविता कोमलकान्त पदावली से पूर्ण है। 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव, 'गुन्जन', 'युगान्त', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूल', 'उत्तरा', 'अणिमा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'लोकायतन', 'चिदम्बरा' आपके ग्रन्थ हैं। 'लोकायतन' महाकाव्य है।

पहले प्रकृति, फिर नारी, फिर मानव, फिर अरविन्द दर्शन और अन्त में सबके समन्वय से अभिनव जीवन-दर्शन की सृष्टि–यह पन्त जी की कविता का क्रमिक विकास रहा। छायावादी कवियों में पन्त जी विकासोन्मुख कवि हैं। अपने युग की विचारधारा को इन्होंने अपनाया है। प्रकृति के सुमधुर चित्र और प्रेम की किशोरावस्था–सुलभ अनुभूति प्रारम्भिक कविताओं में है, तो दार्शनिकता 'गुंजन' में है। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में है, तो अरविन्द दर्शन की छाया 'स्वर्णकिरण' ओर 'स्वर्णधूलि' में। इन सबका समन्वित रूप मिलेगा 'लोकायतन' में। पन्त जी धीरे-धीरे जीवन की मूल धारा से कटकर एकान्त चिन्तक बनते गये हैं।

**महादेवी वर्मा** ( जन्म 1917-1987) छायावादियों में रहस्यवाद की एक मात्र कवयित्री हैं इन्हें लोग 'आधुनिक मीरा' कहकर सम्बोधित करते हैं। 'नीहर', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' इनकी काव्य कृतियाँ हैं, जो 'यामा' नाम से संगृहीत हैं।

महादेवी जी की रचनाओं में विरह-वेदना की अधिकता है। 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ' उनकी कविता का केन्द्रीय भाव है। वे पीड़ा और वेदना को जीवन का सर्वस्व मानती हैं, इसलिए वे अमरत्व से अधिक नश्वरता को प्यार करती हैं। उस अज्ञात प्रियतम से पृथक् रहकर वे अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहती हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

आप प्रश्न कर सकते हैं कि क्या केवल ये ही कवि हैं जो छायावादी युग में काव्य-साधना करते रहे हैं? नहीं, ऐसा नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य भी हैं, जिन्होंने छायावाद से प्रेरणा ली है। पर उनका क्षेत्र अलग है। उदाहरण के लिए सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ओर रामधारी सिंह 'दिनकर' को ले सकते हैं। जिनमें राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि रही, यद्यपि शैली छायावादी ही थी। सर्वश्री भगवती चरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, हरिवंश राय बच्चन आदि स्वच्छन्द मार्ग पर चलने वाले कवि भी हैं, जिन्हें हम किसी वाद में नहीं बाँध सकते। हाँ, बच्चन को छोड़कर शैली उनकी भी छायावादी ही कही जाएगी।

### 4.6.1 बोध प्रश्न

(1) इनमें से कौन छायावादी कवि नहीं है?

(क) जयशंकर प्रसाद (ख) महादेवी वर्मा (ग) अरुण कमल (घ) सुमित्रानंदन पंत

(2) महादेवी की रचनाओं के नाम बताएं।

(3) 'परिमल' किसकी रचना है?

## 4.7 प्रगतिवादी काव्यधारा

वह युग मार्क्सवादी और समाजवादी धारा से प्रभावित रहा है। इस युग में यद्यपि गाँधीवादी अहिंसक राजनीतिक ही भारत के क्षितिज पर छायी रही, तथापि जनक्रान्ति और किसान-मजदूर राज्य की स्थापना का नारा बराबर गूँजता रहा। समाज की पुरानी मान्यताओं का विरोध बड़ी तीव्रता से हुआ और नारी-स्वतन्त्रता तथा समानाधिकार का प्रश्न सर्वोपरि रहा।

प्रगतिवाद के विषय में दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रमुख रूप में प्रकाश में आयी हैं एक तो ऐसे लोग हैं, जो यह कहते हैं कि प्रगतिशीलता साहित्य गुण है और समाज के साथ ही साहित्य भी आगे बढ़ता है। इस दृष्टि से साहित्य में प्रगतिशीलता कोई नई वस्तु नहीं है। तुलसीदास से लेकर भारतेन्दु तक गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अकाल अदि के चित्रण होते आये हैं। आज के युग में भी बालकृष्ण शर्मा 'नवीम' की 'झूठे पत्ते' और भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' ऐसी ही रचनाएँ हैं। दूसरे प्रकार के लोग यह कहते हैं कि प्रगतिशीलता केवल गरीबी अथवा भुखमारी के चित्रण का नाम नहीं है, वह सर्वहारा के अधिकारों के समर्थन का नाम है। पहले से जो निम्न वर्ग की दयनीय दशा का चित्रण होता आया है, वह केवल करुणा उत्पन्न करने के लिए है, जबकि प्रगतिवाद में गरीबों और मजदूरों को उनके अधिकार के लिए जागृत करके उन्हें विद्रोही बनाने का प्रयत्न है ओर इस प्रकार सर्वहारा की तानाशाही और वर्गहीन समाज की स्थापना करना लक्ष्य है। सारांश यह है कि प्रगतिवाद साहित्य में मार्क्सवाद की विचारधारा का पोषक है।

हिंदी प्रगतिवाद का आन्दोलन सन् 1935-36 में आरम्भ हुआ और 1951-52 तक अपने उत्कर्ष पर पहुँचा। प्रगतिवाद का नेतृत्व किया महाकवि **सुमित्रानन्द पन्त** ने अपनी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' नामक



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

काव्य-कृतियों से। उन्होंने **'रूपाभ'** नामक मासिक पत्र भी निकाला था, जिसमें यथार्थवाद का समर्थन किया गया था और कल्पना लोक से मुक्ति पाने का सुझाव दिया गया था। महाकवि निराला ने 'बेला' और 'नये पत्ते' में इसी विचारधारा की रचनाएँ की हैं। अन्य प्रगतिवादी कवियों में सर्वश्री नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', त्रिलोचन और नागार्जुन प्रमुख हैं। इनमें भी केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन ने ही बाद के रूप में प्रगतिवाद को अपनाया है। यदि प्रगतिवादी युग की कविता पर दृष्टिपात किया जाये तो निम्नलिखित विशेषताएँ दिखायी देती हैं–

1. कविता का जनक्रान्ति के लिए अस्त्र के रूप में प्रयोग करना और किसान-मजदूरों को शोषक स्वार्थी तत्त्वों के विरुद्ध संगठित होने का संदेश देना।
2. निम्न वर्ग की समस्याओं का चित्रण ओर उच्च वर्ग की शोषक नीति का भण्डाफोड़ करना।
3. यथार्थ का चित्रण और कल्पना का बहिष्कार करना।
4. आर्थिक दृष्टि से शोषित मानव को भाग्यवादी होने से बचाने और उसे अपनी शक्ति में विश्वास रखने की प्रेरणा देने के लिए समाज की सड़ी-गली मान्यताओं का विरोध करना और ईश्वर तथा धर्म की व्यर्थता सिद्ध करना।
5. नारी की स्वतन्त्रता और समानता का समर्थन करके से मात्र भोग की वस्तु अथवा दासी न मानकर माँ, भगिनी और सहचारी आदि अनेक रूपों में देखना और श्रद्धा तथा सम्मान की पात्री मानना, वर्ग-संघर्ष में उसे पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली सहयोगिनी समझना।
6. साहित्य का ध्येय जनता को जगाना होने के कारण भाषा का अत्यन्त सरल ओर प्रसाद गुणपूर्ण होना और अलंकरण की प्रवृत्ति से बचना।
7. चलते हुए छन्दों का प्रयोग करना या छन्दों को आवश्यक न पाकर उन्हें त्याग देना।

प्रगतिवादी कविता ने जनता को जगाने का कार्य किया, पर प्रगतिशीलता को मात्र एक साहित्यिक फैशन के रूप में अपनाये जाने से प्रगतिवादी आन्दोलन को धक्का लगा।

### 4.7.1 बोध प्रश्न

(1) प्रगतिवादी आंदोलन कब आरंभ हुआ था?

(2) प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि के नाम बताइए।

## 4.8 प्रयोगवादी काव्यधारा

प्रगतिवाद के आरम्भ में कुछ ही समय बाद व्यक्तिवाद के समर्थकों द्वारा प्रवर्तित एक नया वाद कवियों को लुभाने लग गया। उस वाद का नाम प्रयोगवाद पड़ा। जैसे प्रगतिवाद के विषय में दो मत थे, वैसे ही प्रयोगवाद के विषय में दो मत रहे। एक मत के अनुसार साहित्य में प्रयोग बराबर होते रहे हैं और



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

साहित्य का स्वभाव ही प्रयोग करना है। दूसरे मत के अनुसार जान-बूझकर प्रयोग करने वाले कवि ही प्रयोगवादी हैं। प्रयोगवादियों ने एक ही प्रगतिवाद का विरोध किया तो दूसरी ओर छायावाद का। प्रगतिवाद का तो इसलिए कि उसमें सामाजिकता पर जोर था और छायावाद का इसलिए कि उसमें कल्पना की प्रधानता थी।

प्रयोगवाद का आरम्भ सन् 1943 में अज्ञेयजी द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' से माना जाता है। इसमें अज्ञेय जी के अतिरिक्त सर्वश्री गजानन माधव 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा की कविताओं की संकलन था। इस कवियों में कुछ कवि पुराने प्रगतिवादी थे, तो कुछ अब भी हैं। इस संकलन की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा कि पुरानी साहित्यिक प्रणाली अथवा कलात्मक दृष्टिकोण से वैज्ञानिक युग के मनुष्य के भावों को व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए नई उपमाएँ, नयी उत्प्रेक्षाएँ और नये प्रतीक चाहिए। दूसरी बात थी वैयक्तिकता की। प्रगतिवाद में समाज की हित-चिन्तन थी। प्रयोगवाद ने व्यक्ति के सुख-दुःख को महत्त्व दिया। प्रयोगवाद को हम प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया कह सकते हैं।

प्रयोगवादी कवि अपने को वैज्ञानिक युग की उपज मानता है। उसका कहना है कि उसका युग सन्देह, असिथरता और अनास्था का युग है। उसके युग में प्रत्येक व्यक्ति की समस्या अलग है और उसे जो जीवन में कष्ट झेलना पड़ता है, वह भी दूसरों से अलग ही होता है। अतः हर एक की अनुभूति और अभिव्यक्ति भिन्न होगी और उसमें खंडित व्यक्ति ही झलकेगा। इन सब कारणों से प्रयोगवादी कविता में पुरानी कविता से भिन्नता है। दूसरी बात यह है कि उसमें बौद्धिकता का आग्रह है और रस का तिरस्कार। इसी कारण वह चौंकाती या झकझोरती अधिक है, प्रभावित कम करती है। उसमें ऐसे प्रतीत ओर उपमान अधिक लिए जाते हैं, जो हमारे राग तत्त्व के अंग-संग नहीं बने हैं, और अभी बिल्कुल नये हैं। उनसे हमारा तादात्म नहीं हो पाता। छन्द की दृष्टि से उसमें मुक्त छन्दों का ही प्रयोग अधिक हुआ है। मुक्त छन्द में निराला जी ने लय की उपस्थिति मानी थी पर ये प्रयोगवादी कवि इसे आवश्यक नहीं मानते। मतलब यह है कि वह गद्य के अधिक निकट हैं। भाषा में भी एकरूपता नहीं है। यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति करने के लिए कारण नये कवि सभी प्रकार के शब्दों और मुहावरों को अपनाते हैं। इनकी कविता शिक्षित बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क की उपज होने के बोधगम्य कम होती है। यदि ध्यान से देखा जाये, तो इसकी प्रेरणा विदेशी कवियों से ली गई जान पड़ेगी। इस कविता में व्यंग्य और प्रकृति के खंडचित्र अत्युत्तम है। यह इसका उज्जवल पक्ष है। समग्रतः उसकी विशेषताएँ हैं–

(1) प्रयोगवादी प्रगतिवाद की सामाजिकता के विरोध में व्यक्ति की निजी भावनाओं को व्यक्त करने वाला है।

(2) उसमें हृदय की उपेक्षा और बुद्धि का प्राधान्य है।

(3) मनुष्य की क्षण-क्षण बदलती मनोदशा को यथातथ्य में चित्रित करने का आग्रह होने से उसमें नयापन दिखाई देता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(4) नये-नये एवं अछूते प्रतीकों और उपमानों द्वारा अवचेतन मन की भावनाओं के प्रकाशन के कारण कविता अस्पष्ट रहती है।

(5) छन्द अतुकान्त होते हैं।

(6) भाषा का रूप स्थिर नहीं है।

(7) यह मध्यवर्ग के ऐसे बुद्धिजीवी लोगों की कविता है, जो भारतीय परम्परा से विच्छिन्न होकर अन्तर्राष्ट्रीय रहन-सहन और जीवन-पद्धति के हामी हैं, अतः इसमें भारतीय जनता का सुख-दुःख कम, आधुनिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति की घुटन, अनास्था और सन्देह अधिक अभिव्यक्त होते हैं।

(8) इसमें व्यंग्य और प्रकृति के खंडचित्र बहुत ही सुन्दर हैं।

### 4.8.1 बोध प्रश्न

(1) 'तारसप्तक' किसकी संपादित कृति है?

(2) प्रयोगवाद का आरंभ कब से माना जाता है?

## 4.9 नयी कविता की काव्यधारा

'नयी कविता' नाम ही भ्रामक है, क्योंकि यदि यह 'नयी कविता' है तो दस वर्ष बाद की कविता का नाम क्या होगा? इसलिए यदि नाम का आग्रह हो, तो इसे 'बुद्धिवादी कविता' कहा जा सकता है। कोई और नाम भी दिया जा सकता है। दूसरे, यह प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है, जिसमें सामाजिकता के प्रति लगाव बढ़ रहा है। यह शुभ लक्षण है, लेकिन एक बात निश्चित है कि कविता के हित नये आन्दोलन कवि को पाठक से दूर कर रहे हैं। कविता बुद्धिविलास मात्र बनकर अनबूझ पहेली बन गयी है। अब एक नया काव्यान्दोलन 'विचार कविता' के नाम से प्रारम्भ हुआ है। देखें इस वाद-विवाद का कब अन्त होता है।

प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों में सर्वश्री अज्ञेय, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, कुंवरनारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यन्त कुमार, केदारनाथ सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस वादग्रस्त कविता के अतिरिक्त हिंदी में गीतों की धारा बह रही है। उसे भी नहीं भुलाना चाहिए। सर्वश्री बलवीर सिंह रंग, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, हंसकुमार तिवारी, आरसी प्रसाद सिंह, सम्भुनाथ सिंह, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप 'राही', देवराज 'दिनेश', रामनाथ अवस्थी, सोम ठाकुर आदि अनेक कवि गीत के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग कर रहे हैं। प्रयोगवादियों और नयी कविता के प्रस्तोताओं की तुलना में गीतकार जनसामान्य के अधिक निकट है और उनसे अधिक पढ़े-सुने जाते हैं।

आधुनिक हिंदी कविता में हास्यरस की कविता का भी अपना स्थान है। लोक-मनोरंजन के लिए इसकी उपादेयता है। सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी इस प्रकार की कविता के माध्यम से उभरे



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

हैं। हास्यरस के प्रमुख कवियों में बेढव बनारसी, बेधड़क बनारसी, चोंच, गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, सुरेन्द्र शर्मा, जेमिनी हरियाणवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

### 4.9.1 बोध प्रश्न

(1) नयी कविता के प्रमुख कवि के नाम बताइए।

(2) नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

## 4.10 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार से आधुनिक कविता का विभिन्न चरणों में क्रमबद्ध विकास होता है। इन काव्यधाराओं में निश्चित रेखा खींचना संभव नहीं है कि इनका आरंभ और अंत किस निश्चित समय पर हुआ। फिर भी प्रवृतियाँ अथवा प्रेरकों के आधार पर इनकी पहचान की जा सकती है। आधुनिक काल में हिंदी कविता समयानुसार परिवर्तित-संवर्धित होती रही है। उसमें भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से नए-नए परिवर्तन और विशिष्टताओं का समावेश बढ़ता जा रहा है। आज, यह काव्य इतना विपुल और वैविध्यपूर्ण बन चुका है कि इसका सम्यक् आकलन न तो संभव है और न ही उचित प्रतीत होती है। अनेक वाद-प्रतिवाद के किनारे करते हुए आधुनिक कविता निरंतर अग्रसर हो रही है और निःसंदेह कहा जा सकता है कि नई-नई संभावनाओं से परिपूर्ण होते हुए अग्रसर होती रहेगी।

## 4.11 अभ्यास प्रश्न

(1) आधुनिक काव्यधारा के विकास का सामान्य परिचय दीजिए।

(2) आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृतियों को स्पष्ट कीजिए।

(3) भारतेन्दु युगीन कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(4) प्रगतिवाद का सामान्य परिचय दीजिए।

(5) टिप्पणी लिखें -

(क) द्विवेदी युग

(ख) छायावाद और सुमित्रानंदन पंत

(ग) प्रयोगवाद

(घ) नयी कविता



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 4.12 संदर्भ–ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेन्द्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-II

# भक्तिकालीन हिंदी कविता

## 1. कबीर

**लेखक**–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
रीडर
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

1.1 अधिगम का उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 साहित्यिक परिचय
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 प्रतिपाद्य
1.5 व्याख्या
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ–ग्रंथ

## 1.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के उपरान्त आप–

- भक्तिकाल में कबीर की भक्ति के स्वरूप के विषय में जान सकेंगे।
- कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।
- कबीर के सामाजिक योगदान के विषय में जान सकेंगे।
- कबीर की साखियों का अर्थ जानेंगे।
- कबीर द्वारा दी गई शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे।

## 1.2 प्रस्तावना

कबीर भक्तिकालीन संत काव्यधारा के आधार स्तभ हैं। वे ऐसे युग में उत्पन्न हुए जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टियों से न केवल अव्यवस्थित था बल्कि अनेकानेक विकृतियों, अन्तर्विरोधों, अंधविश्वासों, विडंबनाओं आदि से ग्रस्त था। ऐसे समय में भारतीय जनता की अन्तर्निहित शक्ति और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न कबीर का प्रादुर्भाव अंधकार के जन्मजात शत्रु सूर्य की तरह हुआ। अपने स्वानुभव,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सहज प्रतिभा एवं जन-चेतना के सहयोग से उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ कह डालीं जिनमें से अधिकांश आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं जितनी मध्यकाल में रही होंगी। उन्होंने उपासना का ऐसा मार्ग चलाया जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के आडंबर एवं अंधविश्वासपूर्ण, तर्कहीन मान्यताओं का खंडन करता था और उन्हें प्रेम और साधना के सीधे-सच्चे मार्ग पर ले जाना चाहता था। अपने भावों, विचारों एवं सिद्धांतों के प्रचार के लिए कबीर ने जनता की ही सरल, सुबोध, व्यंजक भाषा को अपना माध्यम बनाया, उनका काव्य आज भी विचारोत्तेजक एवं प्रेरणादायक है।

## 1.3 साहित्यिक-परिचय

कबीरदास के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ तथा जीवन की घटनाएँ अनिश्चित हैं। कबीरपन्थियों तथा जनसाधारण ने कबीर के जीवन के साथ कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण, चमत्कारमयी तथा अलौकिक घटनाएँ जोड़ दी हैं, जिनकी सत्यता का पता लगाना कठिन है। कबीर-पंथ के ग्रन्थों तथा अन्य इतिहासकारों के अनुसार कबीर का जन्म सं. 1455 (ई० स० 1398) और निधन सं० 1551 (ई० स० 1494) में हुआ। उनका जन्म-स्थान काशी और मृत्यु-स्थान मगहर कहा जाता है। उनकी जाति और माता-पिता के विषय में भी विविध जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर अपने को 'जाति जुलाहा नाम कबीरा' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि कबीर के माता-पिता जुलाहा जाति के थे और यह जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, पर नाथपंथी योगियों के संस्कार इस जाति में अभी तक बने हुए थे।

कहा जाता है कि कबीर गुरु रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए थे। उसने लोक-लाज के कारण उन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया। वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिले। उन्होंने उनका पालन-पोषण किया। परन्तु कबीरदास की रचनाओं और परवर्ती इतिहासकारों के अनुसार यह बात निराधार सिद्ध हो जाती है। अन्य प्रामांणिक मत के अभाव में नीरू और नीमा ही पालन-पोषण करने वाले माता-पिता माने जाते हैं। कबीरदास ने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, वरन् साधु-संगति और अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया था। तभी तो वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहते हैं– 'मैं कहता आँखनि की देखी, तू कहता कागद की लेखी' तथा 'मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहीं हाथ'। नियमित रूप से शिक्षा न मिलने पर भी कबीरदास ने सत्संग से ज्ञानार्जन किया था। गुरु रामानन्द की कृपा से सब ज्ञान उनके लिए सुलभ हो गया था। कबीर दास ने सम्भवतः अत्यधिक श्रद्धा और आदर के कारण अपने गुरु का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु विद्वानों की धारणा है कि रामानन्द उनके गुरु थे। डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वान् इस सम्भावना का समर्थन करते हैं। इस बारे में एक दोहा बहुत प्रचलित है–

भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
कबीरदास परगट किया, सप्त दीप नव खण्ड।।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कबीर के परिवार के विषय में भी मतभेद है। अनुमान किया जाता है कि उनका लोई नामक स्त्री से विवाह हुआ था, जिससे कमाल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। 'बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल' कथन अभी तक प्रचलित है।

कबीरदास का व्यवसाय कपड़ा बुनना था। परन्तु अपने व्यवसाय के प्रति रूचि न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। कबीरदास ने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं की, वरन् 'यथा-लाभ-संतोष' की वृत्ति से अन्त समय तक अपना कार्य करते हुए वह एक सादा जीवन व्यतीत करते रहे।

अन्य महात्माओं की तरह कबीर के विषय में भी कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है।

मध्यकालीन निर्गुण सन्तों में कबीर का अन्यतम स्थान है। निर्भिकता और सत्यवादिता कबीर के चरित्र के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं। कबीर की साखियों को पढ़कर आप भी यह स्वीकार करेंगे कि आरम्भ से अन्त तक वह क्रांतिकारी रहे। क्रमिक सुधार और क्रमिक परिवर्तन का मार्ग उन्हें प्रिय था। कुरीतियों और कुसंस्कारों के प्रति लेशमात्र भी पक्षपात उन्हें असह्य था। सत्य के इस जिज्ञासु को मोह ओर ममता अपने पथ से विचलित नहीं कर पायी। सत्य की इस खोज मे वह अपना सब कुछ जलाकर निकल पड़े थे और ऐसा ही साथी चाहते थे जिसे 'स्व' की चिंता न हो–

'हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा।
अब घर जारौं तासका, जो चले हमारे साथ।।

कबीरदास में एक प्रकार की अक्खड़ता मिलती है। यह अक्खड़ता उन्हे योगियों से उत्तराधिकार में मिली थी।

कबीर में अखंड आत्मनिष्ठा, दृढ़ता और लापरवाही मिलती है। उन्होंने साधना को एक रणस्थली के समान कठिन और विकट माना है, इसी कारण भक्त की उपमा उन्होंने पतिव्रता और शूर से दी है। महत्ब्रह्म की साधना में आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में प्रवेश की पहली शर्त है। कबीर की दृष्टि में साधना एवं भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक है किंतु प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है–

'कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।'
'सीस उतारै भुइं धरै सो पैठे घर माहिं।।'

कबीर एक युग-प्रवर्तक सन्त थे। उनकी कथनी और करनी-वाणी ओर कर्म में साम्य था। वह जो कुछ कहते थे, उनके मूल में उनका अनुभव और आत्म-विश्वास था। उनमें अपने सिद्धान्तों और सत्य के प्रति पूरी ईमानदारी थी, इसी कारण उनकी उक्तियाँ इतनी चुभने वाली हैं मानव मात्र को समान समझने वाले कबीरदास ऊँच-नीच के भेद, ब्राह्याचार तथा झूठे दिखावे को सह नहीं सके। ऐसे पाखंडियों का



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

खण्डन उन्होंने कटु व्यंग्य के साथ किया है। पण्डित और मुल्ला, शेख और साधु किसी के साथ उन्होंने पक्षपात नहीं किया।

सारग्राही कबीरदास के इस विलक्षण स्वभाव के विषय में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन ध्यान देने योग्य है–''कबीर युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसीलिए वह युग-प्रवर्तन कर सके थे।'' कबीर सिर से पैर तक मस्त-मौला थे– बेपरवाह, दृढ़, उग्र कुसुम से भी कोमल, वज्र से भी कठोर वास्तव में कबीरदास एक निर्गुण सन्त थे। उनके व्यक्तित्व में समाज सुधारक, धार्मिक नेता, भक्त सभी का समन्वय है।

कबीरदास ने पोथियाँ नहीं पढ़ी थीं पुस्तकों के ज्ञान को वह व्यर्थ का भार मानते थे। ऐसा कोई प्रमाण नहीं, कि उन्होंने कोई ग्रंथ लिखा। उनके शिष्यों ने उनकी वाणियों का संग्रह किया था। उनकी रचनाएँ फुटकर शब्दों साखियों, रमैणियों व पदों के संग्रह के रूप में मिलती हैं। गेय होने के कारण उनकी रचनाओं के रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहा है। अन्य व्यक्तियों द्वारा उनके अनुकरण में वैसी ही रचनाएँ लिखने के कारण अनेक रचना-संग्रहों में ऐसी रचनाओं का भी समावेश हो गया है, जो उनकी नहीं है और जिन्हें पृथक करना कठिन है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदास के शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' के रूप में उनकी रचनाओं का संग्रह किया, किन्तु इनकी भाषा के आधार पर इसे पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जाता। कबीर द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 60 के ऊपर मानी गई है, परन्तु इनमें से अधिकांश संदिग्ध है। कबीर के नाम से प्रचलित पदों की मौखिक परंपराओं में निम्नलिखित तीन अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक हैं–

**राजथानी परम्परा** – इस परम्परा में दादू पंथी, निरंजनी आदि शाखाएँ आती हैं। आचार्य श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' का संबंध इसी परम्परा से है।

**श्री गुरु ग्रंथ साहिब की परम्परा**–सिक्खों के 'आदि ग्रन्थ' में संग्रहित कबीर के पद इसमें आते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'सन्त कबीर' में ये प्रकाशित हुए हैं।

**बीजक की परंपरा** – कबीर पंथियों की इस परमपरा में 'बीजक' अत्यन्त मान्य और 'परम पूज्य धर्मग्रन्थ' है। कबीर ने सब मिलाकर कितना कहा, यह कहना कठिन है। कबीर-पथ वालों के अनुसार कबीर ने छः लाख चौरासी हजार शब्दों की रचना की। डॉ. पारसनाथ तिवारी के अनुसार 744 साखियाँ, 200 पद और 21 रमैणियाँ कबीर की हैं इस पर विद्वानों में मतभेद है। रचना के परिमाण के विषय में विवाद भले ही हो, परन्तु उनके महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है।

**साखी, पद और रमैणी**

'साखी' शब्द 'साक्षी' का अपभ्रंश रूप है। इस रूप में यह शब्द उस ज्ञान, उस अनुभूति का द्योतक है, जिसे कवि ने अपनी बुद्धि से नहीं, वरण अपने अंतःकरण से साक्षात्कृत किया है। साखी में प्रतिभा : प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति विद्यमान है। ये साखियाँ उस ज्ञान की 'साक्षी' भी है और उसका साक्षात्कार करानेवाली भी हैं। 'साखी' शब्द में 'शिक्षा' या 'सीख' अर्थात् उपदेश का अर्थ भी निहित है। कबीर ने



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

साखियों की रचना भवसागर में डूबते लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान का साक्षात्कार कराने के लिए ही की थी, जैसा कि उनकी इन पंक्तियों से स्पष्ट है–

हरि जी यहै विचारिया, साखी कहौ कबीर।
भौ सागर में जीव है, जो कोई पकड़ै तीर।।

साखियों में नैतिक उपदेश का भी समावेश मिलता है। छंद की दृष्टि से 'साखी' दोहा के निकट है। अधिकांश साखी सामान्यतः दोहा छंद में ही रचित है। कबीर ने अपनी साखियों में गुरु का महत्त्व, सुमिरण-मनन की अवस्था, जीवात्मा का विरह, संसार की नश्वरता के प्रति चेतावनी, ईश्वर तत्त्व की प्राप्ति में माया की बाधकता, सहज समाधि, साधु-संगति, कुसंगति, गुरु का शब्दोपदेश (सबद), निन्दा, पतिव्रता नारी आदि विषयों को लिया है।

कबीर ने पदों की रचना भी की है, जिनकी संख्या 21 है। ये रमैणियाँ, एक पदी, दो पदी, चौपादी, सप्तपदी, अष्टपदी और बारहपदी है। इनमें धार्मिक ब्राह्यचारों और आचारिक असंगतियों पर तीखे कटाक्ष किये गये हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कबीरदास सरल हृदय भक्त थे। उन्होंने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य-रचना की। इसी कारण पिंगल (छंद शास्त्र) आदि काव्य के बाह्य उपकरणों की उपेक्षा हुई। भावों एवं विचारों की मार्मिक अभिव्यंजना के कारण उनका काव्य प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक बन पड़ा है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में ''यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार शास्त्र के आधार पर कविता नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं। कविता में छंद और अलंकार गौण है, संदेश प्रधान है। कबीर ने अपनी कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश के प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यम है।''

कबीर के काव्य का विचार पक्ष अत्यंत पुष्ट है। उनके काव्य का मेरुदण्ड (आधार) उनका बुद्धितत्त्व या चिंतन है। उनके काव्य में विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सफलता से हुई है। उनके पदों में भाव-व्यंजना की गहराई विद्यमान है। विशेषकर विरह-पीड़ा के पदों में भावों की तीव्रता और अनुभूति की सघनता अद्वितीय है। कबीर को कुशल कलाकार नहीं कहा जा सकता, उन्होंने इसकी अपेक्षा भी नहीं की। उन्हें मानवता को महान संदेश देना था। वह संदेश जनता तक पहुँचाने की पूरी शक्ति उनके काव्य में है। कबीर के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के अनुरूप शब्द-शक्तियाँ, अलंकार, गुण, छंद आदि मिलते हैं। उन्होंने अपने कथन को सुग्राह्य बनाने के लिए लोक-जीवन, विशेषकर कृषक और जुलाहे के जीवन के प्रतीकात्मक शब्द ग्रहण किये।

कबीर की कुछ साखियों और पदों में शांतरस है। उलटबाँसियों में अद्भुत रस है। शेष पदों में भक्ति-विषयक शृंगार रस प्रधान है। उनका शृंगार प्रभाव-तीव्रता रखते हुए भी आध्यात्मिक है। उपदेश संबंधी कथन के लिए कबीर ने साखी का व्यवहार किया है। गूढ़ अनुभूति के प्रकाशन के लिए पद और



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रमैणी का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म संबंधी अपनी अनुभूति के प्रकाशन के लिए कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग किया है। इन उलटबाँसियों में प्रकृति विरुद्ध सत्यों का कथन कर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

काव्य को प्रभावशाली बनाने वाले कुछ अलंकार भी कबीर के काव्य में अनायास आ गये हैं। उनके काव्य में सांग-रूपक का प्रयोग अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, उपमा, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार भी मिलते हैं। ये अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने के लिए चेष्टापूर्वक नहीं लाये गये हैं बल्कि वाणी के सहज प्रवाह में अपने आप आ गये हैं।

कबीरदास ने काव्य -रचना पांडित्य-प्रदर्शन की भावना से नहीं की, अपितु जन-सामान्य की भाषा में जन-साधारण तक अपने विचारों को पहुँचाने की दृष्टि से की। अपने सिद्धांतों के प्रचार और सत्संग के लिए कबीर विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे, अतः उनकी भाषा में भोजपुरी, ब्रज, अवधी, खड़ी-बोली, राजस्थानी आदि का मिश्रित रूप मिलता है। इसीलिए उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा जाता है।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-उन्होंने स्वयं कहा है–'विद्या न पढ़ौं बाद हिं जानौं।' परन्तु उनके काव्य में सत्यनिष्ठा का तेज, दृढ़ विश्वास का बल और सरल-हृदयता का सौंदर्य विद्यमान है।

कबीर शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी यह मान्यता भी थी कि वेद, शास्त्र, कुरान आदि परम्परागत धार्मिक ग्रन्थ, व्यर्थ और त्याज्य हैं। अतः सारसंग्रही दृष्टि से विभिन्न मतों ओर सम्प्रदायों में से मूल बातों को लेकर कबीरदास ने अपनी मौलिक प्रतिभा से सन्त मत को शक्ति-सम्पन्न बनाया। उपनिषदों के अद्वैतवाद, सूफी सन्तों की प्रेममयी रहस्य-भावना, वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद (शरण-अनुग्रह पाने की कामना), इस्लाम के एकेश्वरवाद, सिद्ध ओर नाथ साधकों की विचारधारा-सभी धार्मिक मतों के तत्त्व कबीर की रचनाओं में मिलते हैं।

### (क) धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा

कबीर भक्त और कवि होने के अतिरिक्त समाज सुधारक भी थे। समाज की कमजोरी, उसकी विषमता को कबीरदास ने पहचाना और अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उसे दूर करने का प्रयास किया। समाज के अन्तर्गत किसी प्रकार की जातिगत भेदभाव कबीर को मान्य न था। समाज में प्रचलित रूढ़ियों और मिथ्याडम्बरों की उन्होंने कटु आलोचना की। उस समय का धर्म बाह्याचारों और कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था। उन्होंने धर्म के बाहरी विधि-विधान (जप, माला, छापा, हज, तिलक, रोजा, नमाज आदि) का विरोध किया। व्यक्तिगत पवित्रता और आचरण को महत्त्व देते हुए भी कबीर की साधना-पद्धति समाज की उपेक्षा नहीं करती। उन्होंने समाज से दूर हटकर जप-तप को प्रशंसनीय नहीं माना। प्रवृत्ति (लगाव) और निवृत्ति (वैराग्य) दोनों का मध्य मार्ग ही उन्होंने चुना।

आज के समाज को देखते हुए आप मध्यकालीन समाज की कल्पना करें कि किस प्रकार तत्कालीन समाज में हिन्दू ओर मुसलमान दोनों ही बाहरी आचारों में विश्वास नहीं रखते थे। हिन्दू माला, तिलक,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

तीर्थ-स्थान आदि के पक्षपाती नहीं थे, तो मुसलमान रोजा, नमाज और अजान के। कबीर ने पूरी दृढ़ता के साथ कटु-व्यंग्य करते हुए दोनों को सचेत करने ओर सत्य का ज्ञान कराने का प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों-मूर्ति-पूजा, छुआ-छूत, तीर्थस्थान तथा हज्ज, अजान आदि का घोर विरोध किया, क्योंकि कबीर का यह दृढ़ मत था कि ये धर्म की ऊपरी बातें हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाने वाली हैं।

प्राणिमात्र की एकता और समता का संदेश सुनाने वाले कबीर ने अहिंसा को आदर्श बताया। बाह्यडम्बरों को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकारों के दमन को व्यक्तिगत आचरण और शुद्धता का आधार बताया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एकता और बन्धुत्व का सन्देश देकर सांस्कृतिक एकता-स्थापन का प्रयत्न किया।

### (ख) दार्शनिक विचारधारा

कबीरदास मूलतः भक्त थे, दार्शनिक नहीं। ब्रह्म, जीव, माया सम्बन्धी उनके सिद्धान्तों को दार्शनिक माना जा सकता है। कबीर ने ब्रह्म को सर्वशक्तिमान माना। यह ब्रह्म रूप-रेखा, आकार, भाव-अभाव से परे है। उसे कबीरदास ने द्वैत (ब्रह्म-माया) और अद्वैत (केवल ब्रह्म) दोनों से विलक्षण माना। इसे केवल अनुभव और साधना से ही जाना और पाया जा सकता है। यही ब्रह्म कबीर का उपास्य है, जिसे उन्होंने 'राम' नाम से पुकारा है। परन्तु उनके राम दशरथ-सुत न होकर निर्गुण और निराकार है। उन्होंने स्पष्ट कहा है–

''दशरथ सुत तिहं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।''

सामान्यतः कबीर ने ब्रह्म और जीव का अद्वैत (एकत्व) माना है। जीव ब्रह्म का ही अंश है और उसी में लीन हो जाता है। उसके इस मिलन में माया का बाहरी आवरण ही बाधक है। जीव और ब्रह्म एक हैं पर माया के कारण जीव सत्य को जान नहीं पाता। सदगुरु उसे मार्ग दिखाता है। इसी कारण कबीर-मत में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। गोविन्द (ब्रह्म) से मिलन में सहायक होने के कारण गुरु गोविन्द से भी अधिक आदर का पात्र माना गया है–

''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियौ मिलाय।

कबीर के अनुसार यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है, जीव इसका अभिन्न अंश है, परन्तु भक्त उपासना-भक्ति के लिए ब्रह्म को द्वैत रूप में अर्थात् अपने से भिन्न मानकर उससे विविध सम्बन्ध स्थापित करता है। कबीर अपने उपास्य को सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली मानकर कभी उसे 'स्वामी या साहेब' मानते हैं और कभी उसकी स्नेहशीलता, वात्सल्य -भावना को दृष्टि में रखकर माता के रूप में सम्बोधित करते हैं, यथा–

'हरि जननी मैं बालक तोरा।'



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कबीर ब्रह्म को कभी पिता के रूप में देखते हैं कभी पति के रूप में। उनके काव्य में अनेक स्थलों पर ब्रह्म प्रियतम रूप में उपस्थित है। कबीर अपने को पत्नी मानते हैं, ब्रह्म को पति। इस तरह की दाम्पत्य-भाव की भक्ति कबीर की साधना की विशेषता है। कबीर की इस प्रेम–भावना पर सूफियों का प्रभाव है–परन्तु कबीरदास फारसी परमपरा के अनुसार ब्रह्म को 'माशूका' या प्रियतमा न मानकर भारतीय परम्परा के अनुसार पति या प्रेमी मानते हैं–

'राम मेरे पीव मैं राम की बहुरिया।'

**(ग) कबीर का रहस्यवाद**

जीव को ब्रह्म में लीन हो जाने की चरम इच्छा होती है। उसका सम्पूर्ण जीवनकाल नैहर–निवास या विरह काल है। इसी कारण कबीर के काव्य में विरह-वेदना की आकुलता मिलती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा ब्रह्म में मिल जाती है। यह कबीर आदि सन्तों की पारिभाषिक पदावली में 'आध्यात्मिक विवाह' है। ब्रह्म के संबंध का चिन्तन, उसकी प्रेम-भक्ति की रहस्यवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर के रहस्यवाद में चिंतन (अद्वैतवाद), साधना (हठयोग, योगाभ्यास) तथा भावना (प्रेम-भक्ति) का समन्वय है। उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि में ब्रह्म समाया हुआ है। ब्रह्म से रहित कोई भी पदार्थ नहीं है। कवि जब ब्रह्म के प्रकाश को देखने निकलता है, उसे सर्वत्र ही ब्रह्म वेग प्रकाश दीखता है–

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'

कबीर के अनुसार ब्रह्म अविनाशी है, जीव उसी का अंश है। माया आकर्षक रूप बनाकर ब्रह्म और जीव के मिलन में बाधक होती है, अतः माया त्याज्य है। यह दिखाइ ंपड़ने वाला संसार नश्वर है। ब्रह्मा की भक्ति और सत्कर्म ही जीव का उद्धार कर सकते हैं।

कबीर सहज चिंतक, भावुक भक्त, कवि और संत होने के साथ ही बिखरे समाज को संगठित करने वाले लोकनायक भी हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा, तेजस्वित और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने कुसंस्कारों के जंजाल को दूर कर समाज के सुधार और पुनर्निर्माण की चेष्टा की। तत्कालीन युग विशृंखलता और अव्यवस्था का युग था। हर्ष की मृत्यु के बाद भारतीय समाज का पतन आरम्भ हुआ और कबीर के समय तक राजनीतिक पराभव, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक विशृंखलता बहुत अधिक बढ़ चुकी थी।

कबीरदास युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने देखा कि भेद-नीति तथा बाह्याचारों की अधिकता हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। दोनों एक ईश्वर के उपासक हैं, अन्तर इतना ही है कि हिन्दू ईश्वर को राम और मुसलमान उसे रहीम कहते हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही दोनों लड़ते हैं। कबीर ने सभी को एक ही ईश्वर की सन्तान बताया और उनके अंधविश्वास को दूर किया– 'कोई हिन्दू, कोई तुरुक–कहावै, एक जमीं पर रहिए।' हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश सबसे पहले कबीर ने ही दिया।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कबीर ने बाह्याचारों एवं विधि विधानों की जटिलता से रहित उपासना के उस सरल मार्ग का प्रवर्तन किया, जिस पर चलने के लिए किसी विशेष जाति या वर्ग का सदस्य होना आवश्यक नहीं। हृदय में भक्ति-भावना और आचरण की शुद्धता रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता है।

कबीर से पहले भी युगदर्शी महात्मा हुए थे; परन्तु उनमें से किसी में पूरी तीव्रता के साथ जाति-पाँति तथा बाह्याचारों का खंडन कर समाज के मार्ग-प्रदर्शन का साहस नहीं था। कबीर के इसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को दृष्टि में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है– 'हिन्दी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में वह व्यक्तित्व एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है– तुलसीदास।'

कबीर-साहित्य में सर्व-धर्म समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं। उनमें अपने सिद्धान्तों के प्रति अविचल निष्ठा और दृढ़ता थी। वे उन व्यक्तियों में से एक थे, जो कठिन परिस्थितियों से न तो टूटते हैं और न उनके सामने झुकते हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीर के काव्य में समाज-सुधार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, सर्व-धर्म-समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं, परन्तु वे मूलतः भक्त थे। इसी कारण कबीर ने अपने उपदेशों को किसी पर जबरदस्ती लादने का प्रयास नहीं किया। कबीर के काव्य ने तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था को दूर किया, धर्मांध शासकों के मद का शमन किया तथा मानवमात्र को समता का महान् संदेश दिया। यह संभव है कि काव्यमयता ढूँढ़ने वाले कतिपय समीक्षकों को कबीर के काव्य में उच्चकोटि की साहित्यिकता न मिले परन्तु हृदय से निकली उनकी उक्तियों में असाधारण शक्ति और प्रभाव है।

### 1.3.1 बोध प्रश्न

1. कबीर का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. कबीर ने अपनी जाति कौन सी बताई है?
3. कबीर ने पाखंडियों का खंडन किस प्रकार किया है?
4. कबीर की रचनाओं का संग्रह कौन सा है?
5. कबीर ने कितने पदों की रचना की थी?
6. कबीर भक्त है कवि?
7. कबीर की कविता के मूल वर्ण्य विषय क्या है?

## 1.4 गुरुदैव कौ अंग प्रतिपाद्य

कबीर ग्रंथावली में **'गुरुदैव कौ अंग'** में गुरु की महत्ता से जुड़ी साखियाँ हैं। इन साखियों के द्वारा कबीरदास बाते हैं कि शिष्य, गुरु एवं उसके द्वारा दिये गये सच्चे ज्ञान द्वारा ही ब्रह्म को पा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को सच्चा गुरु नहीं मिलता तो उसकी बहुत हानि होती है



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

क्योंकि गुरु ही सच्चे ज्ञान को हासिल करने का मार्ग दिखा सकते हैं, वह ईश्वर के दर्शन करा सकते हैं। सांसारिक माया शिष्य को पतंगे की भाँति आकर्षित करती है। जिस प्रकार दीपक की लौ पतंगे को आकर्षित करती है और अन्ततः उसे नष्ट कर देती है। व्यर्थ के पाखंड और आडंबरों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होने वाली बल्कि गुरु सच्चा ज्ञान ही ईश्वर की प्राप्ति का रास्ता है। सतगुरु सच्चे ज्ञान का रास्ता अपने शिष्य को बताते हैं क्योंकि जब तक सच्चे गुरु नहीं मिलते तब तक जीवात्मा भ्रम का शिकार रहती है और यदि एक बार धैर्यपूर्वक साधक ने सतगुरु से ज्ञान का उपदेश ले लिया तो उसे जीवन से मुक्ति का रास्ता मिल जाता है।

## 1.5 व्याख्या

**दोहा–** **भली भई जु गुर मिला, नहीं तर होती हांणि।**
**दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि।।19।।**

**संदर्भ एवं प्रसंग–**उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित **'गुरुदैव कौ अंग'** से ली गई है। इस साखी में सतगुरु के मिलने पर प्राप्त होने वाले सच्चे ज्ञान के विषय में बताया गया है।

**व्याख्या–**कबीरदास कहते हैं कि अच्छा हुआ जो मुझे सत्य का मार्ग दिखाने वाले गुरु मिल गए। यदि सतगुरु नहीं मिले होते तो मेरी बहुत ज्यादा हानि हो जाती। जैसे दीपक के प्रकाश की तरफ कीट पतंगे आकर्षित होते हैं और अंततः उसी में जलकर अपना जीवन नष्ट कर लेते हैं, उसी प्रकार मैं भी गुरु के न मिलने पर संसार के मोह और वासना में ही उलझा रहता, भक्ति के मार्ग पर नहीं चल पाता अर्थात् सतगुरु के द्वारा यदि ज्ञान नहीं दिया जाता तो सांसारिक कार्यों में ही उलझ कर रह जाता।

**विशेष–**
1. गुरु की महत्ता का वर्णन किया गया है।
2. सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है। 13 और 11 के विश्राम से 24 मात्राओं का प्रयोग।
5. राजस्थानी, पंजाबी भाषा का प्रयोग भी किया जाता है।

**दोहा– माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।**
**कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत।।20।।**

**संदर्भ एवं प्रसंग–** उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित **'गुरुदैव कौ अंग'** से ली गई है। इस साखी में कबीरदास कहते हैं कि माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई बिरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

**व्याख्या–** कबीरदास जी माया को उस पतंगे की भाँति बताते हैं जो दीपक के चारो तरफ चक्कर लगाता रहता है। और संदेहवश दीपक की अग्नि में जलकर स्वयं का जीवन नष्ट कर लेता है। कबीर



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कहना चाहते हैं कि गुरु की शिक्षाओं पर चलने वाला व्यक्ति ही इस माया को समझ सकता है, अन्यथा वह भ्रम का शिकार होकर स्वयं के जीवन को समाप्त कर लेता है। मोह–माया की इस अग्नि से कुछ लोग ही बच कर निकल पाते हैं। जो गुरु की शरण में जाते हैं।

**विशेष**– 1. गुरु की महत्ता का वर्णन किया गया है।
2. मिली–जुली भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है।

**दोहा–** **सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही मांहै चूक।**
**भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं बँसि बजाई फूक।।21।।**

**संदर्भ एवं प्रसंग**–उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित **'गुरुदैव कौ अंग'** से ली गई है। इस साखी में कबीरदास जी शिष्य की योग्यता की आवश्यकता के विषय में बताते हैं।

**व्याख्या**–कबीरदास कहते हैं कि केवल सतगुरु मिल जाने से ही ज्ञान प्राप्त नहीं होता। हमें सतगुरु के बताए गए रास्ते पर चलना भी चाहिए। ऐसा नहीं है कि सिर्फ गुरु मिलने भर से ही शिष्य का कल्याण हो जाएगा। शिष्य में ही यदि कमी होगी तो गुरु बेचारा कुछ नहीं कर पाएगा। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार बाँसुरी में फूँक मारकर संगीत पैदा किया जा सकता है लेकिन उस संगीत को केवल ज्ञानी व्यक्ति ही बजा सकता है। बाँसुरी के होने मात्र से संगीत पैदा नहीं किया जा सकता।

**विशेष**– 1. गुरु की महत्ता का वर्णन किया गया है।
2. मिली–जुली भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है।
5. राजस्थानी व पंजाबी भाषा का प्रयोग

**दोहा** – **संसै खाया सकल जुग, संसा किनहूँ न खद्ध।**
**जे बेधे गुरु अपिषरा, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।।**

**संदर्भ एवं प्रसंग**– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित **'गुरुदैव कौ अंग'** से ली गई है। इस साखी में कबीर कहते हैं कि संशय/भ्रम ने जगत को नष्ट किया, लेकिन संशय को कोई नष्ट नहीं कर पाया।

**व्याख्या**– कबीरदास अपनी इस साखी में कहते हैं कि गुरु के ज्ञान के न होने पर जीवात्मा भ्रम (संदेह) का शिकार होकर रह जाती है। सांसारिक रीति–रिवाज, कर्मकांड, अंधविश्वास में उलझ कर ही व्यक्ति रह जाता है। यदि ज्ञान प्राप्त हो जाए और सच्चे हृदय से हरि का सुमिरन कर लिया जाए तो इस संसार रूपी भ्रम से मुक्ति मिल सकती है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**विशेष**– 1. गुरु की महत्ता का वर्णन किया गया है।
2. मिली–जुली भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।
5. राजस्थानी व पंजाबी भाषा का प्रयोग किया गया है।

**दोहा–** **चेतनि चौकि बैसि करि, सतगुरु दीन्हां धीर।**
**निरभै होइ निसंग भजि, केवल कहै कबीर।।23।।**

**संदर्भ एवं प्रसंग**– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित **'गुरुदैव कौ अंग'** से ली गई है। इस साखी में कबीरदास कहते हैं कि गुरु ही ईश्वर को पाने का मार्ग शिष्य को दिखाते हैं।

**व्याख्या–** कबीरदास जी कहते हैं कि सद्गुरु ने ज्ञान की मुद्रा में बैठकर साधक को धैर्य बंधाया है, गुरु ने साधक को राह दिखाई कि निर्भय होकर ईश्वर का सुमिरन करो, हरि भजन करो अर्थात् साधक को सांसारिक कष्टों से मुक्ति का रास्ता सतगुरु ने ही बहुत आसानी से दिखा दिया है।

**विशेष**– 1. कबीर के अनुसार गुरु सर्वोपरि है।
2. पंचमेली भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है। 13 और 11 के विश्राम से 24 मात्राओं का प्रयोग।
5. राजस्थानी व पंजाबी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त।

## 1.6 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर की भाषा पर विचार कीजिए।
2. कबीर की सामाजिकता को समझाइए।
3. कबीर की भक्ति पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
4. कबीर की दर्शनिकता को समझाइए।
5. कबीर की कविता के वर्ण्य विषयों पर प्रकाश डालिए।

## 1.7 संदर्भ–ग्रंथ

1. कबीर–श्याम सुन्दर दास।
2. कबीर–हजारी प्रसाद द्विवेदी।
3. भक्ति आंदोलन के सामाजिक–गोपेश्वर सिंह।
4. कबीर–विजयेन्द्र स्नातक।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# भक्तिकालीन हिंदी कविता

## 2. सूरदास

**लेखिका**–प्रो. भवानी दास
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

2.1 उद्गम का उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 कवि का साहित्यिक परिचय
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 प्रतिपाद्य
2.5 व्याख्या
2.6 अभ्यास–प्रश्न
2.7 संदर्भ–ग्रंथ

## 2.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के उपरांत आप–

- भक्तिकाल की सगुण काव्य धारा के विषय में जानेंगे।
- भक्तिकालीन कवि सूरदास के विषय में जानकारी प्राप्त होगी।
- कृष्ण भक्ति एवं वात्सल्य भक्ति के विषय में समझ पाएँगे।
- कृष्ण भक्ति में गोकुल की लीला के विषय में जानेंगे।

## 2.2 प्रस्तावना

सूरदास भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा वेफ प्रतिनिधि कवि हैं। कृष्ण भक्ति शाखा की शुरुआत इनके द्वारा ही की गई। कृष्ण भक्ति में वात्सल्य, दाम्पत्य, श्रृंगार आदि प्रवृत्तियों का उद्घाटन सूर साहित्य में देखने को मिलता है। सूरदास ने बाल–लीलाओं में कृष्ण वेफ लौकिक स्वरूप का विकास करके लोकोन्मुखी काव्य–धारा का निर्माण किया।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.3 कवि का साहित्यिक–परिचय

सूरदास का जन्म सन् 1478 ई. में दिल्ली–मथुरा रोड़ पर स्थित सीही नाम ग्राम के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। 18 वर्ष की आयु में इन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और ये मथुरा–आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। यहाँ वे लगभग 12 वर्ष तक रहे। इस बीच इनकी प्रसिद्धि फैल गई थी तथा अनेक व्यक्ति इनके शिष्य सेवक बन गये। गऊघाट पर रहते हुए इनकी भेंट पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य से हुई। उनकी वात्सल्य तथा सख्य–भाव की भक्ति–भावना से सूरदास इतने प्रभावित हुए कि पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गए। इसवेफ बाद सूरदास गऊघाट छोड़कर गोवर्द्धन आकर रहने लगे। गोवर्द्धन में प्रायः श्री नाथजी के मन्दिर में और कभी–कभी गोकुल में श्री नवनीत प्रियाजू के समक्ष पद बनाकर कीर्तन करते थे। उनका शेष समस्त जीवन भगवान की सेवा में व्यतीत हुआ। उनकी मृत्यु 1533 ई. के लगभग श्रीकृष्ण की रासभूमि पारसोली में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी। इसका आँखों देखा–सा वर्णन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दिया गया है। एक दिन पूजन–कीर्तन के समय जब गोसाईं जी ने मणि–कोठा में सूरदास को कीर्तन करते सुना तो पूछताछ की। गोसाईं जी समझ गए कि आज सूरदास जी नश्वर शरीर छोड़कर नित्य शाश्वत वृन्दावन धाम (स्वर्ग) जा रहे हैं। पूजा पूर्ण करके वे शिष्य सेवकों सहित सूर के निवास–स्थान पर आये और आते ही पूछा कि तुम्हारे नेत्र की वृत्ति कहाँ है तो सूर ने यह पद गाया–

**खंजन नैन रूप रस माते**

**अतिशय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।...**

इस पद की समाप्ति के साथ ही सूर ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

सूरदास जन्मांध होकर भी रूप को देखने की अद्भुत शक्ति रखते थे। भगवान के स्वरूप का जैसा श्रृंगार हो रहा होता था वैसा ही वर्णन कर देते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्रों ने सूर की परीक्षा लेने हेतु भगवान का श्रृंगार करते समय उन्हें वस्त्राहीन ही रहने दिया, केवल मोतियों की माला पहना दी। मन्दिर–द्वार खुलते ही सूरदास ने निम्न पद गाना आरम्भ किया–

**देखे री हरिनंगमनंगा**

**'जलसुत भूषण अंग विराजत वसन छवि हीन उठत तरंगा।'**

सूरदास की इस अद्भुत क्षमता को देखकर वे बहुत लज्जित हुए।

पद–रचना तथा संगीत की प्रतिभा भी इनमें लड़कपन से ही थी। सांसारिक विरक्ति के बाद ही इनमें भगवद् अनुरक्ति उत्पन्न हुई थी। अपने प्रारम्भिक जीवन में इन्होंने विनय और दीनता के पद गाए। श्री वल्लभाचार्य जी के सम्पर्वफ में आने के बाद से श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया। इस तरह पुष्टिमार्गीय भक्ति–पद्धति ही इनके जीवन का आधार बन गई, इनकी कवि–प्रतिभा गुरु के



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

आशीर्वाद से भक्ति–भावना के साथ एकाकार हो गई, जिससे यह कहना भी कठिन–सा प्रतीत होता है कि सूरदास पहले कवि हैं या भक्त? किन्तु इतना सच है कि इन्होंने अपनी सम्पूर्ण संगीत प्रतिभा को आराध्य कृष्ण के चरणों में लुटा दिया। भिन्न–भिन्न लीलाओं के प्रसंग लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यन्त मधुर और मनोहर पदों की झड़ी–सी बाँध दी है।

श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने समय के प्रसिद्ध आठ संगीतज्ञों की जो मण्डली श्रीनाथ जी की आठों झाँकियों में समय और ऋतु के अनुसार कीर्ति के लिए गठित की थी, वह 'अष्टछाप' के नाम से प्रख्यात हुई। इनमें से सूरदास, परमानन्ददास और गोविन्दस्वामी सर्वाधिक प्रसिद्ध गायक थे। परन्तु इन तीनों में भी सूरदास की सेवा–भावना तथा काव्य–संगीत विषयक कुशलता के कारण अष्टछाप का प्रमुख भक्त एवं कवि माना गया है। अन्य कारण यह भी है कि इन्होंने भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य–रसिकों दोनों को ही पूर्ण तुष्टि प्रदान की है।

सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं–1. सूरसागर, 2. सूर सारावली तथा 3. साहित्य लहरी। इनके अतिरिक्त भी लगभग एक दर्जन ग्रन्थों के नाम नागरी प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलते हैं, जैसे व्याहलो, पदसंग्रह, दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, सूर–पचीसी, गोवर्द्धन लीला, सूरसागर सार, राम जन्म, एकादशी महात्म्य आदि। इन ग्रन्थों में कुछ तो कदाचित महाकवि सूरदास की रचनाएँ नहीं हैं और सूरसागर की ही विशेष कथाओं अथवा लीलाओं से सम्बन्धित पदों के संग्रह मात्रा हैं। इस प्रकार अधिकांश साहित्यिक इतिहासकारों द्वारा मान्य उपर्युक्त तीन रचनाएँ ही शेष रह जाती हैं। इन तीनों में से सर्वप्रमुख रचना 'सूरसागर' है। अन्य रचनाएँ अत्यन्त गौण हैं। 'सूरसारावली' भगवत–कथा को ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाली 1107 छन्दों की रचना है। 'साहित्य लहरी' 118 पदों का संग्रह है जिनमें अलंकार, नायिका भाव का उल्लेख करके कूट शैली में उनके उदाहरण दिये गये हैं। अतएव महाकवि सूरदास की प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण रचना एकमात्र 'सूरसागर' ही रह जाती है।

द्वादशस्कंधी सूरदास वैफ लगभग पाँच हजार पदों में से चार हजार से अधिक पद श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं से संबंधित हैं तथा शेष एक हजार पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिकाचरित, विनय पद, राम अवतार संबंधी पद तथा 22 अवतारों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। सूरसागर के दशमस्कंध में कृष्ण अवतार के ब्रजचरित तथा द्वारकाचरित वाले पद समूह की ही संख्या चार हजार तीन सौ नौ है। प्रथम स्कन्ध के विनयपद 343 हैं तथा नवम स्कंध के राम अवतार सम्बन्धी 174 पद पाए जाते हैं। विनय पदों में दास्य भाव तथा दैन्य भावना प्रधान है। बहुत सम्भव है, ये पद सूरदास ने गऊघाट पर रहते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व रचे हों। उनके परिवर्तित भक्ति–भाव में श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ हैं और माधुर्यभाव की भक्ति है, जिनमें कृष्ण और गोपियों की शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन है। आकार और स्तर की दृष्टि से श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाओं के गान में ही कवि की वास्तविक अभिरुचि थी। कृष्ण के जन्म से लेकर नामकरण, कर्णछेदन, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, बाल–क्रीड़ाओं, कालिय–दमन, दावानलपान, चीर हरण, गिरि–धारण, रास, पनघट, दान, मान आदि विविध लीलाओं,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कंस द्वारा भेजे गए अन्यान्य राक्षसों का विनाश, गोचारण, गोवर्द्धन पूजा, वन–विहार, कृष्ण का मथुरा एवं द्वारिका गमन, कंस विनाश, श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन आदि का सविस्तार उल्लेख, दशमस्कंध में किया है। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का मूलाधार श्रीमद्भगवत का दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। इसने भक्तों के लिए माधुर्यभाव का मार्ग प्रशस्त किया।

सूरदास के काव्य के तीन पक्ष हैं–विनय, बाल–लीला और श्रृंगार सम्बन्धी पद। विनय सम्बन्धी पदों में दास्य भाव की भक्ति मिलती है। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूर द्वारा रचित विनय के पदों में आत्मदीनता, सांसारिक भोग–विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, संसार की तुच्छता, संसार की नश्वरता, हरि भजन का आग्रह, माया से सावधान रहने तथा ईश्वर–अनुकम्पा आदि का वर्णन है। गुरु–कृपा से सूर की यह आत्मदीनता समाप्त हो गई और वह श्रीकृष्ण के साकार सगुण रूप को भजने लगे। इस तरह उनकी भक्ति–भावना दास्यभक्ति से क्रमशः सख्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव में उत्तरोत्तर विकसित हुई।

बाल लीला वर्णन में सूर काव्य का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। बालक के मन में कोई भी ऐसी अन्तर्दशा और भावना शेष नहीं रही, जिसका अध्ययन इस नेत्रविहीन कवि ने न किया हो। उनका वात्सल्य–वर्णन विश्व–साहित्य की अमूल्य निधि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार ''जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया।'' वात्सल्य भाव को इस दशा तक पहुँचाने में सूर का कदाचित् हिन्दी कवियों में प्रथम स्थान है। आलंबन कृष्ण से उद्बुद्ध तथा उसकी शैशव–क्रीड़ाओं–चेष्टाओं के उद्दीपनों से उद्दीप्त नंद–यशोदा के हृदय में वासना रूप से स्थित आश्रयगत वात्सल्य स्थायीभाव ही 'मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी' के स्पर्धी, 'कत हो अरि करत मेरे मोहन यों तुम आँगन लोटी' की बाल–चेष्टाओं 'बलि गह रूप मुरारि' जैसी नृत्य चेष्टाओं के अनुभवों में परिव्यक्त तथा संचारियाँ से पुष्ट होकर वत्सल रस दशा को प्राप्त हुआ है। सचमुच 'आगे होने वाली कवियों की...वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी–सी जान पड़ती है।'

श्रृंगार चित्रण में श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का चित्रण है, किन्तु इस रस की बारीकी और गहराई में कवि की अद्भुत पैठ है। सूर–सागर का 'भ्रमरगीत' सगुण–निर्गुण विवादों और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धान्तों के शास्त्रार्थ के साथ–साथ प्रौढ़ ध्वनि काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि वात्सलय और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्यासक्ति और दाम्पत्यासक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है, अतः स्वाभाविक ही था कि सूर उस ओर अधिक प्रवृत्त होते।

सूर के व्यापक विरह–वर्णन में ब्रज की प्रकृति, पशु–पक्षी, नन्द, यशोदा, ग्वाल–बाल, गोपियों और राधा सभी का विरह–वर्णन आ गया है। ऋतुएँ और संयोग सुख की स्थितियाँ भी दुःखदायी बन गई हैं। हरे–हरे कुंज आग की लपटें बन जाती हैं, काली रात का चाँदनी से भर जाना उनहें सर्पिणी के



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

डस कर उलट जाने के समान लगता है, पपीहा कभी तो उन्हें 'प्रिय' की वाणी सुनाने वेफ कारण प्रिय लगता है और कभी जले पर नमक छिड़कता है। चातक वुफल की पीर का ध्यान रखने वाले बादलों के साथ जब वे निर्मोही कृष्ण की समानता पर विचार करती है तो उन्हें खीज उत्पन्न होती है। फलतः उन पर हमेशा पावस ऋतु बनी रहती है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रंभाने लगती हैं। सूर ने वियोग की प्रायः सभी दशाओं और संचारी भावों–अभिलाषा चिन्ता, स्मृति, गुण–कथन, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा और मरण के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का भी परिचय दिया है।

काव्य–सिद्धान्त की दृष्टि से सूर ने वल्लभाचार्य की दार्शनिक चिन्तन–धारा को काव्य का परिवेश दिया। वल्लभाचार्य ने कृष्णोपासना के पुष्टि–मार्ग का प्रवर्त्तन किया था। श्रीकृष्ण की अनुग्रह–प्राप्ति ही पुष्टि है–'अनुगृहीत पुष्टिः' अनुग्रह प्राप्ति के लिए आत्म निवेदन आवश्यक है। आत्म–निवेदन की अभिव्यंजना में ही गीतिकाव्य का उद्भव होता है। आराध्य की तुष्टि के लिए उसका लीला गान भी आवश्यक है। कृष्ण–लीला गान ही मुख्य प्रयोजन बना। लीलागान का स्वरूप बहुविध है। इसका उल्लेख लीला वर्णन में देखा जा सकता है। सूरदास का उद्देश्य भी लीला–गान रहा, अतः एक घटना को बार–बार गाने या बीच–बीच में अपनी आत्माभिव्यंजना निवेदित करने में उन्हें संकोच नहीं था। इस आत्म निवेदन की प्रधानता में उनका सूरसागर भी मुख्यतः गीति काव्य बन गया। सूरसागर को एक लड़ी में पिरोने का सूत्र कृष्ण चरित्र ही है, इसलिए इसे चरितात्मक गीति काव्य माना जा सकता है।

सूर की भक्ति प्रेमाभक्ति है, उसमें भी आसक्ति वैसी ही विद्यमान है, जैसी इस भक्ति के लिए अपेक्षित होती है–

**'चकई री चलि चर सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।**
**अब न सुहात विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस।।**
**भृंगी री भजि स्याम कमल पद, जहाँ न निसि को त्रास।**
**सूरज प्रेम सिन्धु में प्रपुफलित तहं चलि करे निवास।।'**

सूर ने अन्य रसों को 'छीलर' और भक्ति रस को 'समुद्र' कहा है। प्रेम भक्ति में भगवान की अनुग्रह–प्राप्ति के लिए लोक–मर्यादा और वेद–मर्यादा का त्याग आवश्यक ठहराया गया है। इसी कारण सूर की गोपियाँ भी लोक–मर्यादा त्यागते समय किसी प्रकार का संकोच नहीं करतीं। सूर जैसे पुष्टि–जीव ने भले ही प्रेमाभक्ति का ग्रहण अध्यात्मिक धरातल पर किया हो, परन्तु काव्य–रसिकों में से प्रत्येक के लिए यह सम्भव न था। कदाचित रीतिकाल का कृष्ण–काव्य इसी कारण प्रेमाभक्ति की अपेक्षा शृंगार प्रधान हो गया, जिसमें भक्ति तत्त्व 'बहाने भर' के लिए रह गया।

कलापक्ष की दृष्टि से सूर का काव्य अभिव्यंजना के सभी प्रसाधनों से अलंकृत है। चित्रण–कला में वे इतने प्रवीण हैं कि शब्दों के माध्यम से ही मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं, रूप–छवि, मुरली, माधुरी आदि के नेत्र–श्रवणेन्द्रिय सुलभ बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। सूर रूप–सौंदर्य के कवि हैं। कृष्ण के मोर–मुकुट, पीताम्बर धरी, मुरली मनोहर, मन मोहक स्वरूप का



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

चित्रण वस्तुतः मन्त्र–मुग्ध सा करने वाला है। उधर राधा की श्री–शोभा पर कृष्ण तन–मन न्यौछावर किये हुए हैं। ऐसे चित्रण में अलंकार शास्त्र भी मानो हाथ जोड़कर उनके पीछे–पीछे दौड़ता प्रतीत होता है। रूपकों की वर्षा में उपमानों की बाढ़–सी आ जाती है और कवि स्वयं भी संगीत के प्रवाह में बह जाता है। ऐसी तल्लीनता के साथ काव्य–शास्त्रीय पद्धति की निर्वाह सचमुच विरल है। 'भ्रमरगीत' में 'वक्रोक्ति का पुट है। गोपियों की उक्तियों की छटा एवं उनवेफ सहज, स्वाभाविक तर्क अत्यन्त निराले हैं, जो हृदय को बेध कर रख देते हैं। साधर्म्यमूलक अलंकार कवि के लिए केवल रसोत्कर्ष के साधन हैं। छन्द और संगीत का अद्‌भुत समन्वय सूरकाव्य की अन्यतम विशेषता है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूरसागर' के वर्णनात्मक एवं गेय सभी अंशों का विश्लेषण कर प्रयुक्त छन्दों का उल्लेख किया है। इनमें चौपाई, रोला तथा इनसे निर्मित मिश्रित छन्द, रूपमाला, हरि गीतिका, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, हीर, समान सवैया, मत्त सवैया आदि उल्लेखनीय हैं। सूर के सभी पदों में किसी–न–किसी राग की निबन्धना अवश्य हुई है। सूर के काव्य में ब्रजभाषा की तद्‌भव शब्दावली का आधिक्य है। उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही साहित्यिकता प्रदान की है। इनकी भाषा में 'जाको', 'तासों', 'वाकों' जैसे बोलचाल के रूपों वेफ समान 'जेहि', 'तेहि' आदि पुराने रूपों का प्रयोग बराबर मिलता है, 'गोड़े', 'आपन', 'हमार' आदि पूर्वी शब्दों का प्रयोग भी निःसंकोच किया गया है। इस तरह एक व्यापक काव्य भाषा का प्रयोग मिलता है, जो उनवेफ काव्य में संप्रेषण की संभावनाओं को विस्तृत करता है। दूसरी ओर कृष्ण के सौंदर्य वर्णन के प्रसंगों में कवि ने परंपरागत शास्त्रीय ढंग वेफ अलंकार–विधान का प्रयोग किया है। इसलिए उन प्रसंगों में पूर्व प्रचलित तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है लेकिन जहाँ बालकृष्ण और युवा कृष्ण की विविध लीलाओं वेफ प्रसंग हैं वहाँ तत्सम शब्दावली की अपेक्षा तद्‌भव शब्दावली की प्रधानता मिलती है। ब्रजभाषा की ठेठ प्रकृति को दर्शाने वाली यह तद्‌भव शब्दावली अत्यंत सटीक है।

कवि का प्रेरणा–स्रोत मूलतः श्रीमद्‌भगवतपुराण का पूर्वार्द्ध है। वे स्वयं ही इसका उल्लेख करते हैं।

**"श्री मुख चारि श्लोक दए, ब्रह्म को समुझाइ।**
**ब्रह्मा नारद सें कहे, नारद व्यास सुनाइ**
**व्यास कहै सुकदेव सों द्वादस स्कन्ध बनाइ।**
**सूरदास सोइ कहै पद भाषा करि गाइ।।"**

किन्तु भागवतकार का लक्ष्य कथानक को आगे बढ़ाते हुए गोपियों की प्रणयानुभूतियों की व्यंजना करना तथा कृष्ण की व्यापकता सिद्ध करना रहा है, जबकि सूरदास गोपियों के विरह–वर्णन वेफ साथ प्रेम–लक्षणा भक्ति के महत्त्व को भी प्रतिपादित करते हैं। जहाँ भागवतकार की गोपियाँ केवल कृष्ण की वंचकता को ही कोसती हैं, उद्धव के ज्ञानोपदेश की कोई निन्दा नहीं करती और अन्त में ज्ञान–चर्चा से प्रभावित भी होती हैं वहाँ सूर की गोपियाँ उद्धव वेफ ज्ञान की निन्दा, उसका उपहास और तिरस्कार भी करती हैं। सूर ने प्रेम मार्ग को उत्तम सिद्ध किया है। सूरदास की यह मौलिकता भ्रमरगीत काव्य परम्परा



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

के प्रवर्तन में सहायक रही है। सूरदास से प्रभावित होकर परवर्ती नन्ददास, सत्यनारायण 'कवि रत्न' जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आदि कवियों ने भ्रमरगीत लिखे हैं।

सूरदास की बाल–लीलाओं से प्रभावित होकर तुलसीदास ने भी न केवल भगवान् राम की बाल–लीलाओं का उसी तरह वर्णन किया प्रत्युत कृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन करने के लिए कृष्ण गीतावली की भी रचना की।

मैथिली–कोकिल विद्यपति ने राधा–कृष्ण के प्रेम–प्रसंगों को जो माधुरी प्रदान की थी, उसी श्रृंगार की अनेक भाव–दशाओं का चित्राण सूर ने भी किया। सूर की राधा संयोग में भी वियोग की आशंका से व्यावुफल और वियोग में भी मिलन की लालसा से उत्कंठित है। किन्तु सूरदास की मौलिकता इस दृष्टि से है कि सूर ने राधा के रूप में एक अपूर्व भक्त का स्वरूप उपस्थित किया है। राधा का प्रेम अपना उपमान आप ही है। किन्तु परवर्ती कवियों वेफ लिए भक्ति रस की दुर्बोधता या विलासिता की वृद्धि के कारण राधा का स्वरूप बदल गया और एक सामान्य नायिका जैसा रह गया। रीतिकालिन कवियों वेफ कृष्ण काव्य में भक्ति तत्त्व 'बहाने–भर के लिए' रह गया श्रृंगार तत्त्व प्रमुख हो गया।

इस प्रकार सूरदास हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकालीन यानी भक्तिकाल की सगुणमार्गी कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। हिन्दी काव्य में वे भ्रमरगीत परम्परा के भी प्रवर्तक हैं। 'अष्टाछाप' के कृष्ण भक्त कवियों में सर्वप्रथम गणना सूरदास की है। काव्य और संगीत का मधुर समन्वय सूरदास के पदों में मिलता है। सूर की रचना जयदेव और विद्यापति के गीत–काव्यों की शैली पर है। 'सूरसागर' में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी, इससे यह संगीत–प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है। सूरदास वात्सल्य रस के प्रतिष्ठापक हैं। सूर ने बाल–लीलाओं में कृष्ण के लौकिक स्वरूप का विकास करके लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया। उनका 'सूरसागर' ब्रज–जीवन की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है शान्त, वात्सल्य और श्रृंगार का जैसा उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, वैसा किसी कवि ने नहीं। आगे की सभी उक्तियाँ सूर की जूठी–सी लगती हैं। सूर हृदय से सच्चे पारखी थे। वे कवि पहले थे, भक्त बाद में। उनवेफ काव्य में अनुभूति की तरलता है जो पाठकों को रससिक्त कर देती है। रूप–सौंदर्य के कवि सूरदास अपना सानी नहीं रखते। चलती ब्रजभाषा को साहित्यिकता प्रदान करके सूरदास ने बहुत बड़ा कार्य किया है। हृदय की गहराई से निःसृत उनकी भावधारा सहृदयों को निरन्तर भाव–विभोर करके रस मग्न करती रहेगी। 'विश्व–सूर पंचशती' जयन्ती वेफ उपलक्ष्य में आयोजित गोष्ठियों में भी विश्व के विद्वानों ने सूरदास की अद्भुत प्रतिभा का अनुभव किया है। भाव तरंगों को आंदोलित करने वाला उनका 'सूरसागर' कभी विस्मृत नहीं होगा। हिन्दी काव्य–जगत के लिए यह उनकी सबसे बड़ी देन है। उनके इस योगदान का मूल्यांकन विविध दृष्टियों से विद्वानों ने किया है और कर रहे हैं। इसी से काव्य के शाश्वत मूल्य का अनुमान किया जा सकता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

### 2.3.1 बोध प्रश्न

1. सूरदास का जन्म कब और कहां हुआ?
2. सूरदास गऊघाट पर किसके संपर्क में आये?
3. सूर की भक्ति का स्वरूप कैसा है?
4. सूर की प्रसिद्ध रचनाओं के नाम बताइए।
5. सूर की भक्ति पर विचार कीजिए।
6. पुष्टिमार्गीय भक्ति क्या है?
7. इनकी कविता का वर्ण्य विषय क्या है?

## 2.4 प्रतिपाद्य

मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। सूरदास के सम्बन्ध में प्रचलित है कि वे गऊघाट पर विनय के पद गाया करते थे; वल्लभाचार्य जी ने सूर से कहा–

**'सूर है कैं ऐसे काहे कौ घिघियात हो,**
**कछु भगवद् लीला वर्णन कर।'**

इस गुरुमन्त्र को स्वीकार कर सूर ने राधा और कृष्ण–लीला से सम्बन्धित पदों की रचना की। सूर के काव्य में कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की क्रियाएँ चित्रित हैं। बाल क्रीड़ाओं के सम्बन्ध में तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि–'सूर वात्सल्य रस का कोना–कोना झाँक आए हैं।' प्रस्तुत पदों में गोकुल–लीला के अन्तर्गत माता यशोदा कृष्ण को चलना सिखा रही है। इस प्रक्रिया में कृष्ण के पाँव डगमगाते हैं और फिर सँभलते हैं। इस स्थिति में माता के हृदय की आनंदातिरेक भाव–भंगिमा का जैसा अद्भुत चित्रा सूर ने उकेरा है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरे पद में कृष्ण की बाल–जिज्ञासा का उल्लेख किया गया है। बालक कृष्ण बड़े मासूमियत ढंग से माता यशोदा से प्रश्न करते हैं कि कितना समय हो गया है उन्हें दूध पीते–पीते, परन्तु उनकी चोटी अभी भी छोटी ही है। माता तुम मुझे माखन–रोटी भी नहीं देती और कच्चा दूध ही पिलाती हो। माता यशोदा कृष्ण और बलराम की इस अनोखी अद्भुत जोड़ी को देखकर खुश हो रही है। तीसरे पद में भी कृष्ण की बाल–चेष्टाओं का वर्णन सूरदास ने किया है। वे कहते हैं कि बालक कृष्ण अपने आँगन में कुछ गा रहे हैं एवं नाच रहे हैं। कभी वे काली गाय को बुलाते हैं तो कभी काली एवं भूरी गायों को। इसी तरह की अनेक क्रीड़ाओं द्वारा माता यशोदा को हर्षाते हैं। फिर आगे वे माता यशोदा को यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि उन्होंने माखन नहीं चुराया। अपनी सफाई में वे कहते हैं कि देखो माँ कितना ऊँचा माखन रखा है। मैं तो छोटा–सा बालक हूँ और मेरे हाथ भी छोटे हैं पिफर भला मेरे छोटे–छोटे हाथ वहाँ कैसे पहुँच सकते हैं? मैं भला वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ। कृष्ण की इस चतुराई पर माता का सारा क्रोध शान्त हो जाता है और वे कृष्ण को गले से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

लगा लेती हैं। इस प्रकार कवि सूरदास कृष्ण–यशोदा के माध्यम से वात्सल्य भाव–भंगिमा का बड़ा ही अद्‌भुत चित्रण करते हैं।

## 2.5 व्याख्या

**1. मैया मैं.....नहिं पायौ ।।6।।**

**शब्दार्थ :** ख्याल परै = ध्यान आता है, समझ में आता है। सींके = छींके, कुत्ते–बिल्ली से खाद्य पदार्थ को बचाने के लिए छत से लटकाया जाने वाला उल्टी टोपी जैसा झूला, जिसमें रक्षणीय पदार्थ का बर्तन रख देते हैं। भाजन = बर्तन। हाँ = मैं। नान्हे = छोटे। कर = हाथ। दोना = पत्ते का बर्तन। पीठि = कमर पीछे। दुरायौ = छिपा लिया। साँटि = छोटी लकड़ी, संटी। मोझौ = मोहित किया। भक्ति–प्रताप = भक्ति का यश, प्रभाव। जसुमति = यशोदा माता। सिव = शिव, शंकर। विरंचि = ब्रह्मा।

**प्रसंग :** इस पद में श्रीकृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन है। वात्सल्य भक्ति–भावना में अनुरक्त भक्त कवि ने बालकृष्ण की बाल–चेष्टाओं का ऐसा मनोहारी चित्रण किया है कि श्रीकृष्ण की माखन–चोरी की चतुराई पर माता यशोदा की तरह सभी मोहित हो जाते हैं।

**व्याख्या :** श्रीकृष्ण माखन–चोरी की सफाई देते हुए यशोदा माता से कहते हैं कि माता! मैंने मक्खन नहीं खाया है। समझ में आता है कि मेरे मित्रों ने मिलकर मेरे सुख पर लपेट दिया जिससे तू समझती है कि मैंने मक्खन खाया है। यह झूठ है। दूसरी बात यह है कि जिस छींके पर मक्खन का बर्तन लटकाया हुआ था, वह भी इतना ऊँचा था कि मैंने अपने छोटे हाथों से उसको पकड़ भी नहीं सकता था। लेकिन चोरी का एक प्रमाण यह भी था कि कृष्ण के हाथों में मक्खन भरा (दोना) था। उसको भी कृष्ण ने चतुराई से पीठ पीछे छिपा लिया तथा मुख पर लिपटे मक्खन को भी पोंछ डाला। श्रीकृष्ण की इस बाल–चतुराई पर मोहित होकर यशोदा ने प्रताड़ना के लिए हाथ में ली हुई संटी भी डाल दी और हँसकर कृष्ण को गले लगा लिया। श्रीकृष्ण की बाल–विनोदपूर्ण चातुर्य ने यशोदा माता वेफ मन को मोहित कर लिया। श्रीकृष्ण ने बाल–विनोद लीला वात्सल्य भक्ति से प्रभावित होकर दिखाई। सूरदास कवि कहते हैं कि यशोदा माता जैसा वात्सल्य भक्ति का सुख शिव और ब्रह्मा ने भी प्राप्त नहीं किया है। यहाँ अद्‌भुत का समावेश करके, आलंबन कृष्ण को अलौकिक बना दिया है।

**विशेषः**

1. शिशु–सुलभ बाल चेष्टाओं को देखकर आनन्दित होने वाली माता के वात्सल्य सुख को अलौकिकता प्रदान करने के लिए भक्त कवि ने अपने भक्तिभाव में अद्‌भुत तत्व का भी समावेश किया है जिससे अवतारी बालकृष्ण का परब्रह्मत्व सिद्ध होता है।
2. प्रस्तुत पद भारतीय जन–मानस का कंठहार बना हुआ है।
3. ब्रजभाषा की मधुरता और गेयता देखते ही बनती है।
4. गुण, अलंकार भी अनायास ही काव्य–शोभा बढ़ाने वाले हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**2. ऊधै मन न भए दस बीस.....और नहीं जगदीस।**

**शब्दार्थ** : अवराधै = आराधना करना। ईस = ईश्वर। सीस = सिर। देही = शरीर। बरीस = वर्ष। आसा = आशा, उम्मीद।

**प्रसंग** : सूर वात्सल्य, प्रेम और सौंदर्य वेफ अमर गायक हैं। प्रस्तुत काव्यांश सूरसागर से उद्धृत हैं। सूरदास वेफ काव्य में विनय, आत्मनिवेदन, कृष्ण का बाल–वर्णन, गोपी–लीला, मुरली और गोपी–विरह का वर्णन प्रमुखता से देखने को मिलता है। उनकी गोपियों वेफ साथ श्रृंगारिक क्रीड़ाओं के पद मनमोहक हैं। मथुरा–गमन के पश्चात् उद्धव गोपियों को निर्गुणोपासना का उपदेश देते हैं जिससे गोपियों का मन क्षुब्ध हो उठता है।

**व्याख्या** : यहाँ गोपियाँ कृष्ण के विरह में व्यथित हैं। उन्हें ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देने एवं उनकी व्यथा को कम करने के उद्देश्य से उद्धव निर्गुण ईश्वर का उपदेश देते हैं। जिससे क्षुब्ध होकर कृष्ण–प्रेम में डुबी गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से उद्धव को खरी–खोटी सुनाती हैं। वे उससे कहती हैं कि मनुष्य के पास दस या बीस हृदय नहीं होते केवल एक ही मन होता है और गोपियों का हृदय तो कृष्ण के साथ मथुरा चला गया अब वे अन्य किसी की आराधना नहीं कर सकती। जिस प्रकार शीश के बिना देह का कोई अस्तित्व नहीं है उसी प्रकार कृष्ण के विरह में उनकी सभी इंद्रियाँ शिथिल हो गई हैं। भले ही वे कितने ही वर्ष जीवित रहें कृष्ण–रूपी श्वास उनकी आस के रूप में देह में शेष हैं। गोपियों के मतानुसार निर्गुण ब्रह्म के माता–पिता, जन्म, जाति, रंग, रूप आदि का कुछ भी पता नहीं है जबकि कृष्ण के तो उन्होंने साक्षात् दर्शन किए हैं अतः कृष्ण के प्रेम में लीन रहना ही उन्हें प्रिय है। अंत में गोपिया उद्धव से कहती हें कि आप तो कृष्ण के सखा हो और उनके बारे में बहुत कुछ जानते हो इसलिए आप केवल उन्हीं बातों के बारे में बताओ जिससे हमारे हृदय में प्रसन्नता जागे।

**विशेष** :
1. कवि की भाषा ब्रजभाषा है।
2. इसमें निगुर्ण सगुण ब्रह्मा का विवाद है।
3. इसमें गोपियों के तर्क का वर्णन किया है।
4. पद में संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न

1. सूर की भक्ति पर प्रकाश डालिए।
2. सूर की भाषा का विश्लेषण कीजिए।
3. 'सूर श्रृंगार और वात्सल्य के बादशा हैं', इस उक्ति पर प्रकाश डालिए।
4. सूर की कविता का वर्ण्य विषय स्पष्ट कीजिए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. सूरदास –हरिवंश लालशर्मा।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास –आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास –सम्पादक : डॉ. नगेन्द्र।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# रीतिकालीन हिंदी कविता

## 1. बिहारी

**लेखक–डॉ. दिनेश गुप्ता**
रीडर
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

1.1 अधिगम का उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 कवि का साहित्यिक-परिचय
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 प्रतिपाद्य
1.5 महत्वपूर्ण दोहों की व्याख्या
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ-ग्रंथ

## 1.1 अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप

- कवि बिहारी के समकालीन परिवेश को समझ पाएंगे।
- कवि बिहारी के श्रृंगारी रूप से परिचित हो पाएंगे।
- बिहारी की बहुज्ञता जान सकेंगे।
- बिहारी की सौंदर्य–चेतना का विश्लेषण कर पाएंगे।
- बिहारी की काव्य–कला से परिचित हो पाएंगे।
- बिहारी के काव्य के वर्ण्य विषय समझा सकेंगे।

© DDCE, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 1.2 प्रस्तावना

बिहरी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। 'बिहारी सतसई' उनकी लोकप्रियता का आधार है। उनकी प्रसिद्धि इस बात को प्रमाणित करती है कि श्रेष्ठता की कसौटी परिमाण नहीं काव्यत्व है। बिहारी ने सात सौ दोहे लिखकर ऐसी कीर्ति अर्जित की है, जो सात हजार दोहे लिखकर भी कवियों के लिए दुर्लभ है। बिहारी रीतिसिद्धि काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्हें शृंगार वर्णन, हाव–भाव योजना या भंगिमा–वर्णन में अद्वितीय सफलता मिली है। उनके काव्य में शृंगार के संयोग और वियोग के दोनों पक्षों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। बिहारी ने भक्ति और नीति के दोहे भी लिखे हैं जहाँ वे दरबारी वातावरण से मुक्त प्रतीत होते हैं।

## 1.3 कवि का साहित्यिक–परिचय

बिहारी का जन्म ग्वालियर के माथुर चौबे वंश में 1595 ई. के आस-पास हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का विवाह मथुरा के माथुर चौबे लोगों के घराने में हुआ था। विवाह के बाद बिहारी अपनी ससुराल में रहने लगे। 1618 में नरहरिदास के यहाँ बिहारी का परिचय शाहजहाँ बादशाह से हुआ और वह बादशाह के साथ आगरा चले गये तथा वहीं रहने लगे। बादशाह के यहाँ बिहारी का परिचय राजस्थान के राजाओं से हुआ। 1635 ई. में बिहारी आमेर-नरेश जयसिंह से मिलने गये। उस समय जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में पड़कर अपना सारा कामकाज छोड़ बैठे थे। बड़ी रानी के कहने पर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाल।।

लिखकर जयसिंह के पास भेजा। जयसिंह पर उसका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वह पुनः राज-काज देखने लगे और उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में रख लिया। वहाँ बिहारी ने 713 दोहों वाली सतसई की रचना की। कहा जाता है कि उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिलती थी। सम्भवतः 1664 ई. के आस-पास वह परलोकवासी हुए।

### रचनाएँ

बिहारी की कीर्ति का स्तम्भ केवल बिहारी-सतसई ही है। केवल सौ दोहे लिखकर उन्होंने महाकवि बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। इससे सिद्ध हो जाता है कि यश प्राप्त करने के लिए अधिक लिखना उतना आवश्यक नहीं जितना उच्चकोटि का लिखना। इन सात सौ दोहों में रस, नायिका-भेद, अलंकार इत्यादि तो भरे ही हैं; धार्मिक तथा नैतिक सूक्तियों की भी इनमें कमी नहीं है और भक्ति साहित्य का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। आशय यह है कि इस पुस्तक के छोटे-से कलेवर में ही बिहारी



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

ने समकालीन भारतीय साहित्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का समोवश कर दिया है– 1. श्रृंगार, 2. भक्ति और 3. नीति।

## काव्य–सौष्ठव

रीतिकाल में श्रृंगार, भक्ति और नीति-विषयों पर अनेक कवियों ने बड़ी संख्या में काव्य लिखे हैं, लेकिन बिहारी के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'गागर में सागर' भर दिया। उन्होंने अपने दोहों में इतना सजग होकर शब्दों का प्रयोग किया है कि एक भी शब्द बदलना कठिन हो जाता है। शब्दों में पूरी शक्ति और बहुत गहरी व्यंजना है। रचना का ऐसा कसाव हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम मिलेगा। कहीं-कहीं एक ही दोहे में पूरी-पूरी कथा आ गई है। बिहारी की निरीक्षण-शक्ति इतनी प्रबल है कि वे किसी भी स्थिति का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिससे उसका बिम्ब पूरी तरह स्पष्ट हो जाए। अलंकारों काप्रयोग इतनी कुशलता से किया है कि देखते ही, बनता है। एक-एक दोहे में कई-कई अलंकार गुँथे पड़े हैं, किंतु विशेषता यह है कि वे अलंकार ऊपर से थोपे हुए नहीं जान पड़ते। स्वाभाविक रूप में ही उनका प्रयोग हुआ है। जीवन की किसी परिस्थिति से अलंकार ग्रहण कर लेना इनके बाएँ हाथ का खेल था। गणित, ज्योतिष, शिकार, वैद्यक और दैनिक जीवन की परिस्थितियों के ज्ञान को प्रसंग के अनुसार घटित कर देने की क्षमता बिहारी में है।

## मुक्तक काव्य का सौन्दर्य

काव्याचार्यों द्वारा निरूपित काव्य के दो रूप प्रसिद्ध हैं–प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य। पूर्वापर सम्बन्धित वर्णनात्मक कथा-तत्त्व से युक्त काव्य, प्रबन्ध कहलाता है। इसके विपरीत पूर्वापर-सम्बन्ध मुक्त, स्वतः सम्पूर्ण अर्थ का द्योतक काव्य मुक्तक काव्य कहा जाता है। प्रबन्धकाव्य में रस-व्यंजना की पूर्ण सामग्री (विभाव, अनुभाव आदि) की अवतारणा सहज संभव होती है जबकि मुक्तक काव्य में उसकी परिकल्पना कवि द्वारा उद्धृत प्रसंग पर निर्भर है। प्रबन्धकाव्य में विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, परन्तु मुक्तक की महत्ता संक्षिप्तातिसंक्षिप्त होने में है। प्रबन्ध काव्य-रचयिता जिस बात को अनेक पद्यों अथवा पूरे एक सर्ग में कहता है उसी बात को मुक्तक काव्यकार एक ही पद्य में प्रस्तुत करके रस-अवतारणा में प्रवृत्त होता है। उसकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक गहन भावो का संयोजन कर दे। ''गागर में सागर'' भरने की यह कला 'शब्दों के जादूगर' बिहारी की सतसई में पराकाष्ठा तक दिखाई देती है। 48 मात्राओं वाले छोटे से 'दोहा' छन्द में बिहारी ने भाव एवं अर्थ की इतनी गहराई प्रस्तुत की है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार एक नूतन आनन्द, अद्भुत काव्यास्वाद और मानसिक तृप्ति का अनुभव होता है।

आचार्य शुक्ल के कथानुसार, **'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही वह मुक्तक की रचना में अधिक सफल होगा।'** इससे मुक्तक काव्य की दो कसौटियाँ स्पष्ट है। **प्रथम-कल्पना की समाहार शक्ति, द्वितीय-भाषा की समास शक्ति।**इस



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दृष्टि से बिहारी-सतसई में निस्सन्देह मुक्तक कला का चरम दिखाई देता है। उदाहरणार्थः बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है–

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।।

यहाँ कवि ने केवल बारह शब्दों में एक सम्पूर्ण प्रेम-प्रसंग को समेट लिया है जिसे समझने के लिए कवि के कल्पना-कौशल की थाह लेनी पड़ती है। प्रसंग यह है कि नवविवाहित दम्पत्ति परिवार-जनों के मध्य उन्मुक्त प्रेमालाप करने में असमर्थ है। अतः वे नेत्र-संकेतों के माध्यम से अपने-अपने हृदय के भाव एक-दूसरे तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। दोहों के शब्दों पर क्रमशः ध्यान दीजिए-पहले नायक संकेत द्वारा नायिका से कहीं एकान्त में मिलने का आग्रह करता है परन्तु नायिका संकेत में नाहीं कह देती है। नायिका की इस अनूठी 'नाहीं' पर नायक रीझ उठता है, परन्तु नायिका भरे परिवार में नायक की ऐसी प्रवृत्ति पर खीझ जाती है। अब घर के काम-काज मे उसे यहाँ से वहाँ तो जाना ही पड़ता है और कहीं-न-कहीं नायक का सामना भी हो ही जाता है। अतः उसकी खीझ अन्ततः मुस्कान में परिणत हो जाती है, परन्तु तभी परिजनों की उपस्थिति का ध्यान आने पर वह लजा जाती है।

यह शब्दचित्र एक सम्पूर्ण प्रणय-प्रसंग को प्रस्तुत करने में समर्थ है। संक्षिप्तता और सारगर्भिता के साथ-साथ सरस रागात्मकता के सुष्ठु संयोजन ने इसे मुक्तक काव्य की एक अमर विभूति बना दिया है।

इसी प्रकार बिहारी का यह दोहा आपको स्मरण होगा–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

इसका शब्दार्थ है– जो भँवरा पराग और मधुर मधु से रहित, एक बिना खिली कली में ही इतना मस्त है, कली के खिलकर फूल बन जाने पर उसकी क्या दशा होगी? किन्तु कवि का अभिप्राय इतना ही नहीं है। वह इस दोहे द्वारा, अपनी नवोढ़ा पत्नी के प्रेम में अन्धे हो रहे राजा जयसिंह को तो सावधान करना चाहता है, साथ ही विलासिता में डूबे अन्य कर्त्तव्य-विमुख व्यक्तियों को सचेत करना भी उनका उद्देश्य है। ऐसे कामी पुरुषों से स्त्रियों को भी सावधान रहने के लिए बिहारी ने लिखा है–

बहकि न इहिं बहिनापुली, जब तक बार विनास।
बचै न बड़ी सबील हूँ, चील घोंसाव मांस।।

इस दोहे में कवि द्वारा कल्पित यह प्रसंग छिपा हुआ है– किसी लम्पट पुरुष ने एक सुन्दरी से बहन का-सा नाता जोड़ा जो उसे अपने जैसा ही भोला और सरल समझती है। किन्तु उसकी एक सखी उसे सचेत करती है कि वह इस बहनापे के बहकावे में न आए– नहीं तो एक दिन पछताना पड़ेगा। क्योंकि पर-पुरुष की संगति में अब नहीं तो तब-नारीतव भ्रष्ट होने का भय बना ही रहेगा। जैसे चील के घोंसले में बड़ी सावधानी से रखा हुआ मांस कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता। इस प्रकार कवि ने स्वार्थी पुरुषों को चील-जैसा कहकर अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देते हुए नारी-मात्र को सजग



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रहने की जो प्रेरणा इस एक दोहे द्वारा दी है उसका साहस बड़े-बड़े उपदेशक अपने लम्बे भाषणों में भी नहीं कर सकते।

ऊपर के तीनों उदाहरण क्रमशः शृंगार, नीति एवं समाज से सम्बन्धित हैं। ऐसे ही राजनीति, भक्ति, दर्शन, हास्य-सभी विषयों से सम्बन्धित अनेक दोहे बिहारी की समाहार-शक्ति के प्रमाण रूप में उद्धृत किए जा सकते हैं। यहाँ दो और दोहे प्रस्तुत हैं। एक का सम्बन्ध राजनीति से है ओर दूसरे का भक्ति से–

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख-द्वन्द्व
अधिक अन्धेरों जग करैं मिल माव रवि चन्द।।

इस दोहे का सीधा-सा अर्थ तो यह है कि जिस प्रकार अमावस्या की तिथि में सूर्य और चाँद दोनों के मिल जाने से संसार में उजाला होने की बजाए अधिक अन्धेरा हो जाता है उसी प्रकार दो राजाओं का राज्य प्रजा के लिए असह्य और दुःखःद्वन्द्व बढ़ाने वाला होता है। परन्तु वास्तव में बिहारी ने यहाँ कुछ ही शब्दों में अपने समय की राजनैतिक अस्थिरता, जनता की दुर्दशा और साहित्यकारों की चिन्ता तथा मजदूरी का बड़ा मार्मिक विवरण दे दिया है। मध्ययुग में एक तो छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े-सामन्त और जागीरदार प्रजा को दबाए रहते थे, दूसरे उनके ऊपर मुगल शासकों के अत्याचार, टैक्स आदि से जनता पर दोहरी मार पड़ती थी। इस प्रकार लोग दोहरे शासन से कोई लाभ या सुविधा पाने की बजाय अधिक पिस रहे थे। उस समय इस भीषण स्थिति का यह चित्रण तो केवल पहली पंक्ति में हुआ है जबकि दूसरी पंक्ति में कवि ने प्रकृति के एक अटल नियम तथा ज्योतिष और खगोलशास्त्र के एक महत्त्वूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की है। स्पष्ट है कि इतनी बातों को एक साथ समेटने की क्षमता केवल बिहारी में ही थी।

अब एक भक्ति-संबंधी उदाहरण लीजिए–

दूर भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल

यहाँ बिहारी ने पतंग के दृष्टान्त से निर्गुण भक्ति की व्याख्या की है। जैसे पतंग की डोर (गुन) का विस्तार करने पर वह अधिक-से-अधिक दूर होती चली जाती है किन्तु उस डोर को समेटते ही, या डोर से रहित होते ही वह बिल्कुल निकट जा आती है, इसी प्रकार जितना प्रभु के गुणों का विस्तार किया जाएगा, वे विमुख रहेंगे, किन्तु यदि निर्गुण-निराकार रूप में उनकी उपासना की जाय तो वे निकट ही (हृदय में ही) विद्यमान अनुभव होंगे। इसी बात को एक अन्य रूप में भी कहा जा सकता है कि जो मनुष्य अपने गुणों के अभिमान में मस्त होता है, उसे प्रभु की कृपा नहीं मिल सकती जबकि स्वयं को गुणहीन समझकर दीनतापूर्वक विनय करने वाले भक्त के भगवान् सदा निकट रहते हैं। इस प्रकार जिस बात को भक्तिकाल की सगुण-निर्गुण भक्ति शाखा के अनेक सन्त कवियों ने अपने असंख्य



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पद्यों में समझाने की चेष्टा की है उसे बिहारी ने एक ही दोहे में जाने-पहचाने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

सच तो यह है कि बिहारी की इस समाहार-शक्ति ने ही साहित्य-प्रेमियों को बार-बार उनकी प्रशंसा के लिए विवश किया है। इसका प्रमाण यह है कि बिहारी के बाद अनेक कुशल कवियों ने बिहारी के एक-एक दोहे की व्याख्या चार लम्बे चरणों वाले सवैया, दोहे से तिगुने बड़े छन्द, छप्पय, कवित्त तथा कुण्डलियों आदि में भी करने की कोशिश की है। फिर भी वे बिहारी के भावों को भली-भांति स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सके। बिहारी की समाहार-शक्ति को यदि संक्षेप में ही स्पष्ट करना हो तो हम रहीम के शब्दों में कह सकते हैं–

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट, कूदि चल जाहिं।

अर्थात् जिस प्रकार एक नट छोटे से घेरे में से सिमटकर, कूदकर निकल जाता है उसी प्रकार दोहे के थोड़े से अक्षरों में बड़े विशाल अर्थ सिमटकर समाए रहते हैं। और इसका ज्वलन्त प्रमाण है– 'बिहारी-सतसई'।

## भाषा–सौष्ठव

हिन्दी की अधिकांश मध्यकालीन, विशेषतः रीतिकालीन सतसइयाँ ब्रजभाषा में रचित हैं। तुलसी, रहीम (अवधी), सूर्यमल्ल (राजस्थानी) और हरिऔध (खड़ीबोली) की सतसइयाँ ही इसका अपवाद कही जा सकती हैं। बिहारी-सतसई ब्रजभाषा-काव्य की अमूल्य निधि है। भाषा की प्रांजलता, शब्दों का विषयानुरूप तथा प्रसंगानुकूल सुष्ठु चयन, पद-विन्यास की निपुणता, लाक्षणिक प्रयोगों की अर्थवत्ता, चित्रोपमता, नाद-योजना, प्रतीकात्मकता एवं बिम्ब-विधान आदि भाषा-सौष्ठव के समस्त उपकरणों का बिहारी-सतसई के अद्‌भुत समन्वित समाहार परिलक्षित होता है।

बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में कतिपय विद्वान् समीक्षकों कें अभिमत यहाँ उल्लेखनीय हैं....

**रामचन्द्र शुक्ल**–''बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है...। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत पाई है.... बिहारी की भाषा इस दोष से भी कुछ मुक्त है''

**राधाकृष्ण दास**–''मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे।'

**श्यामसुन्दर दास**– ''बिहारी ने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण के नियमों का व्यक्तिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं-कहीं पर जो उनके कुछ शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है।''

**वस्तुतः** अन्य सभी सतसइयाँ भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से बिहारी-सतसई से बहुत पीछे हैं। किसी बिहारी प्रशंसक की यह उक्ति अतिशयोक्ति या अत्युक्ति नहीं, अपितु स्वाभावोक्ति ही है–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विशाल।
सब की भूषण सतसई, रची बिहारी लाल।।

'बिहारी सतसई' की भाषा की कसावट और शब्दों की जादूगरी का संकेत पीछे 'मुक्तक काव्य-प्रसंग' में किया जा चुका है। यहाँ एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें चित्रोपमता, नाद-सौंदर्य, शब्द-सौष्ठव, अलंकार-विधान सब कुछ एक साथ समाहित हो गया है–

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान-मधु नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो, कुंजर कुंज-समीर।।

इस दोहे की व्याख्या अपेक्षित नहीं, प्रत्येक शब्द स्वतः बोल रहा है। कुंज में प्रवाहित मन्द समीर और मदमस्त गज का साम्य शब्दों में ही नहीं, कर्ण, नेत्र, मस्तिष्क और हृदय तक में साक्षात् हो उठता है।

'बिहारी-सतसई' की भाषा का सौन्दर्य उसके मार्दव तथा सुव्यवस्थित गठन में निहित है। काव्य-शिल्प के एक-एक उपकरण का विवेचन करने के लिए इसके सभी दोहे उद्धत किए जा सकते हैं जिसकायहाँ अवसर नहीं है। फिर भी एक-एक उदाहरण से उनकी कुछ बानगी देखी जा सकती है–

| | | |
|---|---|---|
| चित्रोपमता | – | चमचमात चंचल नयन, बिचु घूँघट पट झीन।<br>मानहु सुरसरिता विमल, छल उछरत जुगु मीन।। |
| नाद-सौन्दर्य | – | रस सिंगार-मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।<br>अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।। |
| अप्रस्तुत-योजना | – | चिलत चिकनाई चटक सों, लफति सटक लौं आई।<br>नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाइ।। |
| बिम्ब-विधान | – | सटपटाती सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।<br>पावकझर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि।। |

## छन्द–विधान

छन्द की दृष्टि से हिन्दी का सतसई-साहित्य 'दोहा मुक्तक' की कोटि में रखा जा सकता है। दोहा छन्द में 48 मात्राएँ होती हैं। यदि दोहे के सभी वर्ण लघु हों तो उसमें अधिक-से-अधिक 48 वर्ण हो सकते हैं। और यदि सभी वर्ण गुरु हों तो कम-से-कम 24 वर्ण हो सकते हैं। किन्तु 13, 11 मात्राओं पर यति के नियमानुसार और अन्त में गुरु-लघु का क्रम अनिवार्य होने के कारण दोहे में सभी लघु या सभी गुरु वर्ण रखने सम्भव नहीं। उसमें कम-से-कम चार लघु (तथा शेष सभी गुरु) या कम-से-कम दो गुरु (तथा शेष सभी लघु) होने आवश्यक है। इस तरह दोहा छन्द का विस्तार 22 गुरु और 4 लघु से लेकर 2 गुरु और 44 लघु तक हो सकता है जिसके अनुसार उसके 21 भेद किए जाते हैं। इन भेदों के नाम गुरु-लघु-संख्या-क्रम के अनुसार छन्द-ग्रन्थों में विस्तार से विवेचित हैं। यहाँ उन्हें उद्धत करना



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अपेक्षित नहीं। द्रष्टव्य यह है कि दोहे के कुल 21 भेदों में से अन्य सभी सतसईकार 8 भेदों से अधिक का प्रयोग नहीं कर पाए। यहाँ तक कि कबीर और तुलसी जैसे दोहा–महारथी भी 10 भेदों के प्रयोग से आगे नहीं बढ़ पाए। हाँ, आचार्य अमीरदास की 'ब्रजराज विलास सतसई' में दोहे के 16 भेद प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु यह गौरव केवल 'बिहारी-सतसई' को प्राप्त है कि उसमें 21 भेदों में से 19 भेदों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि 'बिहारी-सतसई' का रचयिता केवल शब्दों को ही नहीं, वर्णों और मात्राओं तक को अपनी लेखनी की नोंक पर नचाने सिद्ध हुआ है।

बिहारी बहुज्ञ कवि थे। लोक और शास्त्र का व्यापक अनुभव उनको अन्य रीतिकालीन कवियों से पृथक्-रीति से कहीं बद्ध और कहीं मुक्त व्यक्तित्व वाला सिद्ध करता है। उनकी सतसई में धर्म, दर्शन, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, राजनीति, प्रेम, विलास, रस, नायक-नायिका-भेद आदि का बहुमुखी चित्रण हुआ है। किसी एक विषय या भाव से बँधे न रहने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कभी वे निर्गुण का गुणगान करते हैं, कभी सगुण के पक्ष में दलील देते हैं, कभी बड़ों पर किसी का वश चलने की बात करते हैं, तो कभी अपने आश्रयदाता को उपदेश और कभी मार्ग-निर्देश देते दीखते हैं। वैद्य, भिखारी, राजा, गँवार, बड़ों के छोटेपन, छोटों के बड़प्पन आदि के विषय में उन्होंने जो सूक्तियाँ लिखी हैं, वे उनके लोक-व्यवहार-ज्ञान को सूचित करती है। ऐसे प्रसंगों में उनके दोहे उनकी व्यंग्य-शक्ति दर्शाते हैं। इन सभी विषयों पर बिहारी ने जो कुछ भी लिखा है, वह उनके आसपास के वातावरण, समाज और मान्यताओं से उत्पन्न हुआ है। लोकजीवन के इन विविध चित्रों के साथ-साथ बिहारी ने काव्यशास्त्र और कामशास्त्र की बातें भी अपनी सतसई में रखी हैं। इससे उनका शास्त्र-ज्ञान सूचित होता है।

बिहारी की सतसई ब्रजभाषा में लिखित है। उनकी ब्रजभाषा बोली-वर्ग की नहीं, साहित्यिक है। साहित्यिक होते हुए भी उस पर कहीं-कहीं क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव भी पड़ता दीखता है। क्रिया के 'लीन', 'कीन', 'दीन' आदि रूप तुक की रक्षा के लिए प्रयोग किये गये हैं। उनकी ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी शब्दों और प्रयोगों के लिए उनका बुंदेलखंड-वास उत्तरदायी है। 'करबी', 'पायबी' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन बोली-प्रभावों के होने से बिहारी की ब्रजभाषा विकृत नहीं हुई है, उसका शब्दकोश बढ़ा ही है। बिहारी की भाषा चुस्त और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, भावों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। मुहावरों, सांकेतिक शब्दों और सुन्दर पदावली के कारण बिहारी भाषा के कुशल प्रयोक्ता के रूप में विख्यात हो गये हैं। चुस्त ब्रजभाषा और सामाजिक दोहा के उपयोग के कारण ही 'बिहारी सतसई' के बारे में यह उक्ति प्रचलित हुई है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर।।

## बिहारी का योगदान

बिहारी कतिपय उन इने-गिने कवियों में हैं जो स्थायी यश के अधिकारी बन गये हैं। मध्यकाल के कवियों में तुलसी और सूर को छोड़कर इतनी अधिक प्रतिष्ठा शायद ही किसी कवि ने प्राप्त की हो। 'रामचरितमानस' को छोड़कर इस काल का शायद कोई और ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की तरह नहीं



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अपनाया गया। एक दृष्टि से तो बिहारी सतसई, 'रामचरितमानस से भी आगे बढ़ जाती है। यदि केवल मध्यकाल की ही टीकाओं को लिया जाए, तो रामचरितमानस पर भी उतनी टीकाएँ नहीं लिखी गई, जितनी बिहारी सतसई पर। किसी ने दोहों में कुण्डलियाँ लगाई, किसी ने कवित्त बनाए और किसी ने सवैया छन्दों से दोहों की व्याख्या की। संस्कृत के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने की परम्परा रही है, किन्तु यह सौभाग्य 'बिहारी सतसई' को प्राप्त हुआ कि उसकी एक नहीं, अनेक व्याख्याएँ संस्कृत में की गयीं। बिहारी सतसई का संस्कृत के आर्या छन्द में भी अनुवाद किया गया। आधुनिक काल में भी बिहारी पर जितना कार्य हुआ है, उतना मध्यकाल के बहुत कम कवियों पर किया गया है। आशय यह है कि केवल 700 दोहे लिखकर बिहारी ने एक पूरा साहित्य तैयार कर दिया है। साहित्य-जगत् में बिहारी जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान बहुत कम कवियों को प्राप्त हुआ है और हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में उनका जो योगदान है, उसके लिए हिन्दी-साहित्य-जगत् उनका सदा आभारी रहेगा।

1. बिहारी रीतिकाल की कौन सी कोटि के कवि हैं?
2. बिहारी का एकमात्र चर्चित ग्रंथ का नाम बताओ?
3. बिहारी का काव्य मुक्तक काव्य क्यों कहा जाता है।?
4. बिहारी की कविता का वर्ण्य विषय बताओ।
5. बिहारी ने किस छन्द में काव्य रचना की है।
6. बिहारी गागर में सागर भरने वाले कवि हैं।
7. बिहारी की बहुज्ञता समझाइए।

## 1.4 प्रतिपाद्य

**(क) शृंगार**–रीतियुगीन रससिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्होंने सामान्य जीवन को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से जाँचा-परखा था। आश्रयदाता जयसिंह के दरबार में रहकर एक ओर तो उन्होंने राजदरबार की अपेक्षाओं को अपने दोहों के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया था और दूसरी ओर सामान्य लोक जीवन में भी गहरी पैठ का संकेत दिया था। यह बात अलग है कि आम आदमी के सामान्य जीवन-व्यवहार का चित्रण करने में उनका मन नहीं रमा। हाँ, जहाँ, कहीं जन सामान्य के क्रिया-कलाप उनके काव्य का विषय बने हैं। वहाँ भी उनका ध्यान चमत्कारप्रधान और व्यंजनात्मक, अभिव्यक्ति की ओर अधिक रहा।

रीतिकाव्य की शृंगार प्रधानता में बिहारी का योगदान बहुत अधिक है। उनके दोहों में चित्रित नायक-नायिका अथवा प्रेमी-प्रेमिका अत्यन्त चतुर और प्रौढ़ हैं। उन्हें किसी भी परिस्थिति में स्वार्थ पूर्ति करने की सारी विद्याओं का ज्ञान है। चाहे परिवार जनों के साथ बैठे राधा-कृष्ण हों या गाय चराने की ग्रामीण जीवन-पद्धति में व्यस्त ग्वाल-ग्वालिन रूप में राधा और कृष्ण की चतुराई हो। उनमें प्रेम की सहज, स्वच्छ, व्यंजनात्मक और आन्तरिक विशेषताओं की कमी नहीं है। यह कार्य भक्त कवियों ने भी



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बहुत किया है किन्तु वहाँ इन आलम्बन-आश्रय (प्रेमी-प्रेमिका) पर भक्ति-भाव की प्रधानता मिलती है। किन्तु रीतिकाल में विशुद्ध भौतिक प्रेम-भाव ने इनके स्वरूप को अधिक प्रसार प्रदान किया है।

श्रृंगारप्रधान छंदों के प्रतिपाद्य में भाव प्रेरित क्रियाकलाप विशेष महत्त्व रखता है। राधा द्वारा कृष्ण की बाँसुरी छिपा लेना केवल प्रेम की अंतरंग बातचीत की प्रेरणा का फल था। परन्तु बात हुई भी तो केवल बाँसुरी माँगना और मना कर देने की औपचारिकता की पूर्ति करते हुए। इसी प्रकार अपने प्रिय को बार-बार निहारने के काम में व्यस्त प्रेमिका अपने नेत्रों की उच्छृंखलता तथा अपनी परवशता की व्यंजना बहुत चतुराई से करती है। प्रिय को देखने में लज्जा नहीं होनी चाहिए– इस सहज तथ्य को बिहारी ने लाक्षणिक शैली में व्यक्त किया है। ध्यान देने की बात तो यह है कि रीतियुगीन जीवन-व्यवहार में नायिकाएँ अपने प्रिय से मिलने के लिए उपयुक्त स्थान और समय का संकेत भी देने में नहीं हिचकिचाती। 'घाम घरीक निवारिए' जैसा दोहा एक ओर प्रौढ़ प्रेमी-प्रेमिकाओं का संकेत करता है, तो दूसरी ओर स्नेह भाव की गहराई और दबाव को बताता है वहीं तीसरी ओर समाज की कपट-पूर्ण ईर्ष्यालु आँखों से दूर हटना चाहता है।

श्रृंगार विषयक दोहों में नायक-नायिका के शारीरिक रूप सौन्दर्य का वर्णन भी विशेष महत्त्व रखता है। इस संदर्भ में रीतिकवियों नेनारी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। बिहारी भी इसका अपवाद नहीं हैं। नारी की देह की चमक इतनी अधिक है कि दीपक आदि के बुझा देने पर भी घर में अंधेरा नहीं होता। क्योंकि हीरों के समान चमचमाता हुआ नायिका का शरीर घर में उजाला किए हुए है। इसी प्रकार कृष्ण की रूप माधुरी की विलक्षणता यह है कि हृदय में छिपी होने पर भी संसार में प्रतिबिम्बित रहती है। एक अन्य दोहे में नारी में मछली जैसे दो नेत्र घूँघत के भीतर से भी अपनी चंचल उछल-कूद को नहीं छोड़ पाते। इन छंदों में यद्यपि अतिशयोक्ति और चमत्कार की प्रधानता है तथापि कल्पना का संयमित उपयोग प्रेमी-युगल की भावप्रवणता को सहज और चतुराई पूर्ण शैली में अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है।

## नीति

रीतिकाव्य में श्रृंगारिकता के साथ-साथ नीतिगत कथनों का भी विशेष स्थान है। समाज-नीति, नागरिक-व्यवहार, और जन सामान्य की लोकरीति आदि का चित्रण 'बिहारी सतसई' की एक अन्य विशेषता है। इसी विषयवस्तु के छंदों से तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक व्यवहार तथा सामाजिक नीति की व्यंजना भली-भाँति हो जाती है।

इस विषयवस्तु के छंदों में बिहारी ने स्पष्ट लिखा है कि आत्मसंतोष और धैर्यपूर्ण जीवन-संचालन व्यक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसा संतोषी व्यक्ति सुख और दुख के अवसर पर विचलित नहीं होता। बल्कि इसे अपने कर्म का फल तथा ईश्वर का दान समझकर साहसपूर्ण सहन करता है। बिहारी जानते थे कि सुख में आदमी अहंकारी होकर परमात्मा को भी भुला देता है पर दुख भोगने पर उतावला हो जाता है और ईश्वर तक को कोसने लगता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दूसरी विशेषता यह है कि गुणहीन तथा सामर्थ्यहीन व्यक्तियों के निर्णय और प्रचार-प्रसार से किसी सामर्थ्यवान गुणी व्यक्ति की कुछ भी हानि नहीं होती। चाहे गंध की अनुभवहीनता वाला पीनस-रोगी हो या अरक के पेड़ को सूर्य का दर्जा देने वाला कोई मूर्ख ही क्यों न हो। बिहारी का प्रतिपाद्य है कि अनर्गल प्रलाप करने वालों की परवाह हमें नहीं करनी चाहिए। बल्कि वास्तविकता को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए। स्वार्थी और लोभी वृत्ति के कारण व्यक्ति विवेक शून्य भी हो जाता है। उसके द्वारा छोटे-बड़े का अन्तर भी नहीं किया जाता। ऐसे व्यक्तियों को लताड़ता हुआ कवि कहता है कि हमें स्वार्थ और संकीर्णताओं से बाहर निकलना चाहिए क्योंकि गुणों का सही मूल्यांकन करने से ही कार्यसिद्ध होता है।

जो लोग गुणहीन, असामर्थ्यवान और अविवेकी होते हैं वे झूठे घमण्ड के कारण 'थोथा चना बाजे घना' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए यह समझते हैं कि उन्हीं के द्वारा समाज का भला होता है। जबकि ऐसा नहीं है। चूहे के शरीर की चमड़ी से बड़े-बड़े नगाड़ों को नहीं मढ़ा जा सकता। उसके लिए तो बड़े-बड़े चमड़े की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर यह भी सच है कि जो नीच वृत्ति का व्यक्ति होता है वह नीचता कभी नहीं छोड़ पाता। साथ ही साथ यह भी सच है कि जो व्यक्ति अपने हृदय में उदात्त भावनाएँ लाता है, उदार होकर सोचता है, विनम्र स्वभाव से दूसरों से व्यवहार करता है वास्तव में उसी में बड़प्पन होता है। उसके महत्त्व को सारा संसार महसूस करता है।

इस सबसे भिन्न बिहारी ने दुनियादारी की एक अन्य सच्चाई को भी उद्घाटित करते हुए लिखा है कि प्रायः भले को भला-भला कहकर उपेक्षित किया जाता है। कोई भी उसे महत्त्व नहीं देता जबकि बुरे, षड्यंत्रकारी, कपटी और हानिकर व्यक्ति को सब अपने पास बुलाकर उसका स्वागत-सम्मान करते हैं ताकि वह ज्यादा हानि न पहुँचा सके। जैसे हमेशा बुरे ग्रह-नक्षत्रों को ही सदैव पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा आदि उपायों द्वारा पूरे सम्मान के साथ अनुकूल बनाने की कोशिश की जाती है। कवि की दूरदर्शिता समाज की इन खोखली मान्यताओं, और अविवेकपूर्ण जीवन-दृष्टि का पर्दाफाश करने की पूरी क्षमता रखती है। इन नीतिपूर्ण दोहों के प्रतिपाद्य से उस युग की बनावटी, स्वार्थी, संकीर्ण और असामाजिक तथा अव्यावहारिक जीवन-व्यवस्था की व्यंजना भी हो जाती है। बिहारी इन सबके विरोधी थे।

## भक्ति

रीतिकाव्य में शृंगार और नीतिपरक छंदों के अतिरिक्त कभी-कभी भक्तिभाव का प्रदर्शन भी मिलता है। रीतिकवि भी सामान्य प्राणी थे इसलिए भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न शृंगारिक वातावरण से अलग हटकर कभी-कभी आत्मिक और आध्यात्मिक उत्थान के विषय में भी सोचते होंगे। इसी क्रम में उनके काव्य में भक्तिभाव के दर्शन यदा-कदा हो जाते हैं। सच बात तो यह है कि शृंगार, नीति, भक्ति और वीरभाव के सन्तुलित अध्ययन के आधार पर रीतिकाव्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भक्तिभाव के छंदों में बिहारी की अत्यन्त उदार, भाव-विभोर और एकनिष्ठा को अभिव्यंजना मिलती है। हाँ, उनकी वर्णन-शैली युग की चमत्कारप्रधान प्रवृत्ति के अनुरूप व्यंजनात्मक भाषा-सौन्दर्य से परिपूर्ण है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कृष्ण और राम ने इस पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक अधम और दीनहीनों का उद्धार किया था। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कवि प्रगल्भतापूर्ण शैली में कहता है कि हे ईश्वर! आज तक जितने दीन-हीन प्राणियों का उद्धार तुमने किया वे सब तो तुच्छ थे। उनसे तुम्हें पतितपावन का जो यश मिला वह झूठा था। इसलिए तुम्हें ज्यादा इतराने और घमण्ड करने की आवश्यकता नहीं है। अपितु मुझ जैसे दीन-हीन व्यक्ति का उद्धार करने पर ही तुम्हें वास्तव में यश मिल सकेगा। इसी प्रकार अपने आराध्य के कलियुगी दानियों को समान चित्रित करके उनके सहज स्वभाव का आह्वान करना चाहता है। ईश्वर का स्वभाव है कि किसी भी सामान्य गुण वाले दीन-हीन भक्त का वे शीघ्र ही उद्धार करने दौड़ते थे किन्तु आजकल के दिखावटी दानियों के समान उन्हें भी भक्त के अब बड़े-बड़े गुण नजर नहीं आते। इन छंदों में कविवर बिहारी ने एक ओर परमात्मा की स्वाभाविक विशेषताओं का जिक्र किया है वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के द्वारा संकीर्णता, स्वार्थ, प्रदर्शनशीलता जैसी झूठी और तुच्छ वृत्ति का संकेत भी दिया है। उसका मानना है कि ईश्वर पर भी आज के भौतिक समाज का प्रभाव पड़ गया है।

भक्तिपरक दोहों के द्वारा कवि यह भी प्रतिपादित करना चाहता है कि भक्ति के लिए एकनिष्ठा बहुत जरूरी है। सांसारिक चकाचौंध के कारण जीव के निष्ठा भाव में कमी आती जा रही है जो अच्छी बात नहीं है। इसलिए कवि का विचार है कि सांसारिक सुख-सुविधाओं का संग्रह, करोड़ों की धनराशि एकत्रित करने की होड़ में वह नहीं फँसेगा बल्कि सबसे श्रेष्ठ और स्थायी सम्पत्ति के आधार पर कृष्ण को अपना सर्वस्व सौंप देगा, वही उसके सांसारिक कष्ट क्लेशों का हरण करके आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इसी प्रकार बिहारी दुनियादारी में फँसे कर्मकाण्डी भक्तों से भिन्न अपनी इंद्रियों की एकाग्रता और मन की सच्चाई को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाता है। ध्यान देने की बात यह है कि भक्तिभाव के उद्घाटन में वह कृष्ण और राम के अवतारों का एक साथ स्मरण करता है। यह उनकी सर्वांगीण और उदार भक्तिपूर्ण दृष्टि का प्रमाण है। बिहारी के भक्तिपरक छंदों की इस संतुलित और अनौपचारिक स्वच्छ दृष्टि का महत्त्व समझना चाहिए।

## 1.5 व्याख्या

**दोहा–** **मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।**
**जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होई।।1।।**

।। श्री गोपीजनवल्लभाय नमः।।

**शब्दार्थ–भाव** = संसार। **बाधा** = रुकावट, विघ्न। **भव-बाधा** = संसार के विघ्न। अर्थात् दुःख, द्वारिद्र तथा अनेक प्रकार की चिन्ताएँ इत्यादि, जो बाधा–रूप में उपस्थित होकर संसार के मनुष्यों को किसी उत्तम अभीष्ट का एकाग्रतापूर्वक साधन नहीं करने देतीं। स्मरण रहे कि कवि परिपाटी में दुःख दारिद्रादि का रंग काला माना जाता है। 'भव–बाधा' का अर्थ टीकाकारों ने बहुधा जन्म-मरण का दुःख लिखा है। वह भी ठीक है, पर यहाँ पर शब्द ग्रंथ के मंगलाचरण में आया है। अतः यहाँ कवि की यही प्रार्थना



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विशेष संगत है कि हमारे अनेक प्रकार के चिन्तादि-जनित विघ्नों का निवारण कीजिए जिसमें ग्रंथ के पूर्ण होने में विघ्न न हो। **झाँईं** = इस शब्द के यहाँ तीन अर्थ लिखे गये हैं–(1) परछाँही, आभा; (2) झाँकी, झलक; (3) ध्यान। प्राकृत व्याकरणों के 'ध्यह्योर्झः', इस सूत्र के अनुसार 'ध्य' के स्थान में 'झ' होकर 'ध्यान शब्द से झाँई बन जाता है। त्रिविक्रम ने अपने प्राकृत व्याकरण में 'ध्यान' शब्द का 'झाण' रूप लिखा भी है। 'न' के सथान पर बहुधा 'यँ' भाषा के शब्दों में देखा जाता है; जैसे 'दाहिने' के स्थान पर 'दायें'। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत-व्याकरण में जो निम्नलिखित छंद अपभ्रंश के उदाहरण में रखा है, उसमें ध्यात्वा का अपभ्रंश रूप 'झोइवि' प्रयुक्त हुआ है–

**दोहा–** **दहमुहु भुवण-भयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रह-वरि चडिअउ।**
**चउमुहु छंमुहु झाइवि एक्कहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ।।**

**शब्दार्थ–परैं** = पड़ने से। इस शब्द के भी निम्नलिखित तीन भावार्थ 'झाँई' के तीनों अर्थों से यथाक्रम अन्वित होते हैं– (1) तन पर पड़ने से; (2) दृष्टि में पड़ने से; (3) हृदय में पड़ने से। **स्यामु** (श्याम)– यह शब्द भी यहाँ तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है– (1) श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र; (2) श्रीकृष्णचंद्र; (3) काले रंग वाला पदार्थ अर्थात् कल्पष, पातक, दुःख, दारिद्रादि, जिनका रंग कवि परिपाटी में काला नियत है। उपादान लक्षणा शक्ति से 'श्याम' का अर्थ श्याम रंग का पदार्थ होता है, जैसे 'सुरंग दौड़ता है' वाक्य में 'सुरंग' शब्द का अर्थ सुरंग घोड़ा होता है। फिर साहित्य की परिपाटी के अनुसार काले पदार्थ से पातक, कल्पष इत्यादि का ग्रहण हो जाता है। **हरित-दुति** (हरित-द्युति)–इस शब्द के भी इस दोहे में तीन अर्थ ग्रहण किये गये हैं–(1) हरे रंग वाला; (2) हराभरा, डहडहा अर्थात् प्रसन्न-बदन; (3) हृतद्युति, गतद्युति, हतप्रभ अर्थात् तेज-हीन, प्रभाव-शून्य, अथवा भयंकरता-रहित। द्युति का अर्थ नाटकों में भयंकर चेष्टा भी होता है। इस अर्थ में 'हरित' शब्द हृत का अपभ्रंश है।

**अवतरण**–अपनी सतसई की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से कवि, इस मंगलाचरण-रूप दोहे में, श्रीराधिकाजी से सांसारिक बाधा दूर करने की प्रार्थना करता है। सतसई में यद्यपि और रसों के भी दोहे हैं, तथापि प्रधानता शृंगार ही रस की है। इसके अतिरिक्त शृंगार रस में सब रसों की स्थायियाँ संचारी होकर संचरित होती हैं, जिसके कारण वह रसराज कहलाता है। अतः सतसई में शृंगार रस के मुख्य प्रवर्तक श्रीराधाकृष्ण ही का मंगलाचरण रहना समीचीन है। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में भी, शृंगार रस में प्रधानता श्रीराधिकाजी ही की है और कवि जिस सम्प्रदाय का अनुयायी था, उसमें भी श्रीराधिकाजी ही प्रधान मानी जाती है। अतः उसने श्रीराधिकाजी ही से अपनी 'भव-बाधा' हरने की प्रार्थना की है–

**अर्थ**–जिसके तन की झाँई पड़ने में श्याम हरित-द्युति हो जाता है, ''राधा नागरि सोइ'' (हे वही राधा नागरी, अथवा वही राधा नागरी) मेरी भव-बाधा हरो (तुम हरो, अथवा हरें।।)

इस दोहे में 'राधा नागरि' पद संबोधन भी माना जाता है और प्रथम पुरुषवाची भी; क्योंकि 'हरौ' क्रिया का अन्वय, प्रार्थनात्मक वाक्य में, मध्यम पुरुष से भी हो सकता है और प्रथम पुरुष से भी। फिर मंगलाचरण में, आराध्य देवता से, मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष, दोनों ही रूपों में प्रार्थना करने की प्रणाली प्रशस्त है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

यह दोहा बिहारी की प्रतिभा का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कवि ने 'झाँईं', 'स्यामु' तथा 'हरित-दुति' शब्दों के तीन-तीन अर्थ रखकर एक ही वाक्य से तीन भाव निकालें हैं, जो तीनों ही उसके इष्टार्थ के साधक हैं।

पहला अर्थ तो इस दोहे का यह हुआ–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की परछाँहीं अर्थात् आभा पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र हरे रंग की द्युति वाले हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो।।

इस अर्थ से कवि श्रीराधिकाजी के शरीर की गुराई की प्रशंसा करता है कि वह ऐसे सुनहरे रंग की है कि उसकी आभा पड़ने से श्रीकृष्णचंद का श्याम रंग हरा हो जाता है। पीले तथा नीले रंगों के मेल से हरे रंग का बनना लोक-प्रसिद्ध ही है। इसी भाव को कवि ने अपने ''नित प्रति एकत ही इत्यादि'' दोहे में भी कहा है, और माघ का एक श्लोक भी गौर तथा श्याम छवियों के, पारस्परिक आभा से, हरी हो जाने के वर्णन में है, जो कि ''नित प्रति एकत ही इत्यादि'' दोहे की टीका में उद्धृत किया है। इस भाँति उनके रूप की प्रशंसा करके कवि उनसे अपनी भव-बाधा दूर करने की विनती करता है।

अब दूसरा अर्थ नीचे लिखा जाता है–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की झाँकी अर्थात् झलक (आँखों में) पड़ने से (दिखाई देने से) श्रीकृष्णचन्द्र हरे-भरे अर्थात् प्रसन्न-वदन हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो।।

इस अर्थ से कवि, श्रीराधिकाजी के श्रीकृष्णचन्द्र की अत्यन्त प्रेमपात्री होने की प्रशंसा करता हुआ उनसे अपनी भाव-बाधा निवारण करने की प्रार्थना करता है।।

ऊपर कहे हुए दोनों अर्थों से कवि, श्रीराधिकाजी के रूप तथा प्रियतम-प्रियता की प्रशंसा करता हुआ, निम्नलिखित तीसरे अर्थ से उनमें भव-बाधा हरने का सामर्थ्य सिद्ध करके, उनको अपनी भव-बाधा हरने पर उद्यत करता है। इस सामर्थ्य के सिद्ध करने से कवि का यह तात्पर्य है कि अपने सामर्थ्य का स्मरण करके, वह शीघ्र ही उसकी भव-बाधा हरने के लिये उत्साहित हो जायें।।

वह तीसरा अर्थ यह है–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन (रूप) का ध्यान पड़ने से (भक्त के हृदय में आने से) काले रंग वाला। (पदार्थ अर्थात् कल्मष, पातक इत्यादि) (गतद्युति अर्थात् अपनी कल्मषता से रहित) हो जाता है (अर्थात् अपना दुःखद प्रभाव छोड़ देता है), मेरी भव-बाधा (सांसारिक दुःख, दारिद्र, चिंता इत्यादि; जिनका रंग कवि-परिपाटी में काला माना जाता है) हरो।।

ऊपर के तीनों अर्थों में 'राधा नागरि' पद संबोधन माना गया है। उसे प्रथम पुरुष-वाची मानकर भी इस दोहे के के यही तीनों अर्थ हो सकते हैं।

हमारी पाँचों प्राचीन पुस्तकों में से चार में ''मेरी भव-बाधा'' यही पाठ है, और तीसरे अंक की पुस्तक आदि में खंडित है। कृष्ण कवि की टीका के अनुसार भी यही पाठ ठीक ठहरता है। कृष्ण कवि ने,



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अपनी टीका में, प्रत्येक दोहे की जाति का नाम तथा उसके गुरु और लघु अक्षरों की संख्या लिख दी है। इस दोहे में उन्होंने 'करम' लिखा है, जिसमें 32 अक्षर अर्थात् 16 गुरु और 16 लघु होते हैं। यह संख्या 'भव-बाधा' ही पाठ मानने से चरितार्थ होती है, अथवा 'भौ-बाधा हरहु' पाठ रखने से। पर 'हरहु' पाठ किसी पुस्तक में नहीं मिलता। एक पुरानी लिखी हुई पुस्तक, जिसमें दोहों का क्रम पुरुषोत्तमदासजी के बाँधे हुए क्रम के अनुसार है, हमको वृन्दावन में मिली है। उसमें 'भौ-बाधा'' पाठ तो है, 'हरहु' पाठ उसमें भी नहीं है। अतः यदि 'भौ-बाधा' पाठ शुद्ध माना जाय, तो यह दोहा करभ जाति का नहीं रहता, जैसा कि कृष्ण कवि ने इसको लिखा है। कृष्ण कवि ने अपनी टीका संवत् 1782 में समाप्त की थी। अतः यह बात स्पष्ट है कि उस समय, जब कि बिहारी को मरे बहुत दिन नहीं बीते थे, भव-बाधा ही पाठ प्रसिद्ध था, पर विचारने की बात यह है कि मंगलाचरण के दोहे के आदि में बिहारी ने मेरी 'भव-बाधा' कैसे रखा होगा; क्योंकि इस पाठ के आदि में तगण पड़ता है, जो कि अशुभ माना जाता है। इसी इसी को यदि वह 'मेरी भौ-बाधा' कर देते, तो आदि में शुभ गणम-गण पड़ जाता और छन्द में भी कोई त्रुटि न पड़ती। यह कहना तो असंगत ही होगा कि बिहारी गण विचार नहीं जानते थे; क्योंकि यह तो ऐसी सामन्य बात है कि इसको थोड़ा पढ़े हुए लोग भी जानते हैं। इसके अतिरिक्त 'भव-बाधा' को 'भौ-बाधा' कर देने में कोई कठिनाई भी न थी। फिर बिहारी ने, मंगलाचरण के दोहे के आदि में 'भव-बाधा' क्यों लिखा? इसके दो कारण हो सकते हैं– पहला तो यह कि बिहारी के दोहे बहुधा, उनके मुख से सुनकर, राजसभा के लेखक अथवा बिहारी के शिष्य लिख लिया करते थे, अतः संभव है कि यह पाठ लिखने वालों के प्रमाद से प्रचलित हो गया हो; दूसरा यह कि बिहारी ने इस दोहे को मंगलाचरण में रखने के अभिप्राय से न बनाया हो, पर सतसई संकलित करते समय, इसको इस योग्य देखकर, मंगलाचरण में रखदिया हो, और इसके आदि के गण पर ध्यान न दिया हो। जो हो हमारी समझ में 'मेरी भौ-बाधा हरौ' पाठ होता, तो अच्छा होता। पर प्राचीन पुस्तकों में 'मेरी भव-बाधा हरौ' ही पाठ होने के कारण यही पाठ इस संस्करण में रखा गया है।

**दोहा–** **कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।**
**भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सब बात।।32।।**

**शब्दार्थ–मिलत** – मेल कर लेते हैं। **खिलत** = खिल उठते हैं, प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

**अवतरण–**नायक और नायिका की चातुरी से, आँखों की चेष्टा के द्वारा ही हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कर देने का वर्णन सखी सखी से करती है–

**अर्थ–**(देखा, कैसी चातुरी से ये दोनों गुरुजन से) भरे हुए भवन में आँखों ही में सब (अपने अभीष्ट की) बात कर लेते हैं (अपने अभिप्राय परस्पर प्रकट कर देते हैं) (कभी कुछ) कहते हैं, (कभी) नटते हैं (निषेध करते हैं), (कभी) रीझते हैं, (कभी) खीझते हैं, (कभी फिर) मेल कर लेते हैं, (कभी) खिलते हैं (प्रफल्लित होते हैं), (और कभी) लजाते हैं।

अथवा पूर्वार्द्ध का अर्थ यों किया जाये–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(नायक कुछ) कहता है (रति की प्रार्थना करता है), (जिस पर नायिका 'मन में भावै, मुड़ी हिलावै' न्याय से) नटती है (निषेध करती है)। (नायक उसकी इस निषेध करने की चेष्टा पर) रीझता है, (तब नायिका उसकी रीझने की चेष्टा पर बनावट से) खीझती है। (फिर दोनों) मेल कर लेते हैं, (जिस पर नायक, नायिका के चटपट खीझ छोड़ देने पर,) हँस देता है, (और नायिका उसके हँस देने पर) लज्जित हो जाती है।

**दोहा– कनकु कनकु तैं सौ गुनी.....पाए हीं बौराइ।**

**शब्दार्थ–कनकु**–सुवर्ण, सोना, धन–दौलत, ऐश्वर्य। **कनक** = धतूरा, एक नशीला पदार्थ। **मादकता** = नशीला–पन। **बौराइ** = (1) पागल हो जाना, नशा चढ़ जाना; (2) इतरा जाना, अपने सामने किसी दूसरे को कुछ न समझना।

**व्याख्या**–बिहारी संसार में मिलने वाले दो पदार्थों की भौतिक सीमितता को प्रकट करते हुए कहते हैं कि कनकु अर्थात् सोना, धन–दौलत का नशा कनक अर्थात् धतूरे के नशे से सौ गुना ज्यादा होता है। धतूरे को तो खाकर नशा चढ़ता है किन्तु धन–दौलत और ऐश्वर्य तो मिलने मात्र से व्यक्ति पर नशा चढ़ा देती है।

**विशेष**– (1) बिहारी जैसा व्यवहार कुशल और समाज को नजदीक से समझने वाला कवि संसार में आपा खो देने वाले दो पदार्थों सोना और धतूरे को एक दूसरे से बढ़–चढ़कर बताता है। इससे मध्यकालीन समाज में आपा खो नशे में चूर रहने देने वाले स्वभाव का बहुत सही संकेत दिया है।

(2) इस दोहे की वास्तविकता और विश्वसीनयता इस युग में भी सत्य है कि धन–दौलत, पद, हैसियत आदि का नशा बहुत जल्द ही आदमी को अपनी गिरफ्त में ले लेता है। धतूरे जैसे किसी नशीले पदार्थ को खाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

(3) इसलिए यह छंद आज के युग का सच भी बहुत पैनेपन से व्यंजित कर पाता है। अतः कवि अपनी दूरदृष्टि के कारण अपने समय और स्थान का अतिक्रमण करके हमारे आज के सच के साथ खड़ा हुआ नजर आता है।

(4) 'कनकु' और 'कनक' में यमक अलंकार का सौंदर्य छंद के कथ्य को उद्घाटित करता है।

(5) यह बिहारी की सामाजिकता और लोक–व्यवहार की गहन क्षमता का परिचायक है। जिससे रीतिकालीन काव्य की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है।

## 1.6 अभ्यास प्रश्न

1. बिहारी की भाषा को समझाइए।
2. बिहारी की बहुज्ञता पर प्रकाश डालिए।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3. बिहारी की सामाजिकता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. बिहारी गागर में सागर भरने वाले कवि हैं।

## 1.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास –सम्पादक : डॉ. नगेन्द्र।
2. बिहारी की वाग्विभूति –विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास –आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 2. घनानंद

**लेखक**–प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

2.1 अधिगम का उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 कवि का साहित्यिक परिचय
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 कविता का प्रतिपाद्य
2.5 महत्त्वपूर्ण पदों की व्याख्या
2.6 अभ्यास प्रश्न
2.7 संदर्भ ग्रंथ

## 2.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य

- घनानंद के जीवन परिचय को समझेंगे।
- रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्य परंपरा में घनानंद का मूल्यांकन समझेंगे।
- घनानंद की काव्यगत की विशेषताएँ समझ सकते हैं।
- घनानन्द के प्रेम मार्ग को समझ सकते हैं।
- घनानंद की 'काव्य भाषा के गुण को समझ पाएँगे।

## 2.2 प्रस्तावना

घनानंद रीतिकलीन काव्य परंपरा में रीतिमुक्त काव्य धारा के अग्रणी कवि थे। रीतिकालीन कविता में जहां अभिव्यक्ति पक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा था वहां घनानंद ने इस परंपरा से अलग अपने काव्य में अनुभूति पक्ष को अधिक महत्व दिया। उनका लौकिक प्रेम ही आगे चलकर अध्यात्मिक प्रेम के रूप में विकसित होता है। इसलिए उनके काव्य में प्रेम रति और भक्ति दो रूपों में व्यक्त हुआ है। घनानंद मूलतः एक प्रेमी कवि थे। उनके काव्य में इस प्रेमपरक अनुभूति के दर्शन किए जा सकते है। उनके प्रेम में गंभीरता के भी दर्शन होते हैं। वे प्रेम में ईमानदारी और सहजता की पक्षधरता करते हैं। उनके अनुसार प्रेम में छल–कपट और चालाकी का कोई स्थान नहीं होता। उनके काव्य में विरह की वेदना



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

को अभिव्यक्ति मिली है इसलिए उन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि भी कहा गया है। उनकी काव्य भाषा में लक्षणा और व्यंजना का भरपूर प्रयोग है। साथ ही अलंकारों का सहज प्रयोग भी यहां देखा जा सकता है।

रीतिकाल हिन्दी का गौरवशाली काल है। इस काल के कवियों को विद्वानों ने तीन कोटियों में विभक्त किया है– रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। पहले वर्ग के अंतर्गत वे कवि आते हैं, जिन्होंने प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा का निर्वाह कर लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया। इस तरह के कवियों में चिंतामणि, भिखारीदास, देव मतिराम, पद्माकर आदि कवियों के नाम गिनाए जाते हैं। दूसरे वर्ग में उन कवियों को रखा गया है, जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ न लिखकर लक्षण को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य ग्रन्थों का निर्माण किया। ऐसे कवियों में बिहारी और रसनिधि प्रमुख हैं। तीसरा वर्ग ऐसे कवियों का है, जिन्होंने रीतिकाल की बँधी-बँधाई परिपाटी को त्यागकर स्वच्छन्द रूप से शृंगार काव्य की रचना की। इन कवियों की यह स्वच्छन्दता भाव एवं शिल्प दोनों स्तरों पर प्रशंसनीय रही है। ऐसे कवियों को रीतिमुक्त कवियों के नाम से जाना जाता है। इन रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द आलम, बोधा, ठाकुर आदि का नाम उल्लेखनीय है। घनानन्द इन कवियों में सिरमौर है।

## 2.3 कवि का साहित्यिक–परिचय

घनानंद की जीवनगाथा का तानाबाना हिंदी के अन्य प्राचीन कवियों की भाँति जहाँ–तहाँ के उल्लेखों का संचय करने के बाद बुना गया है। उनका जन्म वि. संवत 1746 (ई. सन् 1600 के लगभग) दिल्ली में हुआ माना जाता है। वे मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के दरबार में मीर मुंशी के पद पर काम करते थे। मोहम्मद शाह राजकाज से अधिक रंगीनमिजाजी में अधिक रुचि लेता था, इसलिए उसके नाम के आगे 'रंगीला' शब्द जोड़ दिया जाता था। उसके दरबार में संगीत–नृत्य का बोलबाला था। उसके दिलबहलाव के लिए सुजान नामक एक सुन्दरी वेश्या थी, जिसके सौंदर्य और नृत्य पर घनानंद रीझे हुए थे। घनानंद स्वयं अच्छे गायक थे। वे ध्रुपद और ख्याल गाया करते थे, जिसके साथ सुजान नृत्य किया करती थी। दरबारियों द्वारा बादशाह के कान भर देने के कारण प्रेमी घनानंद को दरबार से निकाल दिया गया, पर सुजान किसी लाचारीवश उनके साथ नहीं गयी। वे वैराग्य लेकर वृंदावन की ब्रजरज में कृष्णभक्ति का काव्य लिखने लगे, लेकिन वे अपनी सुजान को नहीं भुला पाये, इस कारण कृष्ण के लिए 'सुजान' शब्द अपनी भक्ति–कविता में रखते रहे। अफगानी लुटेरे अहमदशाह अब्दाली के द्वारा दो बार दिल्ली मथुरा, वृंदावन को रौंदा गया, जिसके पहले आक्रमण में अब्दाली के सैनिकों द्वारा 'जर' माँगने पर 'ब्रजरज' देने के परिणामस्वरूप घनानंद को कत्ल कर दिया गया। वह घटना वि.सं. 1796 में घटित हुई।

घनानंद जाति से कायस्थ थे, इसलिए फारसी और उर्दू के विद्वान थे, लेकिन ब्रजभाषा पर उनका पूरा अधिकार था, इसलिए उन्होंने फारसी में केवल एक मसनवी लिखी, लेकिन ब्रजभाषा में उनके नाम से लिखित 41 रचनाएँ मिलती हैं। इनमें कुछ प्रेमपरक हैं और अधिकतर भक्तिपरक। उनकी ख्याति



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

उनके प्रेमपरक काव्य के कारण अधिक फैली। उनकी प्रेमपरक कविताओं में निजी जीवन की प्रेमकथा को आधार बनाया गया है। ऐसी कविता प्रेमिका सुजान के नाम समर्पित हैं। उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं–**सुजान–हित और घनानंद कवित्त।** इनके अतिरिक्त प्रेम सरोवर, प्रीति पावस, प्रेम पद्धति, रसनायण, गोकुल गीत, कृष्ण कौमुदी भी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

स्वच्छन्द कवि घनानंद ने अपनी कविता में प्राचीन काव्यशैली का अनुकरण न करके नये ढंग अपने प्रेम को व्यक्त किया है। उनका प्रेम काव्यशास्त्रीय नहीं था, स्वानुभूत था, इसलिए उसका धरातल शास्त्र नहीं, हृदय है। उनका प्रेम रीति और भक्ति दो रूपों में व्यक्त हुआ है। उनका प्रेम निजी, एकनिष्ठ, निःस्वार्थ, समर्पणपरक और समस्त बंधनों से मुक्त है। इनके प्रेम में संयोग में भी वियोग का भय बना रहता है। एक पल को भी चैन नहीं है। एक तपस्वी की भाँति उन्होंने प्रेमिका के लिए तप किया है, चातक की भाँति प्रेम की स्वाति बूँद के लिए प्रतीक्षा की है तथा चकोर की भाँति अपने सुजान–चंदा से मिलने की व्याकुलता अनुभव की है–

जब तें निहारे घनानंद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की।

घनानंद जब लौकिक सुजान को नहीं पा सके तो वे आलौकिक सुजान (श्रीकृष्ण) की भक्ति करने लगे। उन्होंने लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में बदल लिया। वे लौकिक प्रेम में असफल होकर अलौकिक प्रेम की ओर चले गये थे, लेकिन उनका प्रेमी हृदय सुजान को न भुला सका। इस उक्ति को पढ़कर आप यह नहीं जान पायेंगे कि यह प्रेमी घनानंद ने प्रेमिका सुजान के लिए कही हैं या प्रेमिका गोपी ने प्रेमी श्रीकृष्ण के लिए–

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयो है मन मेरो न सिखै सुनै।

घनानंद के काव्य को पढ़कर यह नहीं कहा जा सकता कि वे निजी जीवन में प्रेम की असफलता से निराश होकर भक्ति की ओर मुड़े थे। उनके काव्य में कहीं भी निराशा का भाव नहीं है। जिस तरह ब्रज की गोपियों श्रीकृष्ण से वियुक्त होकर कभी निराश नहीं हुई, उसी तरह घनानंद कभी निराश नहीं हुए। वृंदावन में गोपीभाव से श्रीकृष्ण की आराधना–वंदना करते रहे। श्रीकृष्ण के चरण जिस ब्रजरज में पड़े थे, उसमें विचरते हुए उन्होंने प्राण दिये थे, इसलिए मरते दम तक वे ब्रजभूमि और ब्रजरज के गुण गाते रहे। वहाँ के धर्म, विश्वास, लोकाचार, तीर्थ, गाँव आदि का बखान करते रहे। वहाँ की समग्र संस्कृति की सौंधी सुगंध उनके पूरे कृष्णभक्ति काव्य में है।

घनानंद रीतिकाल के कवियों की भीड़ में अलग चमकते हैं। इस चमक का कारण यह है कि उन्होंने निजी प्रेम की अनुभूति को स्वर दिया है। अपने संयोग और वियोग के दिन उन्होंने सुजान के साथ बिताये थे तथा अपनी स्मृति में बसे विगत पलों को कविता के माध्यम से याद किया है। उनकी कविता हृदय से निकली है, रीतिबद्ध कवियों की तरह बुद्धि से नहीं लिखी गयी, इसलिए उनको



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रीतिमुक्त अथवा रीतिकालीन स्वच्छन्द कवि कहा जाता है। उन्होंने रीतिबद्ध कवियों से अपनी कविता को विशेष बताने के लिए लिखा है–'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कबित्त बनावत।' उनकी कविता में जो निजी 'प्रेम की पीर' है, वह रीतिबद्ध कवियों की कविता में नहीं मिलती है। जैसाकि आधुनिक काल के छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है–'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।' यह बात घनानंद पर शत–प्रतिशत लागू होती है, क्योंकि घनानंद जीवन रहने तक वियोगी कवि रहे और वियोग का भाव ही उनसे कविता लिखवाता रहा।

घनानंद के काव्य में सुजान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है– एक, घनानंद की प्रेमिका सुजान के अर्थ में और दूसरा, श्रीकृष्ण के अर्थ में जहाँ प्रेमिका के अर्थ में सुजान शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ कवि ने या तो अपनी प्रेमिका के रूप–सौंदर्य तथा उसका अपने मन पर पड़े प्रभाव का वर्णन किया है अथवा उससे विछोह के कारण उत्पन्न हुए विरह–भाव की अभिव्यक्ति की हैं। जहाँ सुजान शब्द श्रीकृष्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ कृष्ण–भक्ति'–काव्य की परंपरा में गोपी–मन की संयोग अथवा वियोग दशाओं का चित्रण हुआ है। कभी–कभी कवि–मन और गोपी–मन के भाव मिलजुल कर प्रस्तुत हुए हैं, इसलिए घनानंद के सवैये और कवित्त छंदों में निहित भाव प्रेमिका सजान और प्रेमी श्रीकृष्ण में से किसके प्रति व्यक्त हुआ है, इसको छंद में दिये गये संबोधक शब्द से समझना चाहिए।

घनानंद को उनके प्रथम प्रशंसक ब्रजनाथ ने ब्रजभाषा–प्रवीण की संज्ञा दी है, तो आधुनिक काल के गंभीर समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने घनानंद की रचनाओं में मिलने वाले शुद्ध ब्रजभाषा का चलतापन तथा सफाई को अन्यत्र दुर्लभ पाया है। घनानंद ने अपनी ब्रजभाषा कविता में अंतर्व्यथा का जिस कुशलता और बारीकी के साथ वर्णन किया है, वैसा वास्तव में पूरे ब्रजभाषा काव्य में दुर्लभ है। घनानंद का ब्रजभाषा पर इतना अधिकार है कि वह उनके भावों को व्यक्त करने वाली (दासी) बन गयी है। उनकी भाषा में लक्षणा और व्यंजना भरपूर हैं। उनकी वाणी–वधू उर–भौन में मौन का घूँघट डालकर बैठी रहती है और समय पर अपनी भावना का मुक्त प्रकाश करती है–'उरभौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठि बिराजति बात बनी।' घनानंद की भाषा को मुहावरों के प्रयोग ने और अधिक प्राणवान तथा भावाभिवयंजक बनाया है। ये मुहावरे सटीक अभिव्यक्ति में सहायक हैं। उद्वेग की आगि दहौं, हिय होरी लगाई, पहार से लगत हे, मुँह लागी गाजैं, हिय फटि ना गयौ जैसे कुछ मुहावरों से आप अनुमान लगा सकते हैं कि घनानंद की भाषा इनके प्रयोग से कितनी चमत्कारपूर्ण हो गयी है। जिस तरह मुहावरों से आप अनुमान लगा सकते हैं कि घनानंद की भाषा इसके प्रयोग से कितनी चमत्कारपूर्ण हो गयी है। जिस तरह मुहावरों ने घनानंद की भाषा को चमत्कारपूर्ण बनाया है, वैसे ही अलंकारों के सहज प्रयोग से उनकी भाषा में चमत्कार आया है।' घनानंद ने शब्द और अर्थ–दोनों प्रकार के अलंकारों से अपनी भाषा को सजाया–सँवारा है।

घनानंद संगीत–निष्णात थे, इसलिए उनके कई पदों को राग–रागिनियों के संकेत के साथ प्रस्तुत किया गया है। पद अतिरिक्त उन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा और चौपाई छंदों का उपयोग किया है। ये उनके प्रिय छंद है, लेकिन उनके काव्य में अन्य छंदों का भी अभाव नहीं हैं काव्य–विधा की दृष्टि से



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

घनानंद ने कोई महाकाव्य और खंडकाव्य नहीं लिखा है। स्वच्छंद प्रकृति के कवि से ऐसी आशा भी नहीं की जानी चाहिए। लेकिन उनकी कुछ लंबी कविताएँ प्रबंध कोटि में अवश्य आती हैं। दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि में उनकी प्रबंधात्मकता झलकती है। वैसे घनानंद का काव्य मुक्तक की कोटि में ही आता हैं उनको जब जैसी भावधारा ने तरंगित किया, तब वैसा ही मुक्तक लिख डाला।

### 2.3.1 बोध प्रश्न

1. घनानंद किस विचारधारा के कवि हैं।
2. घनानंद किस राजा के दरबारी कवि हैं।
3. सुजान कौन थी।
4. घनानंद की प्रेम योजना पर प्रकाश डालो।
5. घानानंद की चर्चित रचना का नाम बताओ।

## 2.4 प्रतिपाद्य

घनानंद की कविता में प्रेमिका सुजान के रूप और गुण–सौंदर्य की सुंदर और प्रभावकारी अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमिका सुजान के रूप और गुण का कवि–मन पर वैसा ही गहरा और आकर्षक प्रभाव दिखाई देता है, जैसा श्रीकृष्ण के रूप और गुण का प्रभाव गोपियों के मन पर पड़ा था, इसलिए घनानंद और गोपी दोनों ही अपने–अपने मन के आराध्य के बारे में एक–जैसी रागात्मकता के साथ बात कहते हैं। घनानंद को अपनी प्रेमिका और गोपियों को अपने प्रेमी के रूप में नित नूतन निखार होता दिखायी देता है। ऐसे आकर्षक रूप–सौंदर्य से प्रभावित मन प्रेम के रास्ते पर चल पड़ता है, जो देखने में सीधा है, लेकिन है बड़ा दुःखदाई। इस प्रेम के रास्ते पर सीधे मन वाले ही चल पाते हैं, छली–कपटी नहीं, लेकिन जो इस रास्ते पर चलता है, उसे विषम प्रेम की पीड़ा सहने को तैयार रहना चाहिए, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि जो प्रेमपात्र को पाने के लिए चल पड़े, उसे प्रेमपात्र मिल ही जाए, जैसाकि घनानंद और गोपियों के साथ हुआ। जो इनकी तरह एकनिष्ठ प्रेम करता है, उसे जीवन–भर इन्हीं की तरह विरह–अनल में जलते रहना पड़ता है। विरहकाल में विषम प्रेम से पीड़ित व्यक्ति को चातक के समान प्रेम–प्यास से व्याकुल रहना पड़ता है और ऐसे व्यक्ति को कोयल तथा मोर जैसे व्यक्ति अपनी कटूक्तियों से और अधिक व्याकुल करते रहते हैं। ऐसे विरहाकुल व्यक्ति की पीड़ा तब और बढ़ जाती है जब प्रेमपात्र परदेश में, अपने से बहुत दूर बैठा हो और उसकी प्रेम–पीड़ा के बारे में न स्वयं जान पाता हो, न किसी और के द्वारा ऐसा एकपक्षीय प्रेम प्रेमी को जीवन रहने तक अपने प्रेमपात्र से मिलन की आशा और स्मृति की डोर से बाँधे रखकर दहकाता रहता है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.5 व्याख्या

**दोहा–** **अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।**
**तहाँ साँचे चलें तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसांक नहीं।**
**घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें सूरो आँक नहीं।**
**तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।**

**शब्दार्थ–** **सयानप** = स्यानापन, चतुराई। **बाँक** = टेढ़ापन। **आपुनपो** = अपनत्व। **झझकै** = हिचकते हैं। **निसांक** = निश्शंक। **पाटी पढ़े** = पट्टी पढ़े हो, शिक्षा प्राप्त किये हो। **मन** = हृदय, मन भर। **छटाँक** = थोड़ा-सा भी, छटाँक भर वजन।

**व्याख्या–** कवि घनानन्द अपने प्रिय को प्रेम-मार्ग की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि हे प्रिय! प्रेम का मार्ग अत्यन्त सरल और सीधा है। इसमें टेढ़ेपन अर्थात् चतुराई के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि चतुराई चलने वाला प्रेम के मार्ग पर चलने में सफल नहीं हो सकता। प्रेम का मार्ग तो सच्चे लोगों के लिए है। जो अपना अहं-भाव त्याग कर इस मार्ग पर चलते हैं और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। जिनके हृदय में थोड़ा सा भी छल-कपट है, वे इस मार्ग पर निडर होकर नहीं चल पाते। क्योंकि उन्हें प्रेम में सफलता अथवा असफलता की शंका बनी रहती है। इसलिए ये कपटी लोग इस मार्ग पर चलने में झिझकते हैं। कवि कहता है कि हे सुजान! सच्चा प्रेमी तो वह होता है, जो प्रेम मार्ग पर सीधी रेखा की तरह चल पड़ता है और इधर-उधर की बात नहीं सोचता। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति चलता चला जाता है और इधर-उधर नहीं देखता, ऐसा करने से वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। घनानन्द कहते हैं कि हे प्यारे सुजान! आपने न जाने कौन सी प्रेम की पट्टी पढ़ी है, प्रेम करने की कौन सी रीति सीखी है। आपकी प्रेम-रीति बड़ी अनोखी है। तुम दूसरे का मन तो बड़ी चतुराई से मोह लेते हो, पर बदले में अपना मन जरा भी किसी को नहीं देते हो अर्थात् प्रेम-मार्ग पर चलकर हमने अपना सर्वस्व आप पर न्यौछावर कर दिया, पर तुम्हारा ध्यान हमारी तरफ तनिक भी नहीं जाता।

**दोहा** **रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।**
**त्यौं इन आँखिन वानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।।**
**एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्‌यौ, सुजान, सकोच और सोच सहारियै।**
**रोकी रहै न दहै, घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।**

**शब्दार्थ–** **रावरै** = आपके, **रूप** = सौन्दर्य, **अनूप** = अनुपम, **नयो नयो लागत** = नया नया लगता है। **अघानि** = तृप्त, **जीव** = हृदय, **वारयौ** = न्यौछावर कर दिया। **सोच** = चिंता, **सहारिये** = सहारा दीजिए, **दहे** = जलाती है, **रीझ** = रीझना, मोहित होना।

**प्रसंग–** पूर्ववत्।

**संदर्भ–** प्रस्तुत छन्द में प्रिय के रूप की विलक्षणता पर प्रकाश डाला गया है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**व्याख्या**–कवि अपनी प्रियतमा को उसके रूप सौन्दर्य के विषय में बताता हुआ कहता है कि आपके रूप की रीति बड़ी अनोखी है। इसे ज्यों-ज्यों देखो यह हर बार नया-नया लगता है। यानी सुजान का रूप सौन्दर्य क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। यही सुन्दरता की कसौटी होती है कि वह हर क्षण नवीन लगे। कवि के नेत्रों को भी अनोखी आदत पड़ गई है कि वह सुजान के अतिरिक्त और किसी को देखना भी पसन्द नहीं करते। यह देखते भी हैं तो किसी और को देखकर उन्हें तृप्ति नहीं मिलती। उन्हें हर समय सुजान को देखना ही अच्छा लगता है। प्रिय के पास एक ही प्राण थे सो वह अपनी प्रियतमा पर न्यौछावर कर देता है। अतः अब उसके प्राण भी उसके बस में नहीं हैं। घनानन्द जी कहते हैं कि हे प्यारे सुजान! अब मेरे शोक और चिन्ता को तुम ही सम्भालो। तुम ही इन्हें दूर कर सकते हो। मैंने अपनी रीझ के हाथों सब कुछ हार दिया है अर्थात् मैं तुम्हारे प्रति इतना अनुरक्त हूँ कि रोकने पर भी मैं अपने मन पर नियंत्रण नहीं रख पाता। तुम्हारी याद मुझे निरन्तर जलाती रखती है, सताती रहती है।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिमुक्त स्वछंद काव्यधारा की विशेषताओं के आधार पर घनानंद का साहित्यिक परिचय लिखें।
2. घनानंद की प्रेम-व्यंजना पर प्रकाश डालिए।
3. 'घनानंद प्रेम की पीर के कवि हैं', स्पष्ट कीजिए।
4. घनानंद की विरहानुभूति पर प्रकाश डालिए।
5. घनानंद की काव्य-भाषा को स्पष्ट करें।

## 2.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. घनानंद और स्वछंद काव्यधारा –मनोहरलाल गौड़
2. हिंदी साहित्य का इतिहास –प्रो. पूरनचंद टंडन
3. घनानंद काव्य और आलोचना –किशोरी लाल
4. घनानंद के काव्य में अप्रस्तुत योजना –मनोहर लाल
5. घनानंद –लल्लन राय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# आधुनिक हिंदी कविता

इकाई-4

## 1. सुमित्रानंदन पंत : आह! धरती कितना देती है

लेखिका–डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### रूपरेखा

1.1 अधिगम का उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 कवि का साहित्यक परिचिय
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 प्रतिपाद्य
1.5 कुछ महत्त्वपूर्ण व्याख्यांश
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ–ग्रंथ

### 1.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के उपरांत आप

- सुमित्रानंदन पंत के साहित्यिक परिचय को समझेंगे।
- सुमित्रानंदन पंत की काव्य-यात्रा को समझेंगे।
- छायावादी काव्य धारा में सुमित्रानंदन पंत के महत्त्व से परिचित होंगे।
- सुमित्रानंदन पंत के काव्य में प्रकृति-सौंदर्य के चित्रण को समझ सकेंगे।
- सुमित्रानंदन पंत की काव्यगत विशेषताओं को जानेंगे।
- सुमित्रानंदन पंत की काव्य-भाषा की विशेषताओं को समझेंगे।

### 1.2 प्रस्तावना

छायावादी काव्यधारा के आधारस्तंभ कवि सुमित्रानंदन पंत का हिंदी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुमित्रानंदन पंत स्वभावतः कोमल प्रकृति के कलाकार थे। कूर्मांचल प्रदेश की प्राकृतिक शोभा ने उनके लेखन को और अधिक पुष्ट किया। कविता को प्राणों का संगीत



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

मानने वाले पन्त जी ने अपने काव्य में संगीतात्मक लय के साथ ही साथ चित्रात्मक एवं बिंबात्मक प्रयोगों का सफल निर्वाह किया है। हिंदी साहित्य में प्रकृति का इतना सहज और स्वाभाविक चित्रण करने वाले वे अग्रणी कवि रहे। यह सौंदर्य चेतना उन्हें प्रकृति से ही मिली। गांधीवादी विचारधारा और मार्क्सवादी सिद्धांतों को मिलाकर वे एक नयी संस्कृति की स्थापना करना चाहते थे। उनके काव्य में प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम और कल्पना का सुंदर और सहज वितान अपनी ओर आकर्षित करता है।

## 1.3 कवि का साहित्यिक-परिचय

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म 20 मई सन् 1990 ई. को अल्मोड़ा जिले के कौसानी गाँव में हुआ था। बचपन में ही पंत जी की माँ का स्वर्गवास हो गया था, जिससे इनका पालन-पोषण इनके पिता और दादी ने किया। पंत जी बचपन से ही बहुत भावुक और कल्पनाशील थे। कूर्मांचल-प्रदेश की प्राकृतिक छटा ने इनको मोह लिया, किन्तु माँ के प्यार के लिए इनका मन ललकता ही रह गया। धीरे-धीरे प्रकृति को ही इन्होंने अपनी माँ बना लिया। प्रकृति के सौन्दर्य ने इन्हें कवि बना दिया और सात साल की अवस्था में ही इन्होंने कविता करना आरम्भ कर दिया। आरम्भ में इन्हें मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' से प्रेरणा मिली, किन्तु सन् 1918 में जब वे विद्याध्ययन के लिए काशी पहुँचे, तो बंगला भाषा के रवीन्द्रनाथ टैगोर और अंग्रेजी के वर्ड्सवर्थ, कीट्स और शैली के साथ-साथ संस्कृत के कालिदास आदि कवियों से प्रभावित हुए।

1919 में बनारस से हाई स्कूल की परीक्षा पास कर पंत जी प्रयाग चले गए जहाँ उन्होंने म्योर कालेज में नाम लिखाया। जहाँ 'छाया' और 'स्वप्न' आदि रचनाओं के द्वारा कवि को पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली।

सन् 1921 ई. में पंत जी ने गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर कॉलेज छोड़ दिया। वे सत्याग्रह में सक्रिय भाग तो न ले सके किन्तु साहित्य-साधना में लीन हो गए।

सन् 1931 ई. में वे कालाकांकर गये और वहाँ के एकान्त वातावरण में रहते हुए कई रचनाएँ लिखीं। प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध तो पहले से ही था, अब इलाहाबाद और लखनऊ के सम्पर्क में आने के कारण राजनीतिक गतिविधियों का भी अध्ययन किया। इस प्रकार कवि का अनुभव व्यापक हुआ। उन्हें गाँधी जी के व्यक्तित्व ने काफी प्रभावित किया। पंत जी ने गाँधी-दर्शन को पूर्ण जीवन-दर्शन के रूप में देखा।

सन् 1920 से 1930 तक की रचनाओं में प्रकृति के अनेक मनोहर चित्रों को कवि ने छन्द-बद्ध किया। सन् 30 के बाद अपने व्यापक अनुभवों के आधार पर जीवन और जगत् की समस्याओं का विवेचन प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप सन् 1930 से 1940 तक की रचनाओं में वे मार्क्सवाद से प्रभावित



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दृष्टिगोचर होते हैं। मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन ने कवि को यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की। समाज की विषमता और दयनीय स्थिति ने उन्हें प्रगतिवादी दृष्टिकोण की रचनाएँ प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। इस अवधि में यद्यपि उनमें आध्यात्मिक संस्कार मौजूद थे, किन्तु साथ ही साथ यथार्थ के प्रबल आग्रह के कारण 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' जैसी प्रगतिशील रचनाएँ लिखीं।

सन् 1942 में सुमित्रानन्दन पंत ने 'लोकायतन' नामक एक संस्था की रूप रेखा बनाई। 'लोकायतन' के द्वारा वे भारतीय संस्कृति को युगानुकूल मोड़ देना चाहते थे जिसमें भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय हो। इसी सिलसिले में वे प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर के निकट सम्पर्क में आये। उन्हीं के साथ सन् 1942 में भारत का भ्रमण किया और मद्रास में उनके साथ सिनेमा जगत् में भी पदार्पण किया। मद्रास में रहते हुए कवि पंत को अरविन्द और श्री माँ के सम्पर्क में भी आने का अवसर मिला। उनकी साधना और दर्शन के अध्ययन से पंत जी ऊर्ध्वचेतनावादी बन गए। अर्थात् वे यथार्थ जगत् से ऊपर उठकर उस दिव्य लोक की कल्पना में डूब गए जिससे पृथ्वी को भी स्वर्ग बनाया जा सके।

सन् 1957 ई. में वे आकाशवाणी के परामर्शदाता के रूप में नियुक्त हुए।

सन् 1961 में 'कला और बूढ़ा चाँद' नामक कृति पर इन्हें साहित्य-अकादमी का पुरस्कार मिला।

पंत जी के काव्य-संग्रह 'चिदंबरा' को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार एक लाख रूपए का होता है। साहित्यिक कृतियों पर मिलने वाला यह पुरस्कार भारत में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। 2 फरवरी सन् 1978 को पंत जी का देहावसान हो गया।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत का व्यक्तित्व ऐसा था कि कोई भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। पं. शांतिप्रिय द्विवेदी के अनुसार ''पन्त के व्यक्तित्व में चन्द्रमा-सी शीतलता, उज्ज्वलता और कोमलता है जबकि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का व्यक्तित्व सूर्य के समान प्रखर, उत्तापपूर्ण और कठोर है।'' कवि के व्यक्तित्व का प्रभाव उसके काव्य पर भी पड़ता है। घुंघराले केश-पाश से मण्डित उनका गौर-मुख, बड़ी-बड़ी चमकदार आँखें, लम्बी नुकीली नाक, पतले ओंठ और माथे पर लटकती लट को देखकर महादेवी वर्मा को पहले भ्रम हो गया कि कोई महिला तो नहीं है। इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि इनके व्यक्तित्व में स्त्री-सुलभ गुण अधिक थे। यही कारण है कि कवि ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में अपने को एक बालिका के रूप में चित्रित किया है। उनका परिचय प्रकृति के कोमल, शान्त और मधुर रूप से जितना घनिष्ठ था उतना उग्ररूप से नहीं।

पंत जी छायावाद के अन्य सभी कवियों से अधिक भावुक और कल्पनाशील थे। उनकी संवेदनशीलता ऐसी थी कि युग और परिस्थितियों का उस पर व्यापक प्रभाव अंकित हो गया और युग के अनुकूल उनकी काव्य-संवेदना भी परिवर्तित होती गई।

पन्त जी ने प्रायः सभी साहित्य-रूपों (Literary forms) में अपने भाव विचार व्यक्त किए। यद्यपि उन्होने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक जैसी गद्य-विधाओं में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कविता में जो सफलता उन्हें मिली है वह अन्यत्र नहीं मिली। पंत जी का व्यक्तित्व गीतमय था। काव्यरूपक, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, सम्बोधनगीति और स्फुट गीतों की रचना में उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का सच्चा परिचय दिया। उनकी कविताएँ जिन संग्रहों में संगृहीत हैं वे क्रमशः इस प्रकार हैं: 1. उच्छ्वास, 2. ग्रन्थि, 3. वीणा, 4. पल्लव, 5. गुंजन, 6. युगान्त, 7. युगवाणी, 8. ग्राम्या, 9. स्वर्णधूलि, 11. युगपंथ, 12. उत्तरा, 13. अतिमा, 14. कला और बूढ़ा चाँद। इनके अतिरिक्त रजत शिखर, शिल्पी और सौवर्ण इनके तीन काव्य-रूपक हैं। 'ज्योत्सना' प्रतीक नाटक है। पाँच कहानियाँ, कहानी संग्रह, 'छायावादः पुनर्मूल्यांकन' और 'गद्य-पद्य' समीक्षा ग्रन्थ हैं। 'साठ वर्ष एक रेखांकन' में कवि ने बड़ी ही ललित शैली में आत्मकथा लिखी है। 'आधुनिक कवि', 'पल्लविनी', रश्मिबंध', चिदम्बरा' और मधुज्वाल कवि की श्रेष्ठ कविताओं के संकलन हैं। 'हार' उपन्यास और 'लोकायतन' प्रबन्धकाव्य के अतिरिक्त इधर कुछ और रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं जैसे– 'किरण वीणा', 'पौ फटने से पहले' और 'पुरुषोत्तम राम' इनके अलावा 'पतझर', 'एक बार क्रान्ति' भी प्रकाशित हो गई है। जिसमें विचारप्रधान प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ हैं। 'समाधिता' पन्त जी की नवीनतम कविता है।

काव्य कला अभिव्यक्ति-कौशल का ही दूसरा नाम है। कवि किस भावना को चुनता है और उसका कितना प्रभावशाली प्रकाशन करता है, इसका विवेचन काव्य-कला के अन्तर्गत किया जाता है। भाव या वर्ण्यवस्तु और भाषा तथा शैली इसके मुख्य अंग हैं।

पंत जी स्वभावतः कोमल प्रकृति के कलाकार थे: कूमतिल प्रदेश की हरित शोभा ने उनकी कल्पना को पुष्ट किया। असुन्दर, कठोर और उग्र के प्रति उनके मन में शुरू से ही अरुचि रही थी। उन्होंने हिन्दी कविता को मधुर रमणीयता प्रदान की। इसके लिए उन्हें भाषा का परिष्कार करना पड़ा। अरबी, फारसी और देशज शब्दों को उन्होंने तभी स्वीकार किया जब वे उनके मनोनुकूल कोमल बन सके। पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में काव्य-भाषा सम्बन्धी अपने विचार स्पष्ट किए हैं। इससे सिद्ध होता है कि सौन्दर्य और माधुर्य के प्रति इनके मन में विशेष आग्रह था। पन्त जी ने अपनी कविता की प्रत्येक पंक्ति और हरेक अक्षर को ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से ग्रहण किया। जैसे कोई कुशल चित्रकार मोटी-पतली रेखाओं को बड़ी सावधानी से खींचता है, वैसे ही पंत जी शब्द-ध्वनि का सावधानी से प्रयोग करते थे। शब्दों में केवल ध्वन्यात्मकता का ही नहीं, अपितु कवि की सूक्ष्म-प्रतिभा ने उसके वर्ण, रस, गंध और स्पर्श का भी जैसे गहन अध्ययन किया था, तभी तो उनकी कविता में सबसे अधिक चित्रात्मकता और ऐन्द्रियता है। ये चित्र गतिशील भी हैं और स्थिर भी इसीलिए चित्रों या बिम्बों के निर्माण में कवि पूर्ण सजग थे। फलतः कवि ने चित्रात्मक एवं बिम्बात्मक प्रयोगों के सफल निर्वाह के लिए विशेषण-विपर्यय का आश्रय लिया जिससे भिन्न वस्तु में भिन्न गुण के आरोप द्वारा वह अपना भाव और भी स्पष्टता से प्रकाशित कर सके। रंगों और ध्वनियों का जैसा प्रयोग पंत के काव्य में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

यों तो छायावाद का जन्म ही स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म को प्रतिष्ठित करने के लिए हुआ, किन्तु पंत में यह सूक्ष्मता अनेक स्तरों पर मिलती है। अलंकार काव्य के लिए उपकारक तभी हो सकते हैं जब



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वे भाव को तीव्रता प्रदान करें। पंत जी ने ऐसे ही नए अलंकारों का प्रयोग किया। स्वयं कवि के शब्दों में **'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं वरन् भाव की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं।'** पंत जी ने अपने भाव को स्पष्टता और तीव्रता प्रदान करने के लिए ही अप्रस्तुत (अलंकार) विधान का सहारा लिया। वे स्थूल की उपमा सूक्ष्म से और अमूर्त्त की मूर्त्त से देकर विपरीत गुणों के आरोपण द्वारा भाव या वर्ण्य को मनोहारी बनाने में सफल हुए। **मानवीकरण** (Personification) का आधार लेकर उन्होंने सूक्ष्म को हमारे सामने जीता-जागता उपस्थित कर दिया।

कविता को 'प्राणों का संगीत' मानने वाले कवि पंत ने छन्दों में हृदय की धड़कन की लयात्मकता भरने का सफल प्रयास किया। पन्त जी ने छन्दों का निर्माण और प्रयोग भाव के अनुरूप किया। उनकी छंद-योजना के अध्ययन के लिए 'परिवर्तन' नामक कविता देखी जा सकती है। इनकी कविताओं में जहां कोमल भावों का प्रकाशन हुआ है, वहाँ शब्द मधुर ध्वनि वाले और लय संगीतात्मक हैं, किन्तु जहाँ कठोर भाव हैं, वहाँ शब्द भी द्वित्वप्रधान और कर्कश हैं, साथ ही छंदों में गद्यात्मकता है।

काव्य कला का विकास बहुत-कुछ कवि की विचारधारा के अनुसार होता है। पन्त जी के विचारों में जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए, वैसे-वैसे काव्य-कला में भी परिवर्तन लक्षित होने लगे। अब हम इसी दृष्टि से काव्य-कला में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करेंगे।

पन्त जी प्रारम्भ में एक सौन्दर्य-प्रिय कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। यह सौन्दर्य-चेतना उन्हें प्रकृति से मिली थी। प्रकृति की सुन्दरता पर भोले मन से मुग्ध होने के साथ-साथ उन्हें उस सौंदर्य के प्रति जिज्ञासा होती है। वे कुतूहल-मिश्रित दृष्टि से परिवर्तन को देखते थे।

प्रकृति की हर सुन्दर वस्तु पन्त जी को सजीव मालूम पड़ती थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' में भी प्रकृति के अन्दर किसी सजीव सत्ता की लीला का संकेत भरा हुआ है।

पन्त पर रवीन्द्रनाथ का जबरदस्त प्रभाव रहा है। इसीलिए 'वीणा', 'ग्रन्थि' आदि कविता-संग्रहों में प्रकृति के हर उपादान अज्ञात शक्ति से प्रेरित दिखाए गए हैं। उन कविताओं में पन्त की मधुर कल्पनाओं का स्वप्नलोक चित्रित है। किन्तु बाद में वह जैसे स्वप्न से जागकर जीवन-जगत् में व्याप्त हलचल और संघर्ष से प्रभावित होकर यथार्थ की भूमि पर उतरते हैं। उनकी प्राथमिक जिज्ञासा थी–

माँ! वह दिन कब आयेगा जब
मैं तेरी छवि देखूँगा?
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है,
जग के निर्मल दर्पण में?

किन्तु बाद में यही जिज्ञासा जग के दुःखदैन्य का कारण खोजने लगती है।

**युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या** में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें पंत की यह यथार्थवादिता स्पष्टः व्यक्त है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इसी दौर में पंत पर मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव पड़ा। मानव उत्थान के लिए नयी समाज-व्यवस्था की आवश्यकता है। इसके लिए रूढ़िग्रस्त समाज में क्रान्ति की आवश्यकता है। वह कोकिल से, जो कवि का ही प्रतीक है कहता है–

गा, कोकिल, बरसा पावक कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस-भ्रंश जग से जड़ बन्धन
पावन पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन!

कवि पुरानी व्यवस्था नष्ट कर नई व्यवस्था रचने का पक्षधर बन जाता है। वह सुख-सुविधाओं का समान वितरण करना चाहता है।

कवि का प्रथम सोपान कल्पना और भावुकता का था तो द्वितीय सोपान यथार्थ का। अपनी काव्यचेतना के इस द्वितीय सोपान पर पहुँचकर वह व्यक्तिगत सुख-दुःख के बजाए समष्टिगत वेदना का अनुभव करता है। 'युगान्त' तक आते-आते पंतजी में चिन्तन-मनन की वृत्ति बढ़ जाती है। मानव की दयनीय दशा देखकर उनके मन में ग्लानि और करुणा का उदय होता है। वे 'ताज' की सुन्दरता पर मुग्ध न हो सके बल्कि उन्हें मनुष्य की मोहान्धता पर ग्लानि होने लगी। 'युगावाणी' में युग की मनोवृत्ति को वाणी दी। वे लोक-जीवन की उन्नति के लिए मानव के कर्म और इच्छा में एकरूपता तथा प्रेम के व्यापक विकास को आवश्यक मानते थे। नारी-जागरण की भावना भी इनकी कविताओं में प्राप्त होती है।

गाँधीवाद के साथ मार्क्सवाद की विचारधारा को मिलाकर कवि पंत एक नयी संस्कृति की स्थापना करना चाहते थे। इस प्रकार वे अपनी आध्यात्मिक विचारधारा को छोड़ नहीं पाए। इसके बावजूद विपन्न मानवता के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि डालकर उन्होंने समाज के वर्ग-वैषम्य का उद्‌घाटन किया। उन्होंने भारत माता के धूल भरे मैले आँचल, खेत-खलिहान, फसल आदि के चित्र आँके हैं और गाँव के कर्मरत जनसमूह की सूखी हुई ठठरियों के रेखाचित्र खींचे हैं। उन्होंने केवल मध्यवर्ग की समस्याओं तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, बल्कि निरन्न और निर्वस्त्र निम्न वर्ग को भी वाणी प्रदान की है; 'ग्राम्या' में कवि ने ग्रामीण जन के जीवन में व्याप्त दरिद्रता, कुरूपता और अज्ञान का चित्रण किया है। इसे सर्वांगपूर्ण और विश्वसनीय बनाने के लिए कवि ने ग्रामीण जन-जीवन के हर्षोल्लास का भी वर्णन किया है। धोबियों, कहारों और चमारों के नृत्य, आमोद-प्रमोद और पर्व-त्यौहारों के चित्रण में कवि ने स्वाभाविकता का सफल निर्वाह किया है। एक ओर कवि ने ग्रामीण नारी के कर्मठ व्यक्तित्व को उजागर किया है, तो दूसरी ओर नगर के फैशन में पली आधुनिकाओं पर व्यंग्य भी किया है। 'आधुनिका' और 'स्वीट पी के प्रति' आदि रचनाओं में फैशनपरस्त आधुनिक नारियों के प्रति कवि के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। **'स्वर्ण किरण' पंत जी की काव्य चेतना का तीसरा सोपान उपस्थित करता है।**काफी चिन्तन-मनन के बाद कवि इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मनुष्य बाहर और अन्दर की असमानता से पीड़ित है। जब तक इसमें समता नहीं आएगी, मनुष्य सुखी नहीं होगा।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

एक ओर तो पंत जी इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ रहे थे जिसमें वस्तुपरकता अधिक थी, दूसरी ओर उनका शान्तिप्रिय व्यक्तित्व उन्हें कोलाहल-कलह की दुनिया से दूर चलने को उकसा रहा था। स्वभाव उन्हें सौंदर्य, माधुर्य और शान्ति से पूर्ण प्रकृति की गोद की ओर चलने को प्रेरित करता रहा है–

कहीं जी करता मैं जाकर छिप जाउँ,
मानव-जग के क्रन्दन से छुटकारा पाउँ।
प्रकृति-नीड़ में व्योम-खगों के गाने गाऊँ,
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ

'ग्राम्या' काल की रचनाओ में पंत ने मानव-जग के क्रन्दन का चित्रण किया है। किन्तु **'स्वर्ण-धूलि'**, 'उत्तरा' काल में पुनः जगत् से भाग कर मध्यवर्गीय व्यक्तिवादिता और आध्यात्मिक चिंतन में डूब जाते हैं। संसार को सच्चिदानन्द की लीला भूमि के रूप में देखते हैं और मर्त्य में लिपटे हुए अमर्त्य का गान करने लगते हैं। **'उत्तरा'** की भूमिका में वे भारतीय दर्शन की आध्यात्मिकता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि उसमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। कवि प्रतिज्ञा करता है, 'आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख।'

इस प्रकार सामाजिक वास्तविकता से विमुख होकर उच्च मध्य वर्ग के अध्यात्म-लोक की ओर लौटते हुए पंत जी मनोलोक को दिव्य आभा से पूर्ण कर नए मानववाद की स्थापना में लीन हो जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रकृति का स्वभाविक चित्रण करने वालों में पंत जी का स्थान सर्वोपरि रहेगा। यद्यपि युग-धर्म और अध्यात्म से प्रभावित रचनाओं में प्रकृति का मनोरम रूप गौण हो गया है, तो भी कवि प्रकृति के सौंदर्य और साहचर्य से विरत नहीं हुआ। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है कि ''उन्हें प्रकृति की ओर सीधे आकर्षित होने वाला, उनके खुले और चिरंतन रूपों के बीच खुलने वाला हृदय प्राप्त था।'' फलतः हिन्दी साहित्य को प्रकृति के अनेक मनोरम छवि-चित्र प्रदान करने का श्रेय पंत जी को प्राप्त है। 'परिवर्तन में तो कवि ने प्रकृति के कठोर रूप का वर्णन किया ही है। प्रगतिवादी रचनाओं में उसका ग्राम-प्रकृति का सरल-खरा रूप भी मनोरम बन पड़ा है, जहाँ कवि चिलबिल के दो पौधों को 'दो मित्र' के रूप में देखता है या 'झंझा में नीम' का चित्रण करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे आलोचक की प्रशंसा प्राप्त करना पंत जी के साहित्य की साधारण उपलब्धि नहीं है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है, ''पंत जी को 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' से निकल स्वाभाविक स्वच्छन्दता (True Romanticism) की ओर बढ़ते देख हमें प्रसन्नता होती है।''

### 1.3.1 बोध प्रश्न

1. सुमित्रानन्दन पंत का जन्म कब हुआ?
2. सुमित्रानन्दन पंत की विचारधारा पर प्रकाश डालिए।
3. पंत जी के प्रमुख काव्य–संग्रहों के नाम बताइए।
4. पंत जी ने प्रकृति का कैसा चित्रण किया है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5. पंत जी के व्यक्तित्व की कौन–कौन सी विशेषताएँ हैं।
6. पंत जी के यहाँ प्रकृति का कैसा चित्रण प्राप्त होता है?
7. पंत के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत स्पष्ट करें।

## 1.4 'आ धरती कितनी देती है : प्रतिपाद्य

प्रस्तुत कविता 'अतिमा' काव्यसंकलन में संग्रहीत है। इस कविता में कवि अपने बचपन की एक छोटी-सी घटना को याद कर यह बताना चाहता है कि धरती माता है, वह अपने पुत्रों को बहुत कुछ देने की क्षमता रखती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम धरती की क्षमता को पहचानें और उसमें सही बीज बो सके। कवि ने बचपन में मोह एवं अज्ञानवश छिपकर पैसे बोए और यह सोचा कि पैसों के पेड़ उगेंगे जिनमें रूपयों की फसलें खनकेंगी किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ और कवि की यह आशा कि वह मोटा सेठ बन जाएगा, धरी की धरी रह गई। बाद में कवि को अपनी गलती का पता चल गया। वह जान गया कि अबोधता के कारण उसने धरती पर गलत बीज बोये, इसलिए धरती ने उन्हें कुछ नहीं दिया। इस घटना के पचास वर्ष बाद कवि ने एक दिन कौतूहलवश वर्षा से गीले आंगन के कोने में सेम के बीज बो दिए। वह उस बात को भूल गया। किंतु एक दिन उसने देखा कि आँगन के कोने में कई नवागत सेम के पौधे विद्यमान हैं। वे जीवन की विजय-पताका की तरह लग रहे थे। धीरे-धीरे पौधे बढ़ने लगे और अनगिनत पत्तों से लद गये। उनकी बेलें बढ़ती हुई आँगन में फैल गई। जब समय आया तो उनमें अनगिनत फलियाँ निकल आईं। फलियाँ बड़ी प्यारी थीं। पतली-चौड़ी, फलियाँ लम्बी-लम्बी अंगुलियों-सी, नन्हीं-नन्हीं तलवारों सी मोती की लड़ियों सी, कचपचिया तारों तथा पन्ने के प्यारे हारों-सी लग रही थीं और चन्द्रमा की कला के समान नित्य बढ़ती ही जाती थीं। उन बेलों से इतनी फलियाँ टूटी कि जाड़ों भर खायी गईं। उन्हें पास-पड़ोस के घरों में, बन्धु-बांधवों, मित्रों, अभ्यागतों, जाने-अनजाने सब लोगो में बँटवाईं गईं। उन फलियों को एक परिवार ने नहीं, मुहल्ले भर ने खायीं।

अब कवि को यह पता चल गया था धरती कितना देती है। उसने सही बीज बोये तब पता चला कि धरती में देने की अपूर्व क्षमता है। शर्त सिर्फ इतनी है कि व्यक्ति सही बीज को पहचाने और उसे ही बोये। कवि यह जान गया है कि धरती समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली रत्न-प्रसविनी है। वह चाहता है कि धरती में सच्ची समता, मानव ममता आदि के दाने बो दिए जायें। कवि को विश्वास है कि जिस तरह सेम के बीच अंकुरित हुए, बढ़े, फूले-फले उसी तरह समता, मानवता आदि के बीज भी अंकुरित होंगे, फूले-फलेंगे और मानव-जीवन को हँसी-खुशी से भर देंगे। व्यक्ति जैसा बोता है, वैसा ही पाता है। यदि मोहवश हम गलत बीज बोएँगे तो धरती हमें कुछ नहीं दे पाएगी, बंजर ही बनी रहेगी। किन्तु यदि हम विवेकपूर्वक सही बीज बोयें तो धरती हमें अवश्य बहुत कुछ दे सकती है क्योंकि उसकी देने की क्षमता असीम है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 1.5 व्याख्या

**दोहा– (1) देखा आँगन के कोने में कई नवागत..... चिड़ियों के बच्चों से।**

**संदर्भ** –प्रस्तुत अवतरण 'आः धरती कितना देती है' शीर्षक कविता से उद्धृत है। कवि ने आँगन के कोने की गीली तह में सेम के कुछ बीज बो दिए थे, जो अंकुरित हो गए हैं। इस अवतरण में कवि सेम के नए पौधों की शोभा का वर्णन कर रहा है–

**व्याख्या**–जब सेम के बीज से नन्हें-नन्हें पौधे उग आते हैं कवि को ऐसा लगता है कि आँगन के कोने में कई नवागत छाता तान खड़े हैं। नए पौधे छाता के समान लग रहे थे। इन नए पौधों को देखकर कवि हर्ष और विस्मय से भर गया। वह यह निश्चय नहीं कर पाया कि इन नए पौधों को वह छाता कहे या जीवन की विजय-पताका अथवा बच्चों की खुली नन्हीं प्यारी हथेलियाँ। जो भीहो, कवि को लगा कि उल्लास से भरे, हरे हरे पौधे अभी-अभी डिम्ब से निकले चिड़ियों के छोटे-छोटे बच्चों के समान हैं जो पंख मार कर उड़ने को उत्सुक हैं।

**विशेष**– (1) छाता कहूँ या कि ..... या हथेलियाँ खोले थे में संदेह अलंकार है।

(2) अन्तिम पंक्ति में उपमा अलंकार है। अवतरण में 'नवागत', 'डिम्ब' आदि तत्सम शब्द विद्यमान हैं किन्तु छाता ताने खड़ा होना, हथेलियाँ खोलना, पंख मारना आदि क्रियापद भाषा के तद्भव रूप को सामने लाते हैं। इन क्रियापदों से अवतरण की भाषा सहज एवं अधिक व्यंजक हो गई है।

(3) 'छाता' पुल्लिंग है किंतु कवि ने उसे जान–बूझ कर स्त्रीलिंग बना दिया है। कवि को आशा है कि 'छाता' को स्त्रीलिंग बनाकर प्रयोग करने से उसकी कोमलता एवं सुन्दरता के साथ उसके लघु आकार की व्यंजना भी होगी।

**दोहा– (2) छोटे, तारों–से छितरे, फूलों की छींटे..... आंचल के बूटों से।**

**संदर्भ** जब सेम की बेले फैल गई और अनगिनत पत्तों एवं फलों से लद गई तब उनकी जो शोभा हुई उसी का चित्रण कवि यहाँ करता है–

**व्याख्या**– सेम की बेलों में खिले अनगिनत फूल ऐसे लगते थे जैसे वे दूर-दूर तक बिखराये हुए छोटे-छोटे तारे हों। लहर के समान टेढ़ी-मेढ़ी सांवली लताओं पर फूल झागों के समान लग रहे थे। फूलों से भरी लताएँ मानसरोवर में प्रतिबिम्बित आकाश के समान दिखलाई देती थीं। कभी वे फूल बालों की चोटी में गुंथे मोती के समान लगते थे तथा कभी साड़ी के आँचल के बूटों के समान।

**विशेष**– (1) फूलों की तुलना तारों, झागों, नभ, मोती और बूटों से की गई है अतः मालोपमा अलंकार है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(2) 'ए' एवं 'ओ' ध्वनि की आवृति के कारण पूरे अवतरण में वाग्प्रवाह की वृद्धि हुई है। कोमल-कांत पदावली का प्रयोग हुआ है। भाषा काव्यात्मक एवं सरल है।

**संदर्भ**–इन पंक्तियों में कविता के मूल प्रतिपाद्य को स्पष्ट किया गया है।

**व्याख्या**–कवि ने बचपन में छिपकर लोभवश पैसे बोये थे इसी कारण धरती की महिमा नहीं जान सका। जब उसने सेम के बीज बोये तो धरती की अद्भुत सृजन शक्ति का पता चला। वह जान गया कि धरती माता अपने बेटों को आवश्यकता से भी अधिक देने की क्षमता रखती है। उसे लगा कि धरती रत्न उत्पन्न करने वाली है तथा समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती है। धरती में बोया गया बीज सहस्रगुणित होकर फल देता है, यह जान लेने पर कवि उसमें सच्ची समता, जन की क्षमता तथा ममता के बीज बोना चाहता है। वह मानता है कि ये ही सच्चे बीज हैं, यदि इन्हें बो दिया जाए तो इस धरती की धूल सुनहली फसलें उगल सकती हैं। समता, ममता आदि बीज को सेम के बीज की तरह मिट्टी की तह में नहीं, व्यक्ति व्यक्ति के हृदय में बोना होगा। यदि हम ऐसा कर सके तो हम देखेंगे कि जिस तरह धरती में बोये सेम के बीच सहस्रगुणित होकर फलीभूत हुए उसी तरह समता आदि के बीज भी फलेंगे। मानवों का श्रम तब जरूर रंग लाएगा और धरती पर मानवता की दिशाएँ आनन्द से भर जायेंगी। हमारी धरती बहुत उर्वर है किन्तु हमें याद रखना होगा कि हम जैसा बोते हैं वैसा ही पाते हैं। यदि हम गलत बीज बोयेंगे तो हम सफल नहीं हो सकते। हमें उसमें सोच समझ कर ऐसे बीज बोने हैं जो मानव के लिए मंगलकारी हों।

**विशेष**– (1) प्रस्तुत अवतरण में कवि स्थूल सेम के बीज बोने के उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करते हुए समता आदि सूक्ष्म भावों को बोने की बात करता है। भावों को धूल-मिट्टी वाली धरती में नहीं बोया जा सकता। यहाँ लक्ष्यार्थ यह है कि यदि हम इन भावों की बढ़ती फसल देखना चाहते हैं तो हमें इनके बीजों को मानव-हृदय में बोना होगा। मानव-हृदय ही समता आदि भाव-बीजों के लिए धरती के समान है।

(2) धरती के लिए 'वसुधा' शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया गया है। धरती का नाम वसुधा है। वसुधा नाम पड़ने का कारण यह है कि सब कुछ धारण करने वाली धरती वसु (धन, रत्न एवं ऐश्वर्य) को भी धारण करती है।

(3) 'सच्ची समता' एवं 'मानव ममता' में अनुप्रास अलंकार है। 'समता के दाने', 'क्षमता के दाने' एवं 'ममता के दाने' में रूपक अलंकार है।

**शब्दार्थ–कलदार** = जिसमें पेंच लगी हो। **तृष्णा** = तीव्र इच्छा। **अर्धशती** = पचास वर्ष का समय। **हेमन्त** = शिशिर ऋतु का अन्त। **ऊदी** = ललाई लिए हुए काले रंग का, बैंगनी। **निर्निमेष** = बिना पलक झपकाए, एकटक। **पलटन** = दल, समुदाय, झुंड। **लतरों पर**–लताओं अथवा बेलों पर। **कचपचियाँ** = छह तारों का एक समूह। **मंगतों ने** = माँगने वालों ने। **रत्न प्रसविनी** = रत्न देने वाली। **वसुधा** = पृथ्वी।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

## 1.6 अभ्यास प्रश्न

1. छायावादी काव्यधारा में सुमित्रानन्दन पंत के योगदान को स्पष्ट करें।
2. सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का प्रकृति चित्रण की दृष्टि से विश्लेषण कीजिए।
3. 'आ धरती कितना देती है' कविता का प्रतिपाद्य लिखें।
4. इस कविता के काव्य–सौंदर्य का विश्लेषण कीजिए।
5. सुमित्रानन्दन पंत की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
6. सुमित्रानन्दन पंत की काव्य भाषा पर प्रकाश डालिए।

## 1.7 संदर्भ-ग्रंथ


- सुमित्रानन्दन पंत, कृष्ण दत्त पालिवाल, साहित्य अकादमी प्रकाशन।
- सुमित्रानन्दन पंत, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य, शांति जोशी, राजकमल प्रकाशन।


© DDCE, COL, SOL, University of Delhi



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

# 2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : लीक पर वे चलें...

लेखिका–डॉ. मीनाक्षी व्यास
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 कवि का साहित्यिक परिचय

2.3.1 बोध प्रश्न

2.4 प्रतिपाद्य

2.5 व्याख्या

2.5.1 बोध प्रश्न

2.6 संदर्भ ग्रंथ

## 2.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के उपरान्त आप–

- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के साहित्यिक योगदान को समझेंगे।
- परंपराओं और रूढ़ियों के विषय में जानेंगे।

## 2.2 प्रस्तावना

आधुनिक नाटक की नई चेतना को लेकर लिखने वाले नाटककारों में सर्वेश्वर का नाम उल्लेखनीय है। हिंदी नाट्य साहित्य के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से सर्वेश्वर–भारतेंदु की नाट्य परंपरा के नाटककार हैं। भारतेंदु ने सामंती व साम्राज्यवाद विरोधी, जिस नई रंग–चेतना का विकास अपने मौलिक नाटकों में किया था, उसे वर्तमान युग में पुनर्विकसित करने वाले नाटककारों में सर्वेश्वर का नाम विशिष्ट है। उन्होंने हिंदी के नए नाटक को लोकनाट्य–परंपरा से जोड़कर एक नया रूपबंध दिया। नाटक तथा खुले रंगमंच के क्षेत्र में उन्होंने नए व सार्थक प्रयोग किए तथा उनके माध्यम से सामान्य जन–जीवन से जुड़े काव्य को नए अर्थों के साथ प्रस्तुत किया।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

## 2.3 कवि का साहित्यिक–परिचय

सर्वेश्वर मूलतः कवि थे। नई कविता के अधिष्ठाता शीर्षस्थ कवियों में सर्वेश्वर का नाम उल्लेखनीय है। कविता के साथ–साथ कहानी, उपन्यास यात्रा–संस्मरण आदि विविध साहित्य–रूपों को उन्होंने समृद्ध किया। लेकिन इन माध्यमों या विधाओं के द्वारा वे आम जनता तक अपने कथ्य, अपनी सामाजिक चिंता, बेचैनी को इतनी प्रखरता से नहीं पहुंचा सकते थे जितनी कि नाटक के माध्यम से, अतः उन्होंने सर्वाधिक सशक्त तथा सीधे असर करने वाले माध्यम नाटक तथा उसमें भी लोकधर्मी नाटक को चुना। यह लोकधर्मिता उनके नाटकों में भी मिलती है तथा कविताओं में भी। इस लोकधर्मिता की विशेषता की दृष्टि से उनके नाटकों और काव्य रचनाओं में विशेष–अंतर नहीं है। सर्वेश्वर के संपूर्ण–कृतित्व में आज की व्यवस्था के जनविरोधी–भ्रष्ट स्वरूप पर गहरा व्यंग्य मिलता है। उनके अनुसार जो राजनीति कभी मानव कल्याण, राष्ट्र की आजादी तथा पुनर्निमाण का दर्शन लेकर चली थी, वही अब सत्ता हथियाने की सिद्धांतहीन राजनीति में परिणत हो चुकी है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में हमें इन यथार्थ जीवन–स्थितियों तथा जनसाधारण के संघर्षों के दर्शन होते हैं, तो उनके नाटक सामाजिक विसंगतियों और भ्रष्ट–अमानवीय स्थितियों से साक्षात्कार कराते हैं।

इस बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार के व्यक्तित्व को समझे बिना उनके कृतित्व का सही–मूल्यांकन संभव नहीं है। अतः पहले उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचय आवश्यक है–

सर्वेश्वर का जन्म 15 सितंबर 1927 में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में हुआ था। उनकी प्रारंभिक पढ़ाई बस्ती के ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल में हुई। बाद में क्वींस कॉलेज, बनारस तथा प्रयाग विश्वविद्यालय में उनकी शिक्षा–दीक्षा हुई। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के कार्य किए अतः उनका कार्य क्षेत्र विस्तृत था। पढ़ाई के बाद उन्होंने ए.जी. आफिस में यू.डी.सी. के पद पर कार्य किया। सन् 1955 से 1964 तक उन्होंने आकाशवाणी में हिंदी अनुवादक तथा सहायक प्रोड्यूसर के रूप में कार्य किया। तदन्तर सितंबर सन् 1964 में 'दिनमान' पत्रिका के संपादकीय विभाग से संबद्ध होने के बाद वे 1982 में 'पराग' बाल पत्रिका के संपादक बने। उन्होंने अपनी पहली कविता सन् 1941 में लिखी थी। सन् 1951 में उनकी कविताएं 'प्रतीक' में प्रकाशित हुई। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' 1959 में सर्वेश्वर की कविताएं भी सम्मिलित की गई। 23 सितंबर 1983 को उनका निधन हुआ।

गद्य साहित्य– सर्वेश्वर ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट कृतियाँ प्रदान कीं। उनके उपन्यासों में 'सोया हुआ जल', तथा 'पागल कुत्तों का मसीहा' विशेष उल्लेखनीय हैं।

सर्वेश्वर की नाट्य रचनाओं के संदर्भ में डॉ. कालीचरण स्नेही के अनुसार–''सन् 1948 ई. से नाटक के क्षेत्र में सर्वेश्वर का प्रवेश माना जाता है। इलाहाबाद में सन् 1948 में जब वे एम.ए. के विद्यार्थी थे, तभी उनके दो नाटक 'जिंदगी की लौ' और 'मौत की घाटी' इलाहाबाद में मंचित किए गए। 1948 से आगे फिर उनका झुकाव नाट्य की लोकधर्मिता की ओर हुआ। उन्होंने इस क्रम में तीन नाटक, दो एकांकी तथा चार बाल नाटकों की रचना की, जिनके नाम इस प्रकार हैं–



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

नाटक– (क) लड़ाई (ख) बकरी (ग) अब गरीबी हटाओ

एकांकी– (क) कल भात आएगा (ख) हवालात

बाल नाटक– (क)भों–भों, खों–खों (ख) हाथी की पों (ग) लाख की नाक

सर्वेश्वर आज के सार्थक रचनाकारों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत्यंत जीवंत और सजग भाषा में रची गई उनकी कविताएं ऊपर से सहज–सरल प्रतीत होती हैं लेकिन उनकी अंतर्वस्तु गहरी संवेदनाओं से निर्मित हैं। उनके व्यापक काव्य संसार में घोर सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ से जूझने वाली व्यंग्यपूर्ण कविताएं भी हैं और अपने निजी जीवन की उदासी, अकेलेपन आदि की भावना से युक्त कविताएं भी हैं।

सर्वेश्वर ने जिस समय कविता लिखना आरंभ किया, वह समय हिंदी कविता के क्षेत्र में 'प्रयोगवाद' की समाप्ति तथा 'नई कविता' के प्रारंभ का समय था। 'नई कविता' के इसी आरंभिक दौर से लेकर सर्वेश्वर साठोत्तरी और सत्तरोत्तरी काल तक हिंदी कविता के क्षेत्र में सक्रिय रहे। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार–''हिंदी की नई कविता में सर्वेश्वर की इस लंबी काव्य–यात्रा का महत्वपूर्ण इतिहास है।'' (डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल–'सर्वेश्वर और उनकी कविता', पृ. 30) इस ''लंबी काव्य–यात्रा'' के दौरान उनके अनेक काव्य संग्रह सामने आए। 'काठ की घंटियां' (1959), 'बाँस का पुल' (1963), 'एक सूनी नाव' (1966), 'गर्म हवाएँ' (1969), 'कुआनो नदी' (1973), 'जंगल का दर्द' (1976) 'खूंटियों पर टंगे लोग' (1982), 'कोई मेरे साथ चलो' (1985), सर्वेश्वर के मरणोपरांत संकलित आदि) सर्वेश्वर के महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं।

सर्वेश्वर की आरंभिक कविताओं में नई कविता की सभी विशेषताएं विद्यमान हैं। उनकी कविताओं में एक ओर व्यक्तिगत सुख–दुख की अभिव्यक्ति मिलती है तो दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। किंतु मूल रूप से काव्य–वस्तु की दृष्टि से सर्वेश्वर की अधिकांश कविताएं सामाजिक संदर्भों से जुड़ी है। सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के प्रति सजग और संवेदनशील होने के कारण उनकी कविताओं में आम आदमी के जीवन की यथार्थ स्थितियों का चित्रण मिलता है। काव्यवस्तु से लेकर काव्यभाषा तक वे हर स्तर पर जन–जीवन से गहरे जुड़े हैं और वहीं से सारी रचनात्मक ऊर्जा प्राप्त करते हैं। सामाजिक परिवेश से इस संपृक्ति के साथ–साथ वे नए जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी काव्यदृष्टि का निरंतर परिष्कार करते रहे हैं।

अपनी बाद की कविताओं में सर्वेश्वर अपने समय और परिवेश से अधिक जुड़ते चले गए। सामाजिक यथार्थ के प्रति झुकाव के कारण वे समसामयिक युग की सच्चाइयों को अपनी कविताओं के माध्यम से सामने रखते हैं। उनकी कविताओं में आज के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त विडंबनाओं और असंगतियों का चित्रण हुआ है। जड़ता और यथास्थितिवाद से ग्रस्त व्यवस्था की त्रुटियों और दोषों को ठीक करने के लिए सर्वेश्वर जागृति और संघर्ष चेतना को तलाशते हैं तथा आम आदमी की शक्ति में अपना विश्वास व्यक्त करते हैं। मानवीय शक्ति तथा गरिमा के प्रति दृढ़ आस्था सर्वेश्वर



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

की कविता का मूल स्वर है। मानव मुक्ति की आकांक्षा तथा विश्वास के सहारे वे आत्मदुख और व्यक्तिगत संघर्ष के प्रति आस्था व्यक्त करते हैं। चाहे उनके नाटकों में आने वाले गीत हों या उनके संग्रहों की कविताएं हों, हर जगह अन्याय और शोषण के विरुद्ध सक्रिय होने की प्रेरणा मिलती है। वे अपनी कविताओं को अपने निजी जीवन तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि उनकी कविताएं अपने समय और समाज की चिंताओं को अभिव्यक्त करती हैं तथा जीवन को बेहतर बनाने के लिए एक नया संकल्प देती हैं।

सर्वेश्वर के काव्य में सार्थक व्यंग्य की शक्ति का अत्यंत सशक्त उपयोग भी मिलता हैं उन्होंने समाज की विभिन्न विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य किए हैं।

सर्वेश्वर के काव्य में लोक संपृक्ति की विशेषता भी विद्यमान है। लोक चेतना के कारण ग्रामीण जीवन तथा प्राकृतिक परिवेश का मोहक चित्रण उनकी कविताओं में मिलता है। साथ ही उनकी कविताओं में लोकगीतों का माधुर्य भी निहित है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार–''लोकलयों में ढले छंदों का जितना प्रयोग सर्वेश्वर ने नए ढंग से कविता में किया है, साठोत्तरी कविता का कोई भी कवि नहीं कर पाया है।'' (डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल–'सर्वेश्वर और उनकी कविता', पृ.सं. 23)। सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में अलंकृत कलात्मक भाषा के कृत्रिम रूप को नहीं अपनाया, बल्कि साधारण जीवन की आम बोलचाल की भाषा में नए प्रयोग किए। प्रतीकों और बिंबों के इस्तेमाल के कारण उनके साधारण शब्द भी किसी गहरे अर्थ की ओर प्रतीकात्मक ढंग से संकेत करते हैं।

सर्वेश्वर ने परंपरागत ढंग की तुकबंदी, छन्द–विधान से दूर रहकर ही अपनी अधिकांश कविताएं लिखी हैं। सहज बातचीत के लहजे में लिखी गई इन कविताओं में गद्य का आभास मिलता है। लेकिन इनका सीधा–सीधा गद्यात्मक लगने वाला वाक्य विन्यास भी अपने भीतर एक नए प्रकार की काव्यात्मक लय छिपाए हैं।

सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न रचनाकार हैं। 'नई कविता' के आंदोलन में भी वे एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभरे। नई कविता ने जिन युगीन विसंगतियों और विरोधाभासों को अभिव्यक्ति का विषय बनाया था, वह सारा चिंतन सर्वेश्वर की कविताओं में भी व्यक्त हुआ है। सर्वेश्वर के काव्य का मुख्य उद्देश्य है– मनुष्य के सौंदर्यबोध के विस्तार के साथ–साथ उसे निर्भय और कर्मशील बनाना। अर्थात् सर्वेश्वर का संवेदनात्मक संसार हर रूप में मनुष्यता के पक्ष में, आम जन के साथ खड़ा दिखता है। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने इस संदर्भ में ठीक ही कहा है कि–''संपूर्ण संकल्प से कवि किसानों–मजदूरों से मिल जाना चाहता था–'उनका' और 'उनके लिए' होना चाहता था, कोमल भावनाओं को 'फूल' से 'आग' में बदलना चाहता था, सदियों से लिखने–पढ़ने से वंचित अनपढ़ खेतिहर मजदूरों को 'आग' और 'सामूहिक आग' का मतलब समझाना चाहता था, गरीब आदमी को आदमी होने का अहसास कराना चाहता था।'' (डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल–'सर्वेश्वर और उनकी कविता', पृ. 10)



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

2.3.1 बोध प्रश्न

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रसिद्धि का कारण बताओ?
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने कविता के अतिरिक्त और किन विधाओं में लिखा है?
3. इनका जन्म कब और कहाँ हुआ?
4. उनके द्वारा रचित काव्य–संग्रहों के नाम बताइए?
5. इनकी कविताओं की क्या विशेषता है?
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की भाषा कैसी थी?

## 2.4 प्रतिपाद्य

प्रस्तुत पाठ 'लीक पर वे चलें', कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी के द्वारा लिखित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने परम्परागत रास्ते पर चलना छोड़कर अपने प्रयत्न से बनाए गए रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी है। यह कविता जीवन में कुछ अलग करने की सीख देती है। वे कहते हैं कि जो लोग कमज़ोर होते हैं, जिंदगी से हारे हुए होते हैं, वे लोग पुराने रीति–रिवाज के बल पर आगे बढ़ते हैं, परंतु जो कर्मवीर होते हैं वे अपना रास्ता स्वयं ही बना लेते हैं। इस कविता में कवि कहते हैं, आगे बढ़ते रहने के रास्ते में बहुत सारे प्रेरणास्रोत हैं, जो हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। पेड़–पौधे, नदियाँ, झरने, आकाश, बादल सभी हमारे साथ आगे बढ़कर हमें निरन्तर आगे बढ़ने की सीख देते हैं। कवि ने इस कविता में जीवन की सच्चाई को उजागर कर पाठकों के लिए बहुत सुंदर और प्रेरणादायक सीख दी है। आज के नए युग में बहुत जरूरी है कि पुरानी परम्पराओं को भूलकर एक नया रास्ता तय करें, जो बहुत ही आवश्यक हो गया है। यह कविता सरल, सहज और संदेशप्रद कविता है।

## 2.5 व्याख्या

दोहा– लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं।
साक्षी हों राह रोके खड़े
पीले बाँस के झुरमुट
कि उनमें गा रही है जो हवा
उसी से लिपटे हुए सपने हमारे हैं।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**संदर्भ एवं प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियां 'लीक पर वे चलें' कविता से ली गई हैं। यह कविता 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना' जी द्वारा रचित है। कवि ने इस कविता में परंपराओं का विरोध तथा चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दी है।

**व्याख्या**–इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कहते हैं कि पुरानी परंपराओं के आधार पर वे चलते हैं, जिनके चरण कमजोर और दुर्बल हैं, जो हारे हुए अर्थात् जिन्होंने चुनौतियों का सामना करने से पहले ही हार मान ली है। हमें अपना रास्ता खुद बनाना आता है। नए–नए संघर्षों से हम डर कर नहीं भागते हमें संघर्षों से लड़ते हुए अपनी जीवन रूपी यात्रा में आगे बढ़ना अच्छा लगता है। बने–बनाए रास्तों पर चलना हमें प्यारा नहीं है। हम नए रास्ते बनाकर उन पर चलते हैं। जिस प्रकार हवा पीले बाँसों की झांड़ियों को चीरते हुए, गाते हुए झाड़ियों को पार करती हैं, उसी प्रकार हम भी खुशी–खुशी संघर्षों से लड़ते हुए आगे बढ़कर अपने सपने पूरे करने की ताकत रखते हैं।

**विशेष –**

- व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।
- प्रतीकों तथा बिंबों का प्रयोग किया गया है।
- प्राकृतिक परिवेश का मोहक चित्रण हुआ है।
- साधारण जीवन की आम–बोलचाल की भाषा का प्रयोग।

**दोहा– शेष जो भी है–**
**वक्ष खोले डोलती अमराइयाँ**
**गर्व से आकाश थामे खड़े**
**ताड़ के ये पेड़,**
**हिलती क्षितिज की झालरें**
**झूमती हर डाल पर बैठी**
**फलों से मारती**
**खिलखिलाती शोख अल्हड़ हवा।**

**संदर्भ एवं प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियां 'लीक पर वे चलें' कविता से ली गई हैं। यह कविता 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना' जी द्वारा रचित है। कवि ने इस कविता में परंपराओं का विरोध तथा चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दी है।

**व्याख्या**–इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कहते हैं कि संघर्ष के इन रास्तों में प्रकृति भी हमारा साथ देती है। रास्ते में बचे हुए जितने भी आम के पेड़ हैं वे हमारे स्वागत में छाती खोले हुए खड़े हैं। ताड़ के ये बड़े–बड़े पेड़ हमारे रास्तों में गर्व से आकाश को रोके खड़े हैं। अर्थात् आसमान से आने वाली धूप, बारिश से हमारी रक्षा करते हैं। ताड़ के हिलते हुए पत्ते ऐसे लगते हैं जैसे धरती और आकाश के मिलन स्थान पर झालरों के द्वारा सजावट की गई हो और हवा खुशी से इनका स्वागत कर रही है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

**दोहा– गायक मंडली से थिरकते आते गगन में मेघ,**
**वाद्य–यंत्रों–से पड़े टीले,**
**नदी बनने की प्रतीक्षा में, कहीं नीचे**
**शुष्क नाले में नाचता एक अँजुरी जल,**
**सभी, बन रहा है कहीं जो विश्वास**
**जो संकल्प हममें**
**बस उसी के सहारे हैं।**
**लीक पर वे चलें जिनके**
**चरण दुर्बल और हारे हैं।**

**संदर्भ एवं प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियां 'लीक पर वे चलें' कविता से ली गई हैं। यह कविता 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना' जी द्वारा रचित है। कवि ने इस कविता में परंपराओं का विरोध तथा चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दी है।

**व्याख्या**–कवि कहते हैं, हमें अपने संघर्षों की शक्ति भी प्रकृति से मिलती है, साथ ही यही प्रकृति हमें भरोसा भी दिलाती है। आकाश से गरजते बादल हमें ऐसा लेता है जैसे गायक मंडली के थिरकते हुए कदम हैं। रास्ते में पड़े हुए टीलों से गरजन की आवाज़ जब टकराती है तो वे वाद्य–यंत्र की तरह ध्वनि निकालने लगते हैं। सूखे हुए तालाब एक बूंद जल भी बादलों के बरसने से नदी बनने में उम्मीद की रहते हैं। ये सभी साक्षी होकर हमारे विश्वास को मजबूत बनाते हैं कि चुनौतियों से जीतने का जो संकल्प हमने लिया है, उसमें ये सब हमारा साथ देंगे। हम अपने संकल्प में आगे बढ़े, परम्परागत रास्ते, पर चलते हुए कमज़ोर और हारे हुए इंसान न बनें।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न

1. लीक पर किस प्रकार के लोग चलते हैं?
2. ताड़ के वृक्ष हवा से हिलते हुए कैसे लगते हैं?
3. पीले बाँस किसको कहा गया है?

## 2.7 संदर्भ-ग्रंथ


- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–1989


**उद्घोषणा (Disclaimer)**

वर्तमान अध्ययन सामग्री वार्षिक मोड/सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत पहले से उपलब्ध अध्यायों का संशोधित संस्करण है।



© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi